TEXT FLY WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180407

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 891.433 S 53 Dh Accession No. H2795

Author शास्त्री, चतुरसेन।

Title हृदय की प्यास। 1954

This book should be returned on or before the date last marked below.

चतुरसेन-साहित्य एकसौ बीसवां ग्रन्थ ।
चतुरसेन-कथा साहित्य पन्द्रहवां उपन्यास

धर्मपुत्र

सर्वाधिकार सुरक्षित

धर्मपुत्र

लेखक :

आचार्य चतुरसेन

प्रकाशक :

ज्ञानधाम-प्रतिष्ठान

दिल्ली (शाहादरा)

प्रथम संस्करण अगस्त १९५४

मूल्य ढाई रुपये

श्री चन्द्रसेन द्वारा ज्ञानधाम-प्रतिष्ठान (शहादरा) दिल्ली के
प्रकाशित तथा प्रभात प्रेस लिमिटेड, मेरठ द्वारा मुद्रित

दर्द की तस्वीर

कृशन चन्दर को एक पार्टी दी गई थी। पार्टी दिल्ली के एक प्रतिष्ठित प्रकाशक ने दी थी। निमन्त्रण मुझे भी मिला। गो यह एक नई बात थी। आम तौर पर मुझे लोग पार्टियों में बुलाते उलाते नहीं। नई दिल्ली के एक शानदार होटल में पार्टी का आयोजन था। पार्टी में अनेक–प्रकाशक–साहित्यिक–पत्रकार और अध्यापक भी थे। और मैं तो था ही। पार्टी की धूमधाम और शान को मैंने देखा। कृशन चन्दर को देखा—निपट बालक सा तरुण है। मैं सोच रहा था—इसे भला क्या पार्टी दी गई? ऐसी शानदार पार्टी तो मुझे मिलनी चाहिए थी। इसके बाद अकस्मात् मेरे मन में एक विचार पैदा हुआ–कि क्या कारण है अब तक मुझे किसी ने ऐसी शानदार पार्टी नही दी। चालीस साल क़लम घिसी, पैंसठ की दहलीज पर पहुंचा, ग्रन्थों की संख्या एक सौ इक्कीस को पार कर गई, फिर क्या लोग अन्धे हैं, बहरे हे, मूर्ख है या साहित्य को समझते नहीं है। क्या बात है, वास्तव में पार्टी यदि किसी को मिलनी चाहिए थी, तो मुझी को मिलनी चाहिए थी। मैंने एक बार आख और सिर उठाकर चारों ओर देखा–तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ–कि उस जमघट में मुझसे बड़ा साहित्यकार तो कोई नजर नही आ रहा है। फिर भी पार्टी मुझे नहीं, कृशन चन्दर को ही दी गई थी। इसमें तनिक भी शुबहा न था।

बड़ी देर तक मै इस बात पर विचार करता रहा। और अन्त में मेरे मन ने मान लिया—कि मै सिर्फ आयु में ही कृशन चन्दर से बड़ा हूं। परन्तु साहित्यकार बड़ा कृशन चन्दर ही है, गो है बालक ही। अब मुझे इस बात का भी पछतावा हो रहा था—कि मै तो कृशन चन्दर के सम्बन्ध में कुछ जानता ही नहीं हूं। खुदा की मार मुझ पर–कि मैंने

उनकी कोई कहानी पढ़ी ही नहीं। निन्दा और स्तुति में साहित्यकारों को सुनने का आदी नहीं। अब मैं घबराने भी लगा—कि थोड़ी देर में भाषण होगे—कृशन चन्दर की, और उनके साहित्य की प्रशसात्मक आलोचना करनी होगी। संभवतः यह काम मुझे ही सबसे प्रथम अंजाम देना होगा। क्योंकि यहाँ सबसे बड़ा साहित्यकार तो मैं ही हूँ। गो कृशन चन्दर से छोटा ही सही। मगर कहां ? प्रशस्तिगान आरम्भ कराया गया देवेन्द्र सत्यार्थी से। मानता हूँ कि उनकी जैसी शानदार डाढ़ी दिल्ली भर में नहीं मिल सकती, हालां कि इस वक्त दिल्ली डाढ़ियों का सब से बड़ा मार्केट है। मगर उस मजलिस में मैं तो था ही; उग्र थे, जैनेन्द्र थे और भी अनेक थे। इन सबके सिर पर इस लम्बी डाढ़ी की यह थानेदारी मुझे बहुत नागवार प्रतीत हुई। गो डाढ़ी बहुत ही शानदार थी, और कला की दृष्टि से वह भी साहित्य के अन्तर्गत आती है। निरालापन ही तो साहित्य की जान है—और यह डाढ़ी जरूर निराली थी। फिर भी हम लोगों के रहते हुए सिर्फ डाढ़ी ही के जोर पर उसे साहित्यिक मजलिस की नाक का बाल बनाना अप्रेल की सिर्फ पहली तारीख को ही बर्दाश्त किया जा सकता है। उग्र भी शायद गुनगुने हो रहे थे—मैं सोच ही रहा था कि डाढ़ी के बाद अब मेरी बारी आएगी, परन्तु कहां ? उग्र एक दम उठ खड़े हुए। अपना परिचय दिया, जो कहना सुनना था—कह गए। परन्तु मेरी बारी तो फिर भी नहीं आई। बारी आई जैनेन्द्र की। धत्तेरे की। अब मुझे स्वीकार करना पड़ा कि जैनेन्द्र भी मुझ से बड़े साहित्यकार हैं—यद्यपि उम्र में वे भी छोटे हैं। जैनेन्द्र का भाषण आरम्भ हुआ—और मैंने कुछ सोचना आरम्भ कर दिया। पुरानी आदत है—जैनेन्द्र जब बोलने लगते हैं तो मैं किसी विषय का चिन्तन करने लगता हूं। ध्यान से सुनने समझने पर भी कुछ पता ही नहीं लगता कि वे क्या कह रहे हैं। बस यही सोच कर संतोष कर लेता हूं कि कुछ दार्शनिक बातें कह रहे होंगे—जिससे मैं प्याज की बू की तरह घबराता हूँ। इस लिए, जैनेन्द्र के भाषण के साथ ही मैं अपने

किसी प्रिय विषय को सोचने लगता हूं। परन्तु उस समय मैं जैनेन्द्र ही की बात सोचने लगा। जरूर ही जैनेन्द्र मुझ से बड़े साहित्यकार हैं, तभी तो सब लोग मेरे रहते भी उन्हें ही आगे रखते है—जिसमें उन्हें भी कभी संकोच नहीं हुआ। अवश्य ही वह भी ऐसा ही समझते है। सोचते २ मन ने कहा—प्रत्येक साहित्यकार का प्रथक् २ ब्राण्ड है। जैनेन्द्र जलेबी ब्रान्ड साहित्यकार है। उनके साहित्य में जलेबी जैसा—कुछ चिपचिप चिपकता, कुछ टपकता, कुछ गोल २ उलझा, कुछ सुलझा—मीठा २ साहित्य रस रहता है। बासी होने पर प्रसाद कहकर बेचा जाता है। फिर मेरा ध्यान सामने बैठे उग्र पर पड़ा। निस्सदेह उग्र डंडा ब्रान्ड साहित्यकार है। सीधा खोपड़ी पर खींच मारते है। फिर वह बिलबिलाया करे। अस्पताल जाय या चूना गुड़ का लेप करे। और मैं हूं लाठी ब्रान्ड साहित्यकार—चोट करूंगा तो ठीर करके घर देना ही मेरा लक्ष्य है, साँस आने का काम नहीं। सामने नज़र उठी तो बनारसीदास चतुर्वेदी रसगुल्लों पर हाथ साफ कर रहे थे। भाई वाह, ये हैं बल्ली ब्रान्ड साहित्यकार। जिसका जी चाहे नापकर देख ले। लीजिए साहेब, मैं तो सोचता ही रहा—और लोग उठ २ कर घर चलने भी लगे। हड़बड़ा कर देखा—पार्टी खत्म हो चुकी थी—भाषण और भी हुए थे। कृशन चन्दर ने जवाब में भी कुछ कहा सुनी की थी—पर मेरी हिमाकत देखिए—मुझे कुछ पता ही नहीं लगा। अब मैं समझ गया—कि क्यों लोग मुझे बुलाते उलाते नहीं। परन्तु अब क्या हो सकता था? अछताता पछताता घर चला आया।

बहुत गुस्सा आ रहा था सब लोगों पर। क्यों नहीं लोग मुझे ऐसी पार्टियां देते। परन्तु कहूं किससे? मन ही मन खीझ रहा था। कि मन नें एक धक्का दिया, कहा—अपनी इतनी पूजा करता है तो दुनिया से क्या? तू खुद अपनी ओर देख, अपना साहित्य रचे जा, अपनी कलम चलाए जा, अपने आंसू बखेरे जा। अपनी रचना आप ही पढ़। अपनी सम्पदा से आप ही सम्पन्न रह। मगन रह। पार्टी वार्टी को गोली मार,

और उठा अपना कलम। अभी उठा। इस वक्त दिल चुटीला है—एसी ही चोट खाकर साहित्यिक वेदनायें मूर्त होती हैं। खींच तो एक दर्द की तस्वीर।'

क्या कहा जाय, अपने ही मन की बात टाली नहीं जा सकी। लो साहेब, हद हो गई। हाथ आप ही कलम पर आ पड़ा। कलम था फाउन्टेन पैन। इसी साल मेरे तिरहसठवें जन्मनक्षत्र पर दिल्ली की प्रगतिशील साहित्य परिषद् ने मुझे स्नेह भेंट के रूप में दिया था। इस सम्बन्ध में भी कुछ कहना पड़ा। आज तक किसी भी साहित्यकार, साहित्य संस्था, या साहित्य संघ ने कभी मेरे पास आकर नहीं कहा—कि आ, तुझे हम सम्मानित करें। तेरा जन्म नक्षत्र मनाएं, तेरी कुछ धूमधाम करें, पब्लिसिटी करे। न कभी किसी सम्मेलन का सभापति ही मुझे बनाया गया। इन्तजारी बहुत की। सभा पति बनाना तो दूर—साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में कभी मुझे निमन्त्रण तक नहीं मिला। पिछली बार मेरठ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन था—वहां मैं बिना ही बुलाये चला गया—इसलिए कि—पास तो है ही—बहुत से साहित्य बन्धुओं के दर्श पर्श हो जाएँगे। देखा सबने, पर किसी ने भीतर मंच पर चल कर बैठने तक को नही कहा। दो दिन बाहर ही बाहर घूम कर चला आया। सो ऐसी हालत में हर साल मैं ही अपना जन्मनक्षत्र मना लिया करता हू। बन्धुबान्धव—मित्र—और कुछ साहित्य परिजन आ जाते है—मेरे घर को जुठार जाते है. मेरे प्राणों को आनन्द दे जाते है। पर भेंट उपहार कभी कोई नहीं देता। इस बार न जाने यह क्या एक बदपरहेजी ही हो गई कि प्रगतिशील मण्डल ने हरिदत्त भाई के हाथ मुझे एक कलम भेंट दी। उसी समय—मैने यह स्वीकारोक्ति की थी—कि इस कलम से पहली बार एक उपन्यास लिखूगा। और यह भी लिख दूंगा कि—कि यह उपन्यास इस कलम से लिखा हुआ है। सो हाथ इस कलम पर आ पड़ा और वह स्वीकारोक्ति भी याद पड़ गई। बस एक पन्थ दो काज। उसी कलम से 'दर्द की यह तस्वीर' खींची

गई है। इस तस्वीर में दर्द जितना है—वह मेरे कलेजे का है। और प्यार जितना है—वह प्रगतिशील साहित्य मण्डल के सदस्यों का—जो उन्होंने अपने कलम में भर कर मेरे जन्मनक्षत्र पर भेजा था।

ज्ञानधाम—प्रतिष्ठान
२६ अगस्त १९५४

चतुरसेन

१

मई के अन्तिम दिन। दिल्ली जैसे भाड़ में भूनी जा रही थी। पंखा आग के थपेड़े मार रहा था। डाक्टर अमृतराय ने अपने अन्तिम रोगी को बेबाक किया और कुर्सी छोड़ी। परन्तु इसी समय एक कार डिस्पेन्सरी के सामने आकर रुकी। डाक्टर ने घड़ी की ओर नज़र घुमाई, एक बज रहा था। उसकी भृकुटी में बल पड़ गए-भुनभुना कर उसने कहा—'नहीं, इस समय अब और कोई मरीज नहीं देखा जायेगा।' परन्तु उसने देखा—एक भद्र वृद्धा मुसलमान कार से उतर कर हाथ की कीमती छड़ी के सहारे धीरे २ डिस्पेन्सरी की सीढ़ियों पर चढ़ रहा है।

कार निहायत कीमती और नई थी। वृद्ध की आयु अस्सी से ऊपर होगी। लम्बा छरहरा और कभी का सुन्दर कमनीय शरीर सूखकर झुर्रियों से भर गया था। कमर झुक गई थी। और अब, जैसे वृद्ध की दोनों टागें उसके शरीर के भार को उठाने में असमर्थ हो रहीं थीं, इसी से वह एक कीमती नाजुक मलक्का छड़ी के सहारे आगे बढ़ रहा था। बदन पर महीन तनजेब का चिकनदार कुर्ता, और उस पर अतलस की अद्धी। सिर पर डेढ़ माशे की लखनउवा दुपल्ली टोपी, पुराने फैशन के कटे बाल। ढीला पायजामा और बसली के सलीम शाही जूते। वृद्ध का उज्ज्वल गौर वर्ण उसकी बगुले के पर जैसी सफेद डाढ़ी मूछों से स्पर्द्धा सा कर रहा था। बड़ी २ आंखों में लाल डोरे उसके अतीत रुआबदार जीवन की साक्षी दे रहे थे। उन्नत ललाट, और उभरी हुई नाक तथा पतले सम्पुटित होंठ उसके व्यक्तित्व को

प्रभावशाली बना

वृद्ध ने भीतर आकर मुस्लिम तरीके से दोनों हाथ बढ़ाकर डाक्टर के हाथ अपने हाथों में लेकर अभिवादन किया। फिर कुछ कांपती सी धीमी आवाज़ मे कहा—'मुआफ़ कीजिए, मैंने बेवक्त आपको तकलीफ़ दी। ओफ़, किस शिद्दत की गर्मी है, आग बरस रही है। यह आपके आराम करने का वक़्त है, लेकिन मैं भीड़ से बचने और तख्लिए में आपसे मिलने की खातिर ही देर से आया।'

इतना कह कर उसने जेब से पर्स निकाला और बत्तीस रुपयों के नोट टेबुल पर आहिस्ता से रख कर वह डाक्टर के मुंह की ओर देखने लगा।

नक़द फीस को देख, तथा वृद्ध के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर डाक्टर ने नम्रता पूर्वक कहा—'कोई बात नहीं। मुझे तो रोज़ ही इस वक्त तक बैठना पड़ता है। फ़र्माइए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ। लेकिन, आप कृपा कर बैठिए तो।'

'अब इस वक्त नहीं, फिर कभी, जब आपको फ़ुर्सत हो। जबकि हम लोग इत्मीनान से बातें कर सकें।'

'तो कल, इसी वक्त।'

'बहतर, लेकिन इस गर्मी में तो मेरी जान ही निकल जायगी।' बूढ़ा भुन भुनाया। और उसी तरह डाक्टर के हाथों को अपने हाथ में लेकर उन्हें आंखों से लगाया और कहा—'खुदा हाफिज़'।

वह चल दिया। डाक्टर ने बाहर आकर उसे सादर विदा किया। कार के जाने पर डाक्टर बड़ी देर तक उसी की बात सोचता रहा—अवश्य ही यह बूढ़ा सनकी रईस किसी रहस्य से सम्बन्धित है।

२

दूसरे दिन ठीक समय पर बूढ़ा आ पहुंचा। इस समय कार की खिड़कियों में दुहरे शीशे जड़े थे और भीतर गहरे आस्मानी साटन के पर्दे लगे थे। डाक्टर बूढ़े के अभिप्राय को कुछ २ समझ गया था—और उसने पहिले ही से यहां एकान्त की सब संभव व्यवस्था कर रक्खी थी।

डिस्पेन्सरी में आकर बूढ़े ने उसी भांति मुस्लिम पद्धति से डाक्टर का अभिवादन किया—एक बार डिस्पेन्सरी पर सतर्क दृष्टि डाली—और बत्तीस रुपये मेज पर रख कर कहा—'क्या यहां हम इत्मीनान से बातें कर सकते हैं?'

'यक़ीनन, डाक्टर ने जवाब दिया।'

'तो मैं उसे बुलाऊं?' उसने साभिप्राय दृष्टि से डाक्टर की ओर देखा।

डाक्टर की आंखें कार की नीले साटन से ढकी हुई खिड़कियों की ओर उठ गईं। उसने आहिस्ता से कहा—'जैसा आप मुनासिब समझें।'

बूढ़ा उसी भांति छड़ी टेकता हुआ कार तक गया। कार का दर्वाज़ा खुला और क़ीमती काली सिल्क का बुर्का ओढ़े एक किशोरी ने हाथ बढ़ा कर अपनी चम्पे की कली के समान कोमल उंगलियों से बूढ़े का हाथ पकड़ लिया। हाथ का सहारा लेकर वह नीचे उतरी, और धीरे २ लाल मखमल के जूतों से सुशोभित उसके चरण आगे बढ़कर डिस्पेन्सरी की सीढ़ियों पर चढ़ने लगे।

बाला का सर्वांग बुर्के से ढका था। केवल उन मखमली जूतों के बाहर उसके उज्ज्वल चरणों का जो भाग खुला दीख पड़ता था—तथा चम्पे की कली के समान जो दो उंगलियां बुर्के से बाहर बूढ़े के हाथ को पकड़े थीं—उसी से उस अनिन्द्य सुन्दरी की सुषमा

का डाक्टर ने अनुमान कर लिया। वह भीता चकिता हरिणी के समान रुकती-अटकती सीढ़ियां चढ़ रही थी। उसका सीधा-लम्बा और दुब्ला पतला किशोर शरीर और बहुत संकोच सावधानी से छिपाया हुआ प्रच्छिन्न यौवन डाक्टर को विचलित कर गया। उसकी बोली बन्द हो गई। उसके मुंह से बात ही नहीं निकली।

सब के यथास्थान बैठ जाने पर बृद्ध ने एक बार छिपी नजरों से बाला की ओर, फिर डाक्टर की ओर देखा, तब कहा—

'शायद आपने मेरा नाम सुना हो, मेरा नाम मुश्ताक अहमद है।'

'आप रंगमहल वाले नवाब मुश्ताक अहमद सालार जंग बहादुर हैं?' डाक्टर ने कुछ झिझकते हुए और आदर प्रदर्शित करते हुए कहा।

'जी हां, और आपके वालिद मरहूम। खुदा उन्हें जन्नत दे। मेरे गहरे दोस्त थे। मेरी ही सलाह से उन्होंने आपको विलायत पढ़ने को भेजा था।'

'मैं अच्छी तरह हुजूर के नाम से वाक़िफ हूँ। पिता जी ने मुझसे अक्सर आपका जिक्र किया है, और यह भी बताया था कि आप ही ने मेरी विलायत की तालीम का कुल सर्फा उठाया था। वे मरते दम तक आपका नाम रटते रहे, लेकिन मुलाक़ात न हो सकी। आप शायद यहां अरसे से नहीं रहते हैं।'

'जी हां, मैं अरसे से करांची में रह रहा हूं। कल ही हम लोग मसूरी से यहां आये हैं। इधर कई साल से मैं गर्मी में मसूरी ही रहता हूँ।'

'आपने दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया। अब फरमाइए, आपकी क्या सेवा मैं कर सकता हूँ।'

'शुक्रिया' नवाब ने अजब अन्दाज से सिर झुकाया, आंखें बन्द कीं, और क्षण भर कुछ सोचा, फिर जैसे एकाएक साहस मन में

लाकर कहा—'यह मेरी पोती शाहज़ादी हुस्न बानू है। भां बाप इसके कोई नहीं है। मेरी भी अब कोई दूसरी औलाद नहीं है। यही वारिस है। बात इसी के मुतल्लिक़ होगी।"

'मर्ज़ क्या है ?' डाक्टर ने सहज स्वभाव पूंछा।

'मर्ज़ ? मर्ज़ बेआबरुई।'

डाक्टर कुछ भी न समझ सका। उसने अकचका कर बाला की ओर देखा; जो इस समय बुर्के के भीतर पीपल के पत्ते के समान कांप रही थी। फिर उसकी प्रश्न सूचक दृष्टि नवाब के चहरे पर अटक गई।

बूढ़े ने जब अकम्पित वाणी से कहा—'शायद इस नए मर्ज़ का नाम आपने अभी न सुना हो। आप बड़े डाक्टर तो ज़रूर हैं, पर नए हैं, नौजवान हैं, ज़िन्दगी सलामत रही तो आप देखेंगे—कि ऐसी बीमारियां आम होती हैं, ख़ास कर बड़े घरों में तो यह बेहद तकलीफदेह हो जाती हैं।' एक दार्शनिक सा भाव उसकी आंखों और होठों में खेल गया। डाक्टर उलझन में पड़ गया। उसने कहा—'मिहरबानी करके ज़रा साफ़ साफ़ कहिए मामला क्या है।'

'यही मुनासिब भी है। लड़की हामिला है। उम्र इसकी २२ साल की है। और इसी नवम्बर में इसकी शादी नवाब वजीर अलीखां से होना क़रार पा चुका है।'

परेशानी की रेखाएं डाक्टर के माथे पर खिच गईं। उसने कहा—'लेकिन, लेकिन इसमें मैं आपकी क्या मदद कर सकता हूँ, आप मेरे मुरब्बी ज़रूर हैं पर आप मुझ से कोई ग़ैर क़ानूनी काम कराने की तो उम्मीद ही न रखेंगे।'

'कतई नहीं' मैं तो आप से महज़ एक इन्सानी फर्ज़ अदा कराना चाहता हूं। आपके वालिद की दोस्ती के नाम पर, या उस सलूक के बदले, जिसका अभी आपने जिक्र किया है। इसके सिवा मैं आपको इसका मुनासिब मुआविज़ा भी दूंगा।'

'लेकिन आप चाहते क्या हैं ? किस तरह मैं आपका फर्ज़ अदा कर सकता हूँ।'

'बताता हूँ। पहिले आप मेरे कुछ सवालों का जवाब दीजिए।'

'पूछिए आप ?'

'आपकी शादी हो गई है ?'

'जी हां'

'आपको कोई बाल बच्चा है।'

'जी नहीं।'

'बहतर, तो आप इस बच्चे के 'धर्म-पिता' बन जाइए। मैंने हिन्दु आलिमों से सुना है, भले हिन्दु 'धर्म पिता' होना सवाब का काम समझते हैं। मैं इक्कीस गांवों का समूचा इलाका इस बच्चे के नाम कर दूंगा। लेकिन बज़ाहिरा आप बच्चे के धर्म पिता नहीं, असल बाप ही कहलायेंगे। यानी यह बच्चा मेरी लड़की का नहीं, आपका जानी बच्चा, आपका और आपकी बीवी का पैदायशी बच्चा कहलायगा। और मैं आपके इस बच्चे का 'धर्म पिता' बनकर अपनी आधी जायदाद, यानी इक्कीस मौज़ों का इलाका बच्चे के नाम लिख दूंगा।'

डाक्टर का सिर घूम गया। उसने कहा—'लेकिन यह हो कैसे सकता है ?'

'आप मंज़ूर कर लीजिए, तो मैं यह भी अर्ज़ करूंगा।'

'आप पूरी बात कह लीजिए, तो मैं कुछ सोचूं, और अर्ज़ करूं।'

'पहली बात तो यह, कि आप और आपकी बीबी दोनों हमारे साथ मसूरी चलें। और जब तक बच्चा पैदा होकर तीन महीने का न हो जाय, हमारे साथ वहीं रहें। इस दौरान में मैं आपको बतौर हर्जाने पांच हज़ार रुपये महावार दूंगा, इसके अलावा तमाम अखराजात भी मैं ही उठाऊंगा। किसी किस्म की तक़लीफ़ आप

को न होगी। यह मई का महीना ख़त्म हो रहा है, जुलाई या अगस्त में डिलीवरी हो जायगी। और अक्टूबर के आख़ीर तक आप ढाई या तीन माह के अपने बच्चे को लेकर बख़ुशी दिल्ली आ सकते हैं। किसी को कानों कान यह शक करने की गुंजाइश भी न रहेगी कि बच्चा आपका नहीं है। यहां आकर आप एक दावत अपने दोस्तों को दे सकते हैं, तभी मैं भी आपको दावत देकर इलाका आपके बच्चे को लिख दूंगा।'

डाक्टर सोच में पड़ गए। फिर कहा—'मुझे आप सोचने का कुछ समय दीजिए। फिर मुझे अपनी स्त्री से भी सलाह करनी होगी।'

'सोचने विचारने का मौका मैं आप को नहीं दूंगा। और आप की बीवी से इस मामले में मैं ही बात करूंगा। और, आप अगर मेरी यह आरज़ू नहीं मानेंगे तो मैं समझूंगा कि मैंने आपके पास आने में ग़लती की। फिर यह भी मैं समझ लूंगा कि मेरे और आप के वालिद के बीच पचास साल तक जो भाई चारा रहा, उसकी क़ीमत आप, गो कि बहुत शरीफ़ और आमिल हैं, कानी कौड़ी के बराबर भी नहीं समझते।'

बूढ़ा नवाब तैश में आकर खड़ा हो गया। फिर उसने कहा—'और कुछ मिनिट आपके बरबाद होंगे—यहां तक जब बात हो चुकी है तो आपको मुनासिब है कि आप बानू से भी दो २ बातें कर लें। मैं तब तक बाहर जाता हूँ।'

इतना कहकर नवाब उसी भांति छड़ी टेकता हुवा बाहर आकर कार में बैठ गया।

डिस्पेन्सरी में रह गये—डाक्टर और हुस्नबानू शाहज़ादी। कुछ देर सन्नाटा रहा—इसके बाद हुस्नबानू ने कहा—'ज़रा तकलीफ़ उठाकर डिस्पेन्सरी का दरवाजा भीतर से बन्द कर लीजिये—बेआबरुई का मर्ज है—डाक्टर से परदा फ़ज़ूल है मगर दीगर····।'

वीणा की झन्कार के समान कुछ कोप के से ये स्वर डाक्टर की चेतना को आहत सा कर गये।

डाक्टर ने उठ कर द्वार बन्द कर लिया। दरवाजा बन्द करके जब वह लौटा, तो उसकी आँखें चौंधिया गईं। हुस्नबानू ने अपना बुर्का उतार कर रख दिया था—सलेटी रंग की न्यूकट जार्जेट की साड़ी में छन कर उसका धवल कुन्दकली के समान नवल रूप आलोक बखेर रहा था। आंखें उसकी रोते रोते सूझ कर फूल गईं थीं—वे लाल चोट हो रहीं थीं—फिर उनमें व्यक्त क्रुद्ध सिंहनी के समान तीखी दृष्टि डाक्टर पर केन्द्रित थी। हीरे के समूचे टुकड़े से जैसे उसका मुख चन्द्र निर्मित हुआ था। वह उज्जवल गौर वर्ण और सुडौल शरीर ऐसा था, जैसा डाक्टर ने अपने जीवन में आज तक नहीं देखा था। उस रूप में माधुर्य के साथ ही एक तेज—गौरव और प्रताप व्यक्त हो रहा था—जिससे अभिभूत होकर डाक्टर की वाणी जड़ हो गई। उसके मुंह से बोली न निकली। उस तेज को जैसे न सहकर उसकी आँखें नीचे को झुक गईं।

बानू ही ने बात शुरू की। उसने कहा—

'आपने इन्कार तो किया नहीं—सिर्फ सोचने का वक्त मांगा है, उम्मीद है, सौदा पट जायगा। सौदा तो बड़े अब्बा ने कर ही लिया है—लेकिन मैं कुछ अख़लाकी सवाल आपसे करूंगी।'

'फरमाईये।'

'मेरा यह काम, जिसकी वजह से मैं इस जिल्लत में फंस गई हूं—आप कैसा समझते हैं?'

'मैं समझता हूं आपके साथ धोखा और विश्वासघात हुआ है।'

'जी नहीं, मैं कोई अपढ़—बेवकूफ और दहकानी, बेसमझ लड़की नहीं हूं। कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी की ग्रेजुएट हूं, और इसी

साल मैंने मनोविज्ञान में एम० ए० की डिग्री ली है।'

'तब तो···· ?'

'कहती हूं, मैंने अपने पसंद का जीवन साथी चुना। और इत्मीनान से अपने आपको उसे सौंप दिया। लेकिन बड़े अब्बा को यह पसंद नहीं हुआ। क्योंकि जिसे मैंने अपने को सौंपा, वह महज एक प्रोफेसर है, नवाब नहीं है—नवाबज़ादा भी नहीं है। उसकी कोई खानदानी हिस्ट्री भी नहीं है। बड़े अब्बा की बहुत भारी स्टेट है—वे चाहते तो उन्हीं को सब स्टेट देकर नवाब बना सकते थे। मगर उन्होंने आपको आधी जायदाद देना क़बूल किया—पर उन्हें नहीं। वे नवाब वज़ीर अलीखां बहादुर से मेरी शादी कर रहे हैं—जिनकी तीन बीबियां पहले से मौजूद हैं, और जिनकी सूरत ठीक गैंडे के जैसी है, उम्र भी माशा अल्लाह पचास के ऊपर होगी।'

'आप क्या यह शादी पसन्द नहीं करतीं।'

'कैसे कर सकती हूँ—जबकि मैं अपने आपको किसी को दे चुकी, फिर कहीं कुछ तुक भी तो हो ?'

'तो फिर आप इन्कार कर दीजिये। आप बालिग़ हैं—और उन्हीं से शादी कीजिये, जिन्हें आपने अपना शौहर चुना है।'

'मुझे कोई कानूनी दिक्कत नहीं है, उन्होंने भी यही कहा था। मगर मैं ऐसा नहीं कर सकती।'

'क्यों नहीं कर सकतीं।'

'इसलिये कि बड़े अब्बा ने मुझे बचपन से अपना प्यार दिया है। जब अब्बा न रहे तो मुझे गोद में लेकर वह यही कहकर दिल की आग बुझाते रहे कि—तू उसी का नूर है। बड़े अब्बा बड़े शानदार आदमी हैं। बड़े हौसलेमन्द हैं, बड़े दिल वाले हैं। वे अपनी नवाबी शान को नहीं छोड़ सकते। खानदानी इज्ज़त का ख़याल भी उन्हें बहुत है, इसी से उन्होंने मेरे इस काम को नापसन्द

किया और मेरी शादी नवाब वज़ीर अलीखां बहादुर से तै कर दी। तब मेरा फ़र्ज़ है कि उनकी बात पर हर्फ न लगाऊं—मेरी जरा-सी ज़िन्दगी तबाह हो जाय तो परवाह नहीं, लेकिन मैं उनकी मर्ज़ी के खिलाफ कुछ नहीं कर सकती।'

'लेकिन इस तरह शादी करना तो सरासर एक दूसरे को धोखा देना है। क्या आप नवाब वजीरअली खां बहादुर पर यह राज़ ज़ाहिर कर देंगी ?'

'नहीं कर सकती।'

'और वे प्रोफेसर ?'

'नहीं करेंगे।'

'लेकिन बड़े नवाब आपके आराम और तकलीफ का कुछ ख्याल ही नहीं करेंगे ? वे अगर आपकी शादी प्रोफेसर साहब से कर दें तो कोई झगड़ा-झंझट ही नहीं है।'

'ये सब बातें तो हो चुकीं। घर में कोई न दूसरी औरत न मर्द, सिर्फ मैं और बड़े अब्बा हैं। वे अपनी खानदानी इज्ज़त के बाद मुझी को प्यार करते हैं और मैं अपने से ज्यादा उन्हें प्यार करती हूँ। इसी से—मैंने जब मुंह खोल कर अपनी दिक़्क़त उनके सामने पेश की तो वे गुस्सा नहीं हुए, उन्होंने कहा—तब तो बानू तेरी शादी प्रोफेसर से ही होनी चाहिये, मेरी बात जाय तो जाय। लेकिन मैंने यह मंजूर नहीं किया, और कहा—'यह नहीं होगा, बड़े अब्बा, आपकी बात और खानदानी इज्ज़त पहिले है। मैंने पहिले इसका कुछ ख्याल नहीं किया था—लेकिन अब तो आप जैसा चाहेंगे वैसा ही होगा।'

'डाक्टर के हृदय में कहीं जाकर दर्द उठा। उसने आंख उठा कर बानू के लाल लाल फूले हुए नेत्रों को देखकर कहा—'तो फिर, आपकी ये लाल लाल फूली हुई आंखें।'

'अपने लिए नहीं, उनके लिए – जिनकी जिन्दगी मैंने सूनी

करदी। लेकिन फर्ज कीजिए मैं मर ही जाती – तब भी तो उन्हें सब्र, करना पड़ता।'

एकाएक डाक्टर के मन में एक बात उठी। उसने कहा—

'तब तो, नवाब जो काम मेरे सुपुर्द करना चाहते हैं, प्रोफेसर के सुपुर्द भी कर सकते हैं। यह ज्यादा ठीक भी रहेगा।'

'बड़े अब्बा ऐसा नहीं कर सकते। मैं कह चुकी हूं। फिर मैं भी इसी में भलाई समझती हूं— कि मुझ से और बच्चे से उनका कोई ताल्लुक़ ही न रहे।'

'सिर्फ बड़े नवाब साहेब की एक सनक के लिए आप कई २ जिन्दगी बर्बाद कर देना पसंद करती है।'

'ऐसा तो दुनिया में होता ही है डाक्टर, लड़ाई में लाखों जवान जो कट मरते हैं— सो कुछ अपने किसी काम से नहीं— अपने जनरल के हुक्म से। मालिक के नाम और काम के लिए। यों एक एक जान की कीमत को लेकर हम कहां तक दुनियां में आगे बढ़ सकते हैं।'

'आपके विचार पाक हैं, आदर्श ऊंचे हैं, मैं उन्हें पसंद भले ही न करूं— लेकिन मैं आपकी इज्जत के लिए— आप जैसा कहेंगी, करने को राज़ी हूँ।'

'लेकिन आपकी बीवी।'

'वह तो नवाब साहेब ने अपने जिम्मे ली है।'

'शुक्रिया, मेरी अपनी एक आरजू है।'

'फर्माइए।'

'मेरे बच्चे से, चाहे वह लड़का हो या लड़की— कभी भी उसकी मां का नाम न बताइए— न बाप का। और मुझे कभी २ उसे देख लेने और प्यार करने की इजाजत दीजिए। अल्लाह आपका भला करेगा।

'बानू, ऐसा ही होगा।'

'तो बात ख़त्म हुई। दरवाज़ा खोल दीजिए और बड़े अब्बा को बुला लीजिए। उसने बुर्क़ा पहन लिया।

'नवाब के भीतर आने पर डाक्टर ने कहा—आपका हुक्म बजा लाऊंगा, लेकिन मेरी दो शर्तें हैं—एक मेरी स्त्री को आप राज़ी करलें, दूसरे वह सौदा सुलफ रहने दें। जमीन जायदाद की बात छोड़ दें।'

ख़ैर, तो ये दोनों बातें आप मुझी पर छोड़ दिजिए। मैं कल सुबह आपकी बीवी से बात करने आऊंगा।'

वह उठा। उसी भांति डाक्टर को अभिवादन किया और बानू के कन्धे पर सहारा देकर धीरे २ डिस्पेन्सरी से बाहर हो गया।

३

डाक्टर की पत्नी का नाम था अरुणा, उन्हें राज़ी करने में नवाब को कठिनाई नहीं हुई—सन्तान की प्रच्छिन्न लालसा तथा स्त्री जाति पर दया भावना से अभिभूत होकर उन्होंने स्वीकृति दे दी। अतोल सम्पदा पर भी उनका ध्यान गया। डाक्टर यद्यपि कहते थे कि वे सौदा नहीं चाहते—परन्तु यह ऐसा सौदा न था जो आसानी से अपने प्रलोभन का प्रभाव जाने दे। फिर हुस्न बानू को देखकर डाक्टर जिस प्रकार प्रभावित हो गया था उसी भांति डाक्टर की पत्नी भी प्रभावित हुई।

इस प्रकार सब बातें ठीक ठाक तय हो गईं और डाक्टर सपत्नीक नवाब के साथ मसूरी चले आए। यथा समय हुस्नबानू ने पुत्र को जन्म दिया—और प्यार और खून का सदमा खाकर उसने उसे आंसुओं से आंखें भर कर डाक्टर पत्नी को दे दिया। सारे ही औपचारिक बन्दोबस्त हो गये और एक दिन—हुस्नबानू

के उस कलेजे के टुकड़े को अपनी बिना दूध की छाती से लगाकर अरुणा देवी दिल्ली चली आईं। दुःख और शोक से असहाय हुस्नबानू मूर्छित हो गई।

दिल्ली में आकर डाक्टर अमृतराय ने धूमधाम से पुत्र जन्मोत्सव मनाया। हिन्दु संस्कार किये—और बालक का नाम रखा—दिलीपकुमार राय।

कुछ दिन बाद नवाब ने दिल्ली आकर अपने घर एक जश्न किया—उसमें सभी परिचित हिन्दु-मुसलमान मित्र परिजनों को बुला, सबके सामने डाक्टर, उनकी पत्नी और पुत्र का अभिनन्दन किया। नवाब ने कहा—'यह डाक्टर अमृतराय मेरे दोस्त बंसगोपालराय के पुत्र हैं। बचपन ही से मैंने उन्हें अपना पुत्र समझा है—मेरे और बंसगोपालराय के बीच भेदभाव न था। हम लंगोटिया यार थे। मैंने ही हट करके इन्हें विलायत भेजा था। मैंने ही इनकी शिक्षा का सारा खर्च बर्दाश्त किया। अब, जब डाक्टर अमृतराय को पुत्र का लाभ हुआ है—और इस खुशी में शामिल होने के लिये बंसगोपाल ज़िन्दा नहीं रहे—मैं उनकी जगह उनके हिस्से की खुशी ज़ाहिर करता हूँ और मेरी यह खुशी सिर्फ ऊपरी ही नहीं है—दिली है। इसका अभी मैं एक सबूत आपको दूंगा—बंसगोपाल ज़िन्दा होते तो वह भी यही करते।'

इतना कहकर नवाब क्षण भर को रुके। एक नज़र उन्होंने उपस्थित लोगों पर डाली। शायद अपने खसकते हुए हृदय को बल दिया। हुस्नबानू की—स्मृति पर पर्दा डाला—आंखों के उमण्डते आंसुओं को भीतर ही जज्ब किया और आवाज़ की कपकपी को सम्हाला। फिर धीर स्थिर स्वर में कहा—'आप सब जानते हैं, मेरी कोई औलाद नहीं। मेरी पोती हुस्नबानू ही एक मेरा सहारा है। आज हुस्नबानू के बाप छोटे नवाब ज़िन्दा होते तो वह भी अमृतराय की बराबर ही होते, मगर खुदा ने उन्हें अपनी खिदमत

में ले लिया। शुक्र है उसका। अब, आप देखते हैं—मैं सुबह का चिराग़ हूँ। मेरा दिल प्यार से भरपूर है, ज़िन्दगी भर मैंने अपने फ़र्ज़ को अव्वल दर्जा दिया है—आज भी मेरा वही ख्याल है।

दुनिया के सामने दोस्ती की मिसाल पेश करने का इरादा नहीं रखता—न हिन्दु-मुस्लिम भाईचारे का कोई दिखावा कर रहा हूँ—मैं तो सिर्फ अपने दिली प्यार, जज़्बे और फर्ज़ को देख रहा हूँ। और मैं आज अपनी तमाम जायदाद के दो हिस्से करता हूँ। आधी जायदाद—मैं अपनी पोती शाहज़ादी हुस्नबानू को देता हूँ और आधी—अपने दोस्त के लड़के के लड़के-इस नन्हे से फ़रिश्ते को। आप आमीन कहिये।'

लोग सक्ते की हालत में आ गए। इतना बड़ा दान, दोस्ती का इतना बड़ा पुरस्कार, उन्होंने सुना भी न था। नवाब ने कांपते हाथों से दान पत्र जेब से निकाल कर हुस्नबानू की ओर देखा जो वहां स्त्रियों के बीच बैठा थी—नवाब की आवाज कांपी—मगर उन्होंने कहा—'बेटी हुस्न, खड़ी हो जाओ, और दुनियां के एक पाक काम को अंजाम देने में अपने इस बूढ़े अब्बा की मदद करो, यह कवाला लो—और अपने मुबारक हाथों से उस नन्हें फरिश्ते के हाथ में देदो।'

सैकड़ों आंखें उसी ओर उठ गईं। हुस्न बानू उठी—और उसने अकम्पित हाथों से कवाला लेकर अरुणा देवी की गोद में लेटे हुये बालक के हाथों में दे दिया। परन्तु इसके बाद ही उसके पैर लड़खड़ा गये। बूढ़े नवाब ने भांप कर उसे सम्भाला, वह उसे भीतर ले गये। भीतर जाते ही हुस्नबानू मूर्छित होकर धरती में गिर गई।

पर किसी ने भी इस मर्म पीड़िता, बाणविद्धा हरिणी की वेदना को नहीं जाना। बाहर शहनाई बज रही थी—डाक्टर पर गुलाबपाशियों की वर्षा हो रही थी—हर्षोन्माद में लोग भांति २

की बातें कह रहे थे। कोई आश्चर्य मुद्रा से कपार पर आंखें चढ़ा कर कह रहे थे—'अभूतपूर्व है, अद्भुत, ऐसी दोस्ती का निभाव, ऐसा त्याग, ऐसा दान देखा नहीं, सुना भी नहीं।'

खाने पीने की धूमधाम चली। इत्र पान से सत्कृत होकर आगत समागत सब अपने घर गए। केवल डाक्टर दम्पति एक असहनीय भार सा अपने पर लाद कर चुपचाप अपने घर लौटे।

४

लेकिन इस भारी सुव्यवस्थित व्यवस्था में डाक्टर अमृतराय अव्यवस्थित हो गए। हुस्नबानू के प्रति गहरी आसक्ति ने उन्हें अभिभूत कर लिया। डाक्टर अमृतराय एक चरित्रवान, बुद्धिमान और जिम्मेदार आदमी थे। मर्यादा का उन्हें बहुत ज्ञान था। पत्नी अरुणा के प्रति उनमें गहरी आत्मीयता थी। इस घटना से प्रथम दोनों पति पत्नी एक प्राण दो शरीर रहते थे—अरुणा को छोड़ कर कोई दूसरी स्त्री भी संसार में है—यह उन्होंने कभी जाना भी न था। परन्तु इस असाधारण संयोग में, एक विशिष्ट भावना के वातावरण के भंवर जाल में फंसकर, तथा हुस्नबानू के असाधारण-रूप माधुर्य सुषमा, तेज और निष्ठा से वे जैसे एक बारगी ही अपना आपा खो बैठे। उन्होंने बहुत समय तक मन की पीड़ा को बहलाया—जब पीड़ा असह्य हुई। और उसका असर उनके शरीर और चेष्टाओं पर पड़ने लगा तो वे असंयत हो गये—कभी एक आह और कभी गहरी निश्वासें निकल जातीं, हंसी उनकी विद्रुप और निष्प्राण हो गई। दृष्टि सूनी, प्राण व्याकुल औ मन हाहाकार से भर गया। डाक्टर का यह भाव परिवर्तन देखा औरों ने भी—पर सबसे अधिक देखा हुस्न बानू ने। और उसके बाद अरुणा ने। परन्तु समझा

दोनो ने भिन्न २ रूप में। अरुणा को संदेह हुआ कि कोई शरीर व्याधि है। उसने बहुत बार पूछा—और डाक्टर ने वैसी ही निष्प्रभ हंसी में उसे टाल दिया। परन्तु—वे महा मेधाविनी हुस्नबानू को भुलावे में न रख सके। और एक दिन दोनों में खुलकर बातें हुई।

हुस्न बानू ने कहा—

'भाई जान, क्या आप मेरे इस तरह पुकारने पर नाराज होंगे?'

'जी नहीं, डाक्टर ने घबराकर कहा।'

'तो फिर सिर्फ 'नहीं' कहिए, 'जी नहीं' नहीं। और अगर मैं आपको 'तुम' कह कर पुकारूं?'

'तो—तो मैं समझूंगा, तुमने मुझे निहाल कर दिया, जीवन दान दे दिया।'

'शुक्रिया, पहल तुम्हीं ने की। लेकिन मैंने सुना है आप सात विलायत घूम आए हैं?'

'यों ही, आदतन घुमक्कड़ हूं। इंग्लैंड जब डिग्री लेने गया तो एक डिग्री अमेरिका की भी ले लूं यह इच्छा हुई। इसी सिलसिले में दूसरे मुल्कों की भी सैर हो गई।'

'तब तो मुझे समझना चाहिए कि दुनिया की ऊंच नीच, भलाई बुराई और अपना नफा नुकसान आप बखूबी समझ सकते हैं।'

'लेकिन मैं कोई ज्यादा समझदार आदमी नहीं हूं।'

'हो सकता है, लेकिन नासमझ होना कोई तारीफ की बात नहीं है भाईजान, खास कर आप जैसे जहांदीदा आदमी के लिए।'

'क्या कहीं मुझ से कोई ग़लती हो गई बानू? क्या मैंने तुम्हें नाराज़ कर दिया? कहो यदि ऐसा है तो कभी अपने को माफ़ न करूंगा।'

'नाराज़ नहीं, मुझे तुमने तकलीफ दी है, और मेरी यह तकलीफ मेरे लिए नहीं, तुम्हारे लिए है। तुम, मुमकिन है अपने

को माफ न करो, कोई सज़ा ही अपने ऊपर लो, तो जानते हो, यह मैं किसी हालत में बर्दाश्त नहीं कर सकूंगी।'

'तो तुम, बानू ....' डाक्टर के मुंह से बात पूरी निकली नहीं।

'हां, मैं तुम्हें प्यार करने लगी हूं, यह सच है। तुम मेरी आंखों में यह न देख पाते तो शायद अपनी यह हालत न बना लेते मगर तुमने मेरी यह जुरत नहीं देखी कि मैं प्यार और प्यार से भी ज्यादा लख्तेजिगर तक की परवा नहीं करती। मैं पहिले अपने फर्ज़ को देखती हूँ।'

'लेकिन .... '

'तुम जो कुछ कहना चाहते हो वह मैं जानती हूँ। ज़बान खोलने से क्या फायदा? मैं तो तुम्हारे रोम २ की हरकत में, तुम्हारी नजरों में, तुम्हारी लम्बी २ सांसों में, सूखे होठों में, तुम्हारी सब बातें पढ़ चुकी। नादान नहीं हूँ भाई जान, लेकिन हद से आगे कदम रखना अच्छा न होगा, सिर्फ तुम्हारी ज़िन्दगी बर्बाद हो जायगी।'

'मुझे कुछ कह लेने दो बानू।'

'कहना चाहते हो तो कहो, लेकिन उस से फ़ायदा कुछ न होगा। मैं जानती हूँ कि तुम जो कुछ कहोगे, उसका सब मिलाकर सार यही होगा कि–तुम मेरे बिना जिन्दा नहीं रह सकते। सो इस का जवाब मैं तुम्हें वही देती हूँ, जो मैंने हवीब साहब को दिया था, यानी, अगर ज़िन्दा रहोगे, खुश रहोगे, मुझ पर अपनी बरकत की नजर डालोगे, तो मैं तुम्हें फरिश्ता समझ कर परिश्ति करूंगी। तुम्हारी मूरत मेरी आंखों पर रहेगी। और अगर मर मिटोगे, तो मैं तुम्हें एक नाचीज़, हक़ीर, अदना इन्सान समझूंगी। तब सिर्फ ज़रासी हमदर्दी ही मेरे दिल में तुम्हारे लिए रह जायगी। और कुछ नहीं।'

'तो बानू, क्या प्यार की यही सजा है ?'

'सजा है कि इनाम, यह तो समझने की बात है। मगर मैं तो यह समझने लगी हूँ कि प्यार की सही सूरत तो जुदाई ही है, मिलन नहीं। वह जुदाई, जहां प्यार की भूख रोम २ में रम कर जिस्म को प्यार से शराबोर कर देती है। इतने जतन से जो लज़ीज़ खाना तैयार किया जाता है, उसे भर पेट खा चुकने पर तो जो जूठन बच रहती है, उस पर तो नफरत और हिकारत की नजर डालना कोई पसन्द नहीं करता। उसे तो कुत्तों को खिलाकर बर्तनों को जल्द से जल्द धोकर साफ कर डालना ही सब सलीक़े वाले लोग पसन्द करते हैं। प्यार तो पत्थर का बुत है, जिसे हिन्दू पूजते हैं। भीतर बाहर वह सब तरफ पत्थर है—ठोस, वहां अहसास कहां ? इसी से वह प्यार सब भूख प्यास से पाक साफ होकर भक्ति बन जाता है। इस भक्ति से किसी का पेट नहीं भरता। कभी ऊब नहीं पैदा होती। वह इतना पाक हो जाता है कि सिवा पूजा करने के दूसरी किसी बात का ख्याल दिमाग़ में लाया ही नही जा सकता।'

डाक्टर की आंखों से झरझर आंसू झरने लगे। उसने कहा—

'मानता हूं, बानू, मैं एक कमज़ोर आदमी हूँ, और तुम बेशक इन्सान से परे कोई शै हो—फिर भी मैं शायद बर्बाद हो चुका। दुनिया के किसी काम का न रहा।'

'तब तो बड़े अब्बा ने तुम्हें ऐसा नाज़ुक काम सौंप कर बड़ी ग़लती की। तुम न सिर्फ़ अपने ही को, मेरे लड़के को, अब्बा की इज्ज़त को, और अरुणा बहिन की ज़िन्दगी को भी बर्बाद करोगे। कहो—क्या तुम अपनी कमजोरी को दूर नहीं कर सकते ? अब भी वक्त है, मैं अब्बा से कह कर कुछ दूसरा बन्दोबस्त करूं।'

'नहीं बानू ऐसा नहीं हो सकता। तुम जैसा कहोगी मैं वही करूंगा, और कलेजे पर पत्थर रखकर मैं तुम्हें भूल जाऊंगा। मैं समझूंगा, एक सपना देखा था। झूठा सपना।'

'नहीं भाई जान, ऐसा तुम न कर पाओगे। मैं तो मुजस्सिम तुम्हारे सामने हूँ। और अब जो ताल्लुक़ात मेरे तुम्हारे बीच पैदा हुए हैं, ताज़ीश्त रहेंगे। और जब तक हम दोनों ज़िन्दा है, एक दूसरे को भूल न सकेंगे। हम शायद बहुत बार मिलेंगे, बहुत बार हसेंगे, बहुत बार एक दूसरे से टकराकर एक दूसरे को चोट पहुँचाऐंगे, वह चोट हमें चुपचाप सहनी पड़ेगी। वह आग जो क़िस्मत ने हमारे कलेजे में जला दी है, भीतर ही जलती रहेगी उसका धुआं तक हमें भीतर ही भीतर निगलना पड़ेगा भाई जान।

बहुत देर तक दोनों चुप रहे। अन्त में डाक्टर ने सिर उठा कर कहा— 'तो बानू ऐसा ही हो।'

'लेकिन अब भी बानू।'

'नहीं बहन—नहीं।'

डाक्टर ने झुक कर हुस्नबानू के पैर छू लिए। आखों की पुतलियों को आसुओं में तैराकर हुस्नबानू ने कहा—

'यह क्या किया ?'

'हम हिन्दू हमेशा बड़ी बहिन के पैर पूजते हैं, इसी से।'

'लेकिन मैं तो तुम से उम्र में बहुत छोटी हूँ।'

'तो इससे क्या ? तुम हर तरह मुझ से बहुत बड़ी हो।'

डाक्टर तेज़ी से चले गए। हुस्नबानू देर तक बैठी रोती रही।

५

अरुणा देवी पर भी यह रहस्य प्रकट हुऐ बिना न रहा। उनका शरीर थरथराने लगा, और वह बीमार हो गई। परन्तु पति से उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा। न शिकायत की। वह घुलने लगी। मसूरी की स्वास्थयप्रद जलवायु ने उन्हें कुछ भी लाभ न पहुंचाया। हुस्नबानू

ने शिशु को जन्म देकर अरुणा के सुपुर्द कर दिया। इससे उनपर दुहरा भार पड़ गया। पहिले जिस भावना से अभिभूत हो वह इस काम में योग देने को तैयार हो गई थी— अब उनमें वह उत्साह नहीं रहा। बालक बहुत सुन्दर, जैसे हीरे की कनी हो—ऐसा था— पर उस निरीह निर्दोष शिशु के प्रति भी उनके मन में एक विरक्ति के भाव उदय हो गए। इन सब बातों को उन्होंने बहुत छिपाया— फिर भी वह छिपी न रही— न हुस्नबानू की नज़रों से, न डाक्टर की नज़रों से। परन्तु हुस्नबानू ने इस सम्बन्ध में उनसे कुछ बात न कही। न उन्होंने डाक्टर ही से इस सम्बन्ध में एक शब्द कहा। जब नवाब ने आधी जायदाद बच्चे को देदी, तब भी अरुणा के मन का बोझ घटा नहीं। उसकी वेदना वैकल्य और भी बढ़ गया।

परन्तु हुस्नबानू की प्रभावशाली बातचीत से डाक्टर का मन एक नवीन बल प्राप्त करके कुछ हल्का हुआ। और उनहोंने मुस्तैदी से इस दर्द को चुपचाप सहने का इरादा कर लिया। एक दिन अवसर पाकर वह पत्नी के पास आकर उसके पलंग के पायताने उसके पैर गोद में लेकर चुपचाप बैठ गए।

अरुणा ने जल्दी से पैर सिकोड़ कर कहा–'यह क्या करते हो। वहां क्यों बैठ गए—यहां बैठो।' उसने तकिया सरका कर सिरहाने जगह की।

डाक्टर ने कहा—'अरुणा, अपनी शर्म तुम्हें कैसे दिखाऊं— लेकिन तुम क्या मुझे माफ़ नहीं कर सकतीं?'

'क्या बात है, साफ २ कहो।'

'कहने से क्या होगा, तुम सब जानती हो, तुम्हारी यह हालत हो गई है। यह सब मेरी ही तो मूर्खता से न। पर अब मेरी आंख खुल गई–बहिन ने मेरी आंख खोल दी?'

'बहिन? कौन बहिन?'

'हुस्नबानू! मेरा मन मोह और पाप में फंस गया था। उसका

वह रूप, शील, तेज और सबके साथ इस परिस्थिति ने मेरे मन में मैल पैदा कर दिया था। मैं उसके प्रेम में विकल हो गया। वह भी शायद लाचार होगी। पर उसने मुझे सीधी राह दिखा दी।'

'सीधी राह।'

'हां, प्रेम और भक्ति का भेद।' और उसी समय मैंने उसके पैरों की पूजा भक्तिभाव से की। वह स्त्री नहीं है, देवी है, प्यार की नहीं, भक्ति की पात्री है। वह महान है, देवताओं की जाति की है। तुम सब मुझे नास्तिक कहतीं और मेरा मजाक उड़ाती रहतीं थीं-पर तुम मुझे आज तक अपने ठाकुर का पुजारी न बना सकी। पर उसने बना दिया—उसकी मैंने पूजा करली। अब तुम्हारी करूंगा। और फिर तुम्हारे इन राधा कृष्ण की युगल जोड़ी की। श्रद्धा और भक्ति से मेरा रोम २ पुलकायमान हो रहा है। लाओ अपने दोनों पैर मेरी गोद में रख दो—कि मैं समझूं कि मैं पाक साफ हो चुका—अपनी गलती सुधार चुका। तुम्हारा हो चुका। अरुणा चुपचाप आंसू बहाती रही। और डाक्टर ने जब फिर उसके पैरों पर हाथ डाला, तो उसने पैर खींच कर—पति के दोनों हाथ पकड़ कर उन्हें अपने वक्ष पर गिरा लिया।

वह मूक रुदन बहुत कुछ कह गया। दुख दर्द की कहानी। बहुत कुछ बहाकर ले गया-दुख दर्द की गन्दगी। अन्त में अरुणा ने सिसकते हुए कहा—

'तुम जानते ही हो-कि धरती आसमान पर मेरे लिए एक तुम्हारा ही आसरा है। मैंने अपना यह अधम नारी देह तुम्हें दिया है-अब तुम्हीं यदि मुझे धोका दो—सोचो तो जरा।'

परन्तु अरुणा अधिक न कह सकी, डाक्टर का मुंह देखकर उसने सिर नीचा कर लिया। बड़ी देर तक दोनों मूक बने बैठे रहे-फिर धीरे से अरुणा ने हाथ बढ़ा कर पति का हाथ पकड़ लिया-उसने आंखों में आंसू भर कर कहा—'क्या मैंने तुम्हें बहुत दुखी

कर दिया ?'

डाक्टर फिर भी चुप रहे। अरुणा एक बारगी ही असंयत हो उठी—उसने कहा—'मुझे तुम जो चाहे सजा दे लो—पर ऐसा मुंह न बनाओ। यह मैं नहीं देख सकती।'

डाक्टर ने कहा—'अरुणा, तुम्हारे इस प्रेम का तो ओर छोर ही नहीं है। पर अब तुम अपने पति पर विश्वास करो। मैं तुम्हारा हूँ—सिर्फ तुम्हारा। हुस्न बानू ने मेरे तुम्हारे बीच एक अटूट सम्बन्ध पैदा कर दिया है। सम्बन्ध या बन्धन जो भी तुम कहो। वह ऐसा नहीं कि एकाएक भंग हो जाय। मैं उसका चिर कृतज्ञ हूँ अरुणा—पर जिस तरह पैर पकड़ कर मैं क्षमा मांग सका-तुम से न मांग सकूंगा।'

'कैसे मांग सकोगे भला। मेरे तुम्हारे बीच इतना अन्तर है ? इतना द्विभाव है ? कि तुम अपराधी बनो और मैं क्षमा करूं ? न, न, इस नाटक की जरूरत नहीं है। तुम अपराध करोगे तो भी पाप करोगे तो भी, पुण्य करोगे तो भी, सब में मेरा हिस्सा है। हम तुम दो कुछ थोड़े ही हैं।'

'नहीं हैं, न रह सकते हैं।'

इतना कह कर डाक्टर ने अरुणा को आलिंगन पाश में बांध लिया। और पति पत्नी दोनों का मन जैसे स्नानपूत हो उठा।

नवाब मुश्ताक अहमद सालार जंग बहादुर ने सारी योजना अत्यधिक सावधानी और दूरदर्शिता से तैयार की थी। डाक्टर की इस बच्चे वाली घटना में कुछ रहस्य है इसका किसी को शानो गुमान भी नहीं हुआ। इसका श्रेय वास्तव में हुस्नबानू के असाधारण दृढ़ स्वभाव को था। उसने किसी भी चेष्टा से यह प्रकट नहीं होने दिया कि इस करुण नाटक में उसका भी कुछ भाग है। निस्संदेह डाक्टर को वह प्यार करने लगी थी। कुछ उम्र और प्रकृति के तक़ाज़े की ही बात नहीं, डाक्टर का व्यक्तित्व भी ऐसा ही था—

परन्तु उसने जिस दार्शनिक ढंग पर डाक्टर को उस प्रेम प्रसाद से विरत किया—उससे वह स्वयं विरत न हो सकी। डाक्टर के प्रति उसका असाधारण विमोह उसकी सम्पूर्ण चेतना को आहत कर गया था। वह घाव उसका न भरना था—न भरा। पर उसने अपने किसी संकेत से—व्यंजना से—यह बात प्रकट न होने दी। वह जैसे डाक्टर से विशेष परिचित ही नहीं है, यही भाव प्रकट करती रही। बहुत कम एकाध शब्द—डाक्टर से मिलने पर वह बोलती। मुलाकात के प्रत्येक सुयोग को टाल जाती—प्रपिता के एक आत्मीय के पुत्र के प्रति मर्यादा से जितनी आत्मीयता प्रकट करनी चाहिये उतनी ही वह प्रकट करती थी; और डाक्टर का भी यही हाल था। डाक्टर ने अपनी पत्नी से तथा बानू से और अपने आप से भी कह सुन तो बहुत कुछ लिया था—पर बांध कर रखने से प्यासे की नदी के तीर तक जाने की प्रवृत्ति रोकी नहीं जा सकती। फिर भी डाक्टर ने शीलीनता का परिचय दिया था। अरुणा इस अवश आसक्ति को जानती थी—स्त्री होने के नाते उसे भुलावे में रखना संभव न था—परन्तु उसने भी अपने पति और बानू दोनों ही के प्रति अति उदार भाव धारण कर लिया था। इन सब कारणों से एक असह्य कड़वाहट होते २ रह गई थी। और सब काम ठीक २ आगे बढ़ रहा था।

निस्संदेह नवाब मुश्ताक अहमद की बुजुर्गी और बुद्धि तथा धैर्य ने बहुत काम किया था यद्यपि खानदानी प्रतिष्ठा के नाम पर पुत्री को इतने संकट में डालने की उनकी भावना का शायद आप अनुमोदन न करें—परन्तु आप यह भी तो सोचें—कि आप पुराने जमाने के एक खान्दानी रईस हो, आपका व्यापक सुनाम—ख्याति हो—आप आधी शताब्दी तक अपने समाज के शीर्षस्थानीय रहे हों—और आप की पुत्री—पौत्री आप के अज्ञात किसी पुरुष से सम्पर्क में आकर गर्भवती हो जाय—विवाह से पूर्व, तो आप क्या

करेंगे ? संभव है आप दिमाग का संतुलन खोदें और आप उस पुत्र का वध करदें, घर से निकाल दें, उसका मुंह देखना न पसंद करें या आप कोई गुप्त पाप करके कुकृत्य पर परदा डाल दें। पर नवाब ने यह सब कुछ नहीं किया। वह बूढ़ा एक महापुरुष था, और उसकी पौत्री हुस्न बानू एक असाधारण बालिका। इसी से यह सब व्यवस्था निर्दोष और विचित्र रीति पर हो गई। जैसा कि नवाब ने चाहा अपने संस्कार के अनुसार।

प्रोफ़ेसर हबीब को भी नवाब ने अपनी नज़र से दूर न किया, उन्होंने उसे हुस्न बानू से सब सम्बन्ध ही तर्क कर देने को राजी ही न कर लिया—विदेश जाने को भी राजी कर लिया। और एक भारी रक़म उसे देकर पांच साल के लिये विदेश भेज दिया। इसके बाद ही उसने डाक्टर की ओर रुख किया था। अलबत्ता इस काम में भी सब कहना सुनना हुस्न बानू ही ने किया। अपने अपरिसीम प्यार के नाम पर—जीवन के प्रत्येक श्वास को पीड़ामय बना कर हबीब चुपचाप जहाज में जा बैठा।

यथा समय बानू की शादी नवाब वजीर अलीखां जंग बहादुर से हो गई। पुराना नवाबी घर था। दूल्हा भी साधारण न था। रईसों का इस विवाह में जमघट लग गया। रंगमहल के द्वार पर उस समय समूची दिल्ली उमड़ आई। भांड-भंडैले, रोशन चौकी, कटोरे वाले, कव्वाल, रंडी-भड़वे-रईस-अमीर सभी के लिये उस समय रंग महल का द्वार खुल गया। दावतों का तूमार बन्ध गया।

उस समय तक न पाकिस्तान बना था, न हिन्दु-मुस्लिम झगड़े खड़े हुए थे। दिल्ली में भी जफ़र, ग़ालिब, ज़ौक और मीर के कलाम गली गली घूमते रहते थे। बड़े बड़े मुसलमान व्यापारी--अपनी कोठीनुमा दुकानों पर बैठे, अतलस का कुर्ता पहिने—पान कचरते--लज़कती दिल्ली की भाषा में अपने को 'दहलवी' कहकर अपनी सुर्मई आंखों में लाल डोरे सजाये रहते थे। चांदनी चौक

उन दिनों आज की भीड़भाड़ से भरा आदमियों का जंगल न था—वह एक बाजार था—ऐसा बाजार, जहां रईसों की सात बादशाहों की प्रत्येक हलकी भारी जिन्स एक ही जगह मिल जाती थी। जौहरी नुकेदार पगड़ी बांधे, महीन नफीस में अपने भारी भरकम देह ढांके, हीरामोती—पन्ना जवाहर का मोल भाव करते—गिन्नियों और अशर्फियों को परखते थे। नोटों का नाम तक चलना लोगों को पसन्द न था। नफासत और फसाहत दिल्ली की जान थी। पेस्ट्री और टोस्ट नाम कोन खाना था—सोहन हलुवा और दालमोठ दिल्ली की सबसे बढ़कर नियामत थी। आज तो रुपये सेर सब्जी तरकारियां आला अदना खरीद खाते हैं परन्तु तब रुपये सेर की सब्जी रईस खाते थे। रईसों के कहार महरियां सौदा-सुलफ करते थे। हिन्दु पक्के हिन्दु थे—और मुसलमान पक्के मुसलमान। परन्तु इससे उनके आपसी भाईचारे में अन्तर न पड़ता था। परस्पर एक दूसरे के घर आना जाना खाना पीना होता था। मुसलमान के घर जब हिन्दु दोस्त जाता तो यह नौकर को यत्नपूर्वक सावधान करके कहता—बन्नू, जरा सम्हाल कर—अहतियात से नमोली की दुकान से पान बंधवाना। और पान आते थे ढाक पलाश के हरे कोमल पत्तों में खूब अच्छी तरह बंधे—डोरे में हाथ भर नीचे लटकते हुए। मुसलमान नौकर से अछूते।

ब्याह शादी में हिन्दु हलवाई, हिन्दु नौकर खाना बनाते खिलाते और मुसलमान मालिक—दूर खड़ा अदब और बेचैनी से देखता रहता। सब ठीक तो है, इसे वह अपनी तौहीन नहीं—अपना अपना अकीदा—अपना अपना रिवाज समझता था। नवाब मुश्ताक अहमद के हिन्दु मुसलमानों से व्यापक सम्बन्ध थे। बड़े बड़े रईसों से लेकर छोटे लोगों तक की भरमार थी। हिन्दू भी और मुसलमान भी। पर सबके खाने पीने—विनोद

बिहार करने के अलग इन्तज़ाम। क्या मजाल कि कहीं कुछ शिकायत सुनने को मिल जाय।

शादी ख़तम हो गई और रुख़सत की तैयारी हुई। नवाब वज़ीर अलीखां ने पांच लाख का महर बांधा और नवाब मुश्ताक अहमद ने अपनी अवशिष्ट समूची जायदाद दहेज में दे दी। सिर्फ़ रंगमहल अपने लिए रख लिया।

मिहमान विदा होने लगे। डाक्टर और उनकी पत्नी शादी में सम्मिलित होते रहे। ज्यों ज्यों बिदाई की घड़ी नज़दीक आती जाती, हुस्नबानू की बेचैनी बढ़ती जाती थी। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि कहीं मेरा धैर्य जवाब न दे जाय। मेरी छाती दुःख से न फट जाय।

जिस दिन उसे जाना था—उससे एक दिन पूर्व उसने अरुणा को एक पुर्ज़ा लिखा। पुर्ज़े में सिर्फ एक वाक्य था—'बहिन, आज तुम्हारे यहां मेरा न्यौता है, मुन्तज़िर बैठी हूँ—कब बुलाओगी?"

पुर्ज़ा पढ़कर अरुणा को हंसी आ गई पर डाक्टर का मुंह सूख गया। अरुणा ने कहा—'यह क्या, बानू, मांग कर दावत ले रही है।' डाक्टर ने भर्राए स्वर में कहा—'चलो, हम लोग कहीं बाहर चले चलें, कहलादें कि घर पर नहीं हैं।'

'वाह, ऐसा भी कहीं होता है, हमें ख़ुद ही उन्हें दावत देनी चाहिये थी।' और वह व्यस्त भाव से दावत की व्यवस्था में जुट गई। डाक्टर सूखा मुंह, सूखा कण्ठ, सूखा प्राण लिए बाहर चले आये।

*

७

अरुणा ने बहुत से व्यंजन बना डाले थे। फिर भी वह व्यस्त भाव से और बनाए चली जा रही थी। हुस्नबानू चौके से बाहर एक क़ालीन पर बैठी अरुणा का हस्तकौशल देख रही थी—और बात भी कर रही थी। अन्त में उसने कहा—'अब बहुत बना चुकी भाभी, और कितना बनाओगी, उठो। मैं अब भूख बर्दाश्त नहीं कर सकती। उठो, उठो—नहीं मैं आकर छूती हूँ—तुम्हारा सब चौका ख़राब कर दूंगी।'

अरुणा ने हंसती आंखें उठाकर देखा— आंखें तो इस वक़्त बानू की भी हंस रहीं थीं—वे फूली हुई अवश्य थीं। अरुणा ने उसके भाभी संबोधन से आप्यायित होकर कहा—'बस, ज़रा सा और है।'

'नहीं—नहीं, बस उठो।'

'अच्छा, एक यह चीज और, मेरी अच्छी रानी ज़रा ठहरो।'

बानू ने हंस कर कहा—

'तुम्हारा रानी कहना मुझे बहुत भाया भाभी।'

'और तुम्हारे भाभी कहने से तो मैं निहाल हो गई।'

अरुणा चौका छोड़ कर उठी—हुस्नबानू के लिए उसने खाना परोसा और कहा—'खाओ रानी जी, ग़रीब का रूखा सूखा।'

'ऐसे कैसे खाऊं भाभी, तुम भी बैठो। लाओ अपनी थाली।'

'मैं ज़रा ठहर कर खा लूंगी।'

'यह न होगा।'

'नहीं रानी जी।'

'नहीं भाभी जी।'

'ज़िद मत करो, हाथ जोड़ती हूं।'

'फिर तो ज़िद करने कभी आऊंगी नहीं।'

'तो मानोगी नहीं।'

'न, किसी तरह नहीं।'

'तो फिर मैं भी तुम्हारे साथ ही खाऊंगी, एक ही थाल में।'

और वह हुस्नबानू के सामने बैठ गई, थाल से एक ग्रास उठाया। बानू ने कहा—'हैं हैं, यह क्या करती हो भाभी।'

'बहिन, ननद बनना इतना आसान नहीं है, तुम्हारा जिगर का टुकड़ा अब मेरी गोद में है, अब भी भेद भाव रह सकता है। अब भी क्या हम तुम दो हैं। चलो शुरू करो।'

'लेकिन भाभी।'

'दुलखो मत, यह एक पवित्र काम है, पुण्य है, जब तक मैं तुम्हारे साथ नहीं खाऊंगी, तुम्हारे बेटे को अपनाऊंगी कैसे।'

'लेकिन भाईजान क्या कहेंगे सुनकर।'

'खुश होंगे।"

'तो भाभी, जैसा तुम्हारा हुक्म,' उसने ग्रास मुंह में डाला। और आंखों से गंगा जमुना की धार बह चली।

अरुणा ने कहा—'यह क्या करती हो रानी जी, फिर कब मुझे यह नसीब होगा—तुम्हारे साथ खाने का अवसर, हंस बोल कर खाओ—नहीं तो मैं रूठ जाऊंगी।'

'तुम न रूठना बहन, खुदा भले ही रूठ जाय।'

बानू ने आंसू पोंछ लिये।

'तो हंस दो बस अब।'

बानू हंस दी।

अरुणा ने एक बड़ा सा कौर बानू के मुंह में ठूंस दिया। बानू ने कहा—'अब मेरा क़सूर नहीं भाभी, ईमान अपना तुम्हीं ने बिगाड़ा है—यह कहकर उसने भी हाथ का कौर अरुणा के मुंह में ठूंस दिया।

खाना ख़त्म होने पर जब हुस्नबानू पान खा चुकी तो कहा—

'बहिन, मैं तो किसी अपने ही मतलब से जबर्दस्ती दावत मांग कर आई थी—लेकिन तुमने अपने साथ खाना खिला कर मुझे क्या कुछ न दे दिया—अब इस बदनसीब बानू की एक आरजू पूरी कर दो बहिन, एक बार मेरे लाल को मुझे दिखा दो।'

हुस्नबानू की आँखें फिर गंगा जमुना की धार बहाने लगीं। अरुणा ने कहा—'मैं तो कहने ही वाली थी तुमसे बहन—लेकिन एक क्षण भर ठहरो।' वह तेजी से भीतर चली गई। उसने दासी को पुकार कर कहा—

'दिलीप क्या सो रहा है-राधा।'

'नहीं, जग रहा है।'

'अच्छा तो मैं यहां हूं—तू नीचे जाकर खा पीकर आराम कर।'

दासी के जाने पर उसने संकेत से बानू को बुला कर कहा—'इसी कमरे में है, जाओ न बहिन, मैं यहां पहरे पर हूं, कोई आ न पाएगा।'

हुस्नबानू लड़खड़ाते पैरों से-किन्तु आंधी की भांति कमरे में घुस गई। बालक को उसने उठाकर छाती से लगा लिया। अरे मेरे लाल, अरे मेरे लख्तेजिगर, ओ रे मेरे कलेजे के टुकड़े। अब तो तुझे अपनी मां को देखने पहचानने का भी हक नहीं है। या अल्लाह, यह भी कैसी दुनिया है। मगर खैर, तू सलामत रहे—लाख ज़ंजीरों से बंधी रहकर भी तुझे देखती रहूंगी। अपना न कह सकूंगी—तौ भी तू मेरा है। मेरा है, मेरा है।

उसने बालक के सैंकड़ों चुम्बन ले डाले। उसे ज़ोर से छाती से लगा लिया। बालक ज़ोर से रो पड़ा।

अरुणा ने देखा—हुस्नबानू बेहोश होने लगी है। उसने उसकी गोद से बालक को लेकर, बानू को पलंग पर लिटा कर गोद में बालक को लिटा दिया। और उसके सिरहाने बैठ जांघ पर उस का सिर रख अंगुलियों से बाल सहलाने लगी।

८

नवाब जहांगीर वज़ीर अली माशा अल्लाह एक दिलचस्प फ़िगर थे व दिल फैंक रईस। पुराने टाइप में नए फैशन का एडीशन। उम्र पचपन साल, क्लीनशेव्ड, क़द छः फीट दो इंच, रंग में डूबी, बत्तीसी ख़ास पैरिस में तैयार की हुई, समूची। उम्दा ख़िज़ाब से ज़रा नीली झलक लिए हुए बाल। लम्बी शेरवानी, ढीला पायजामा, पम्प शू और सिर पर फैज़ टोपी।

स्वयं ड्राइव करते थे। रफ्तार पांच मील फी घण्टा। ड्राइवर बगल में बैठना। नवाब पूछते—अब? सरकार सीधे फिर पचास कदम घांए—फिर सीधे, और गाड़ी चलती रहती। मोटर किसी ज़माने की ख़रीद थी एक बड़े छपरखट के बराबर बहुत ऊंची सीट, बारह सवारी और उनका सब सामान मजे में उसमें समा सकता था। उस जमाने में स्टेशन वैगन ईजाद नहीं हुई थी, रईसों की कारें यों ही ग्रान्डील हुआ करती थीं। और इसी मस्त चाल से झूमती चलती थीं।

नवाब की तीन महल पहिली थीं। चौथी यह हुस्नबानू। पहिली थी—एक बुढ़िया। दायमुल मरीजा। नवाब जब तब—सिर्फ ख़ैरसल्ला—पूछने उसके पास जाते—घंटा आध घण्टा बैठ कर चले आते, बस। रहती थीं सब अलग अलग। दूसरी थी ज़रा ठाठदार। नाम था जीनतुन्निसां बेगम। बड़े बाप की बेटी थी, इकलौती। लाखों की सम्पत्ति, कोठी और नक़दी बाप के उत्तराधिकार में मिली थी। बाप ज़िन्दा नहीं थे बूढ़ी मां थी। मां के पास ही—बाप की कोठी में रहती थी। उम्र थी कोई पैंतीस के अनकरीब। रंग खूब गोरा, दुबली पतली, मिज़ाज़ की तेज़, ज़बान की तीखी। आजकल नवाब से झड़प चल रही थी। नवाब ने तलाक दे दी थी—और बेगम ने दो लाख रुपये के महर

की डिग्री लेली थी। बोलचाल बन्द थी—यह नहीं कहा जा सकता। नवाब साहब एन जरूरत के वक्त उनके महल में जाते—खासकर जब कुछ रुपयों की जरूरत होती—तब। थोड़ी झड़प होती। मान मनौवल होता, और नवाब अपना मतलब हल करके तशरीफ ले आते। मगर बेगम रहती थी—खूब चाक चौबंद—चौकस, पहरे चौकी से मुस्तैद।

तीसरी थीं एक यों ही। कोई तवायफ थी। कमसिन और खूबसूरत भी। लेकिन रजील तबियत से भी और खसलत से भी। नवाब वहां रोज रात को जाते-शाम का खाना भी वहीं खाते—शराब पीते—गाते बजाते और कोई दो बजे तक चकल्लस बाजी करके वापस दरे दौलत चले आते थे।

सोते थे मुकर्रिरा अपनी कोठी में अकेले। कमरे में ताला लगा कर, जब कि दो संगीन धारी सिपाही रात भर पहरा लगाते रहते थे। गरज, बेखबरी में अपना कीमती जिस्म कभी किसी बेगम के रहमो करम पर छोड़ते न थे।

नवाब में बहुत गुण थे। कुछ हौबी थीं—कुछ सनक थी—सनक क्या-पूरे सनकी थे। पहिली बात तो यह—कि आपका ख्याल था कि वे हिन्दुस्तान के सर्व श्रेष्ठ गायक हैं। हिन्दुस्तान का कोई गवइया उनका मुकाबिला नहीं कर सकता। वे हारमोनियम भी बजाते थे—और गाते भी थे। यदि आप उनके गाने की तारीफ कर दें—तो फिर कोई चीज नहीं जो आप नवाब से न वसूल सकें। आप गाते थे गला भींच कर—बिलकुल बारीक बांसुरी जैसी आवाज गले से निकाल कर, और हारमोनियम के स्वर में मिला कर, और इसे आप एक कमाल कहते थे—दूसरों से भी कहलाना चाहते थे—जो ऐसा नहीं कहते थे—नवाब उनसे सख्त नफरत करने लगते थे।

दूसरी हाबी थी—उनकी फाउन्टेनपेन इकट्ठे करना। कबाड़ी

की दुकानों पर पुराने फाउन्टेनपेनों की तलाश में आप चक्कर काटते, मौका पाते ही खरीद लाते। और फिर दिन भर उनकी मरम्मत करते रहते। दर्जन दो दर्जन फाउन्टेनपेन उनकी जेबों में भरे रहते। और आप दोस्तों को बड़े शौक से उन मरम्मत शुदा क़लमों को बांट देते थे। उनकी मरम्मत का गुर भी वे दोस्तों को बड़े शौक से सिखाते थे।

तीसरी सनक थी—उनकी सिनेमा स्टार बनने की। वे चाहते थे कि वे सिनेमा स्टार बनें। उनके ख्याल में आला दर्जे के स्टार बनने के सब गुण उनमें थे। वे अर्से से एक फिल्म प्रोड्यूसर बनने की धुन में थे—परन्तु कामियाब नहीं हो रहे थे।

ख़र्चीले एक नम्बर थे—मगर रियासत बुरी तरह कर्जे से लदी थी। तहवील का रुपया इधर उधर उड़ जाता था—जेब हर वक्त खाली रहती थी। यार लोग खूब खाते उड़ाते थे। नवाब को बार बार जीनत महल के सामने हाथ पसारना पड़ता था।

नवाब के दोस्त लोग बहुत थे। वे सब दोस्त मुलाकाती नवाब रईस ही न थे। ऐरे गैरे नत्थू खैरे भी थे। जो जो उनके गाने के मुश्ताक थे—वे सब उनके पक्के दोस्त थे। नवाब बेतक़ल्लुफ दोस्तों के घर जाते—बैठते-सिर्फ घण्टों नहीं—दिन दिन भर। कभी २ नवाब की एक २ मुलाकात बारह से अठारह घण्टों तक की मुलाक़ात हो जाती थी। मुलाक़ात के लिये दोस्तों के घर जाकर आप वहीं जो रूखा सूखा मिलता—खा लेते, झपकियां लेते—या फिर बाजार से खाना मंगा कर उन्हें भी खिलाते, आप भी खाते। सिनेमा ले जाते और एक २ दिन में तीन २ शो देखते। रात को एक बजे आखिरी शो देख दिखा कर दोस्तों को अपनी उसी छपरखटनुमा कार में—उनके घर छोड़ कर कोई दो बजे—अपने घर आकर सो जाते थे। यह प्रायः नवाब की दिनचर्या थी।

नवाब को कोई लड़का बाला न था। बदनाम करने वाले कहते

थे—कि नवाब किसी काबिल ही नहीं है—बेगमों से हंसी दिल्लगी—गाने बजाने—सिनेमा दिखाने—पीने पिलाने तक ही ताल्लुक रखते हैं। मगर नवाब—जब कभी बात सामने आती तो अपनी कूबते-मर्दानगी का खूब बढ़-२ कर जिक्र खेर करते थे। आजमाइश करने के लिए लोगों को चैलेंज करते थे।

ऐसे ही थे हमारे लायक फायक रईस नवाब वजीर अलीखां बहादुर, जो हुस्नबानू के शौहर हुए। रोजा नमाज की मजहबी इल्लत से पाक साफ थे। हाँ दान खैरात फराखदिली से करते थे। दोस्तों को दावत देने मे भी कोताहीन करते थे।

इस उम्र में शादी करने पर भी नवाब ने धूमधाम में कोई कसर न रखी। हफ्तों तक दावतों, मजलिसों और नजरानों—तौहफों का दौर चलता रहा। खूब जल्से हुए—गाने बजाने हुए—थोतले खाली हुई। नवाब ने दो लाख रुपया शादी पर खर्च कर दिया। हुस्नबानू को एक नया महल मिला—और अब 'नूर' नवाब की चहेती छोटी बेगम के वक्त के दो हिस्से हो गये। नवाब एक दिन यहां और दूसरे दिन वहां आने जाने लगे लेकिन यह आना जाना ही भर रहा। नवाब रात को सोते थे अपनी ही कोठी में, अकेले। कमरे में ताला बन्द करके, संगीनों के पहरे में। आप पूछेंगे—यह क्यों? जनाब, यह इसलिये कि वह नवाब हैं—रईस हैं—कुछ आप जैसे मामूली मियां जोरू नहीं। नवाबों के तो सब ठाठ ही निराले होते है।

सुबह ही नवाब ने चाय पानी से फारिग होकर बाग उठाई। घोड़ी की नहीं, मोटर की चाल वही पांच मील फी घण्टा। साथ में ड्राइवर, खिदमतगार और एक सिपाही बन्दूक सहित। सबसे पहिले पहुंचे महकमे इस्तमरारदारी के हाकिम के बंगले पर। हाकिम ने उठकर स्वागत किया—खैराफियत पूछी, नई शादी की मुबारकबादियां दीं और इस वक्त सुबह सुबह आने का कारण पूछा—

नवाब ने कहा—'मैं यह क़सद करके आया हूं कि आपकी ड्योढ़ियों पर ज़हर खाकर जान हलाक करलूं ?'

हाकिम ने हंस कर पूछा—'क्यों-क्यों ख़ैर तो है ?'

'ख़ैर कहां ? क़हर बरसा दिया आपने ?'

'अयं ? मैंने ?'

'जी हां, आपने उस सुसरी हरामज़ादी जीनत की बच्ची को डिग्री दे दी दो लाख रुपयों की, और हुक्म भी दे दिया कि जायदाद कुर्क करके वसूल करले।'

'तो मैं क्या कर सकता था—नवाब साहिब, मैं तो महज़ क़ानून का कीड़ा हूं—बेगम का महर तो आप ही ने बांधा था—डिग्री तो उन्हें मिलनी ही थी।'

'तो वह तो अब मज़े में दो लाख रुपया वसूल करके मज़ा उड़ायेगी—और मैं तबाह हो जाऊंगा—आप तो जानते ही हैं—इस वक्त रियासत की हालत क्या हो रही है।'

'मैंने तो कई बार आपको दोस्ताना सलाह दी—कि खर्चा कम कीजिये और एकाध इलाक़ा निकाल कर क़र्ज़े को पाक साफ़ कर दीजिये। मगर आप हैं कि सुनते ही नहीं।'

'तो इसीलिए आप मुझे लूट लेंगे—मेरे ऊपर डाका डालेंगे ? वाह साहब, वाह, यह आपने मेरे साथ अच्छा सलूक किया ?'

हाकिम साहब हंस पड़े। उन्होंने कहा—'मुझे आपसे हमदर्दी है नवाब, लेकिन मैं कर भी क्या सकता था—डिग्री तो मुझे देनी ही पड़ी।'

'तो मुझे भी ज़हर दे दीजिए।'

'कमाल, यह क्या फर्माते हैं, आप नवाब साहेब, अभी तो आपने नई शादी की है।'

'मगर यह पुरानी इल्लत जो गले में हड्डी की तरह अटक रही है—इसका भी तो कुछ हेसनेस्त होना चाहिए।'

'इसके लिए कानूनन तो कुछ नहीं हो सकता। मगर देखिए—यह मियां बीबी का मामला है। बेगम भी अब बच्ची नहीं हैं। चालीस के छोर पर पहुंच रहीं हैं। अब तलाक पाकर इस उम्र में वे कहां जायेंगी—बेआबरू ही होंगी—और आप से अच्छा शौहर उन्हें और कहां मिलेगा—मेरे ख्याल में आप बेगम से सुलह कर लें। मिज़ाज उनका तीखा ज़रूर है—मगर आप तो फौलाद को भी नर्म करने की हिकमत जानते हैं।'

'जी हां जानता सब कुछ हूं। लेकिन आप भी तो कुछ कीजिए।'

'मैं क्या करूं ?'

'तलवार तो आपने चलाई है—अब मरहम भी आप ही रखिए।'

'कहिए मैं क्या करूं ?'

'बस आपने जो इस वक्त मुबारक बातें कही हैं—वही चलकर बेगम से कह दीजिए। यह हकीकत ही है—कि उस जैसी मथचढ़ी औरत को मेरे जैसा आदमी मिल नहीं सकता। चिराग लेकर ढूंढे तो भी नहीं।'

'तो यह तो मियां बीबी का मामला ठहरा, मैं क्या करूं ?'

'कहना आप ही को होगा। वह भी ज़रा नमक मिर्च लगाकर।'

'लेकिन आप भी तो उन्हें रिझाइए, बहलाइए-मनाइए।'

'खुदा, आप एक बार चलें भी, मैं सब बानक बना लूंगा।'

'हाकिम ने स्वीकृति दी तो नवाब ने कहा-देर की सनद नहीं अभी चलिए। कचहरी की तो आज छुट्टी ही है।

'हां छुट्टी तो है, लेकिन.....'

'अब यह आपकी ज्यादती है हुजूर, उठिए, अभी चलिए।'

'नवाब की बात हाकिम साहेब न टाल सके। कपड़े पहन कर मोटर में आ जमे। मोटर चली उसी तरह पांच मील फी घण्टे की रफ्तार से। ड्राइवर राह दिखाता चला। नवाब ने व्हील हाथ

में लेकर कहा—'खबरदार रहो, देखो सामने कौन है। उन्होंने चश्मे से घूर कर सड़क पर नज़र फैंकी।'

'गधा था हुजूर, खसक गया एक ओर।'

'लेकिन अब।'

'बस ज़रा और बढ़कर बाईं ओर' मोटर आहिस्ता से बाईं सड़क पर मुड़ गई। नवाब ने कहा—अब लेकिन वह नामाकूल साइकिल वाला····'।

'हार्न दीजिये हुजूर, ब्रेक क्यों लगा दिया, हां अब दाहिनी ओर' मोड़ लेकर नवाब ने कहा—'अब ?'

'बस सीधे।'

नवाब ने संतोष की सांस ली। नवाब अन्ततः ज़ीनत महल की ड्योढ़ियों पर जा पहुँचे। गाड़ी सदर फाटक पार कर बाग में घुसी। बहुत पुरानी आलीशान कोठी। लम्बा चौड़ा विस्तार। आखिर ड्योढ़ियों पर कार रुकी। ड्योढ़ी पर दस बारह सिपाही हथियारबन्द मुस्तैद। सबने जल्दी २ पेटी कसी—बन्दूक सम्भालीं। और नवाब को सलामी दी।

लेकिन फाटक में ताला जड़ा हुआ। बाहर से भी—और भीतर से भी। नवाब ने कहा—'इत्तला करो।'

सिपाहियों के जमादार ने आगे बढ़कर सलाम किया और कहा—जो हुक्म। वह पीछे हटा और एक सिपाही को संकेत किया। सिपाही ने छेद में मुंह लगा कर जोर से आवाज लगाई—'हुजूर नवाब साहेब, तशरीफ लाये हैं—इत्तला हो।'

तीन बार आवाज लगाई गई। उधर से आई महरी। हथिनी सी काली—मोटी। भारी भरकम उसी तरह झूमती—झुमके हिलाती। खिड़की में ताली घुमाई—खिड़की खोलकर झांक कर देखा—नवाब को अच्छी तरह पहचान कर बन्दगी की। कमर से चाबियों का गुच्छा निकाल कर भीतर से फाटक का दरवाजा

खोला और सिपाही को हुक्म किया—खोलदो फाटक।

जमादार ने भी ताला खोला और मोटर भीतर जनाने नज़र बाग में दाखिल हुई। सामने हरे भरे सघन वृक्षों के झुरमुट में बेगम का सफेद झकाझक महल। चोर दरवाजे पर मोटर आ लगी। महरी ने साने पर हाथ रखकर ज़मीन तक सिर झुका कर कहा—'उम्मदराज, इत्तला करनी हू—सरकार।'

और वह भीतर घुस गई। पांच दस-पन्द्रह मिनिट बीत गए। तब महरी ने आकर कहा—'तशरीफ ले चलिए हुजूर।'

नवाब ने पायजामे का पांयचा मोटर से बाहर निकाला। फिर कदम जमीन पर रखे, हाकिम साहेब को उतारा, और महरी के पीछे २ चोर दरवाजे में घुसे। कमरों के बाद कमरे दालान के बाद दालान, सहन के बाद सहन पार करते हुए नौकरों, बांदियों, लौंडियों, और गुलामों की सलामें लेते हुये आखिर बेगम के खास कमरे में पहुँचे। सफेद चांदनी का फर्श, चांदी का तख्तपोश और कौच, छत में झाड़ और हज़ारा फानूस, चांदी की एक पलंगड़ी, क़ीमती बिल्लौर की गोल मेज़ कमरे के बीचों बीच।

नवाब पेन दरवाजे के सामने कुर्सी पर जा बैठे। हाकिम कौच पर। खिदमतगारों की फौज आई—एक के बाद एक कतार बांधे। सबके हाथ में किश्तिया, मेवे के पकौड़े, पेस्ट्री, मिठाइयां, भुने कबाब, तले हुये मेवा, ताजा फल और न जाने क्या क्या। साथ में चांदी के सेट में चाय।

यह सब कुछ। मगर बेगम नदारद। नवाब ने हाकिम से कहा—'करम फरमा कर चाय पीजिये।'

'लेकिन बेगम साहिबा से मेरा सलाम तो कह दीजिये।'

'ये बैठी तो हैं, सामने कोने में। बच्चों के लिये दुआ मांगती हैं।'

'शुक्रिया, मिजाज तो अच्छे हैं—हुजूर के।'

अब उधर से—दूसरे कमरे के कोने से साफ़ महीन आवाज़ आई—'अच्छी हूँ—मगर आप कहीं इनकी बातों में तो नहीं बहक गये।'

'मैं तो महज़ सलाम करने और यह अर्ज़ करने हाज़िर आया था कि हुज़ूर—अब इस उम्र में नवाब साहेब को दुनिया के जंगल में अकेला न छोड़ें। यौं चार घरनन होते हैं तो खड़कते ही हैं। बहतर हो—सुलह हो जाय। पुराना रिश्ता ज्यों का त्यों रहे, खानदानी इज्ज़त बच जाय।'

'जी, तो यह नसीहत, आप मुझ ही को देना चाहते हैं। क्यों नहीं, आप मर्द जो हैं। लेकिन मर्दों की गुलामी करने की मैं आदी नहीं। इसके अलावा मैं नवाब साहेब का वज़ीफ़ा भी नहीं खा रही हूँ।'

नवाब सिगरेट में एक गहरा कश खींचते हुए बीच ही में बोले—'खुदा के लिये ऐसी बड़ी बड़ी तौहमतें तो न लगाओ—मैं तो हमेशा ही तुम्हारे तलुए सहलाने का पेशा करता रहा हूँ—बल्के—किसी हद तक तो बदनाम भी हो चुका हूं—हाकिम साहेब ही गवाह हैं।' नवाब ने आंखों से हाकिम साहिब को एक इशारा किया। हाकिम साहिब ने पैंसिल दांत से काटते हुए कहा—'हां इसका तो गवाह मैं भी हूँ —यह बात शहर में आम मशहूर है।'

'समझ गई तो आप लोग सांठगाठ करके तशरीफ़ लाये हैं। खैर, पान क्या अभी पहुँचे नहीं?'

'जी, आ रहे हैं। अभी तो चाय ही खत्म नहीं हो रही। यह तो इस नाचीज़ की आपने शाही दावत ही कर दी।'

'ज्यादा बनाइये गा नहीं, कभी बेगम को भी तो नहीं भेजते। मैं मुई बीमार, आने जाने से लाचार। अम्मी फ़रमा रही हैं—एक दिन बच्चों और बेगम को भेजिये।'

'अम्मी से मेरा आदाब अर्ज़ कह दीजिये। हुक्म की तामील

करूंगा–मगर उस दिन, जब हुजूर और नवाब साहेब से मेल होने की खुशी में दावतनामा पहुँचेगा, साथ में मैं भी आऊंगा।'

'घूम फिर कर आप मतलब ही पर पहुंचते हैं, लेकिन आप लाख सिफ़ारिश करें, महर के रुपये तो मैं छोड़ने की नहीं।'

'अकेले महर ही की रक़म पर क्या मौसूफ़ है– नवाब साहेब की जानोमाल की भी आप मालिक हैं।'

'अल्लाह का नाम लीजिये साहिब, इनके जान–माल की मालिक वह मालज़ादी मुई बेस्वा है–जाने कहां से कूड़ा उठा लाये हैं। बस बैंगन है ताज़ा।'

हाकिम साहेब और नवाब खिलखिला कर हंस पड़े। नाश्ते से हाथ खींच कर हाकिम साहेब ने दो बीड़ा पान मुंह में ठूंसा।' हंसते हंसते कहा—

'बैंगन का यह खूब चुस्त फिकरा रहा।'

'तो और क्या कहूँ–टमाटर, भिण्डी, करेला, कद्दू सभी तो बैंगन से मंहगे हैं। यह मुई बेस्वा, पखाने की ईंट चौबारे पर, और लुत्फ यह कि मेरी ही छाती पर मूंग दले। अब एक और छोकरी लाए हैं। दावत तो आपने भी उड़ाई होगी।'

'अब यह तो घर ही ऐसा है-जहां रोज दावतों ही का सीगा बंधा रहता है-यह आज की दावत ही क्या कुछ कम है।'

'जाइए–शर्मिन्दा करते हैं आप।'

हाकिम साहेब ने और दो बीड़ा पान मुंह में ठूंसा और कहा– 'रंग ढंग से तो ऐसा दीख रहा है कि दावत जल्द ही होगी।' उन्होंने नवाब से आंखें मिलाईं।

'जी मुंह धो रखिए।'

'नवाब ने अब मुंह खोला। बोले—सिर्फ महर के उन दो लाख रुपयों ही का न मामला है?'

'जी, दो लाख रुपयों की डिग्री का।' बेगम ने डिग्री पर

जोर दिया।

'एक ही बात है।' नवाब ने सिगरेट का कश खींचते हुए कहा-'अच्छा यों करो-ये रुपए न तुम्हारे रहे न मेरे।'

'यानी उन्हें कुंए में फेंक दिया जाये।'

'यह क्यों? क्यों न उनसे एक उम्दा फ़िल्म बनाई जाय, दो के दस हो जायें और दिल्लगी रहे वह घाते में।'

हाकिम साहब ने कहा—'तजवीज़ बुरी नहीं।'

नवाब ने जोश में भर कर कहा—'आप तो जानते ही हैं, गाने में हिन्दुस्तान की सब स्टार मेरा लोहा मानती हैं। यक़ीन कीजिए-बम्बे जाता हूँ तो जोख की तरह चिपटती हैं। खाने सोने की फ़ुर्सत नहीं देती-साली, सुअरी। बस, नवाब-वह नई ट्यून ज़रा···। और रहा एक्टिंग-आप दीजिए मुझे नवाब का पार्ट। इसमें मुझे सीखना क्या? मैं ख़ुद नवाब-ख़ानदानी नवाब? और डाइरेक्शन? वल्लाह आप देखें मेरी करामात। बम्बे में अच्छे २ पानी भरते हैं साहब।'

हाकिम साहब ने तो चुप ही रहना मुनासिब समझा। मगर बेगम से चुप न रहा गया बोली—'अब यही कसर रह गई, नाचिए-गाइए गोया आप रईस नहीं-मिरासी हैं।'

'लाहौलवलाक़ू, बाजी, तुम यह कह क्या रही हो-यह आर्ट है-यह आर्ट जिसकी क़द्र दुनियां करती है। विलायत में बड़े २ लार्ड एक्टिंग करते हैं।'

'तो हर्ज़ क्या है, बनाइए फ़िल्म कंपनी।'

हाकिम साहब ने कहा—'फ़िल्म कम्पनी लाख दो लाख में तो बनती नहीं। दस बीस लाख चाहिए। औरों से भी रुपया लीजिए।'

'न, और किसी का क्या काम। रुपया जिस क़दर चाहिए मैं दूंगी। लेकिन इन पर भरोसा नहीं करती--आप हाथ में लीजिये।"

नवाब भिन्ना उठे। हाथ की सिगरेट फेंक दी। गुस्सा होकर बोले—'इन्हीं से गाना भी गवाइए।'

हाकिम साहब ने हंस कर कहा। मगर मैं तो हूँ-सरकारी नौकर। पेंशन मिल जाय तब देखूं। अभी तो दस बरस गुलामी के बाकी हैं।'

'तो बस, आदाब अर्ज है।'

हाकिम उठ खड़े हुए। बोले—'आदाबर्ज करता हूँ। और इल्तजा भी-कि अपना नफा नुकसान सोच कर जैसा मुनासिब हो वही कीजिए, ऐसा न हो कि लोगों को हंसने का मौका मिले।'

बेगम ने जवाब नहीं दिया। खिदमतगार ने इत्र पेश किया। पान इलायची दी। हाकिम साहब ने दर्वाजे की ओर मुंह करके फिर आदाब बजाया और नवाब को लेकर बाहर आये।

दोपहर हो गया था और नवाब साहब हाकिम साहब को उनकी कोठी पर छोड़ने गए तो दस्तरखान में शरीक हो गए। खाना खा चुके तो आराम कुर्सी पर आकर लेटे। हाकिम साहब ने माफी मांग कर कहा—'आप आराम फर्माइए-मैं जरा सा कार सरकार निपटा लूं।' और वह चले गए। खिदमतगार सुगन्धित सिगरेटों का डब्बा और पान की तश्तरियां रख गया।

नवाब साहब कभी ऊंघते, कभी आंखें खोल कर सिगरेट का कश खींचते। खिदमतगार पास जा रहा था नवाब ने कहा—'मियां, जरा इधर आना।' नौकर हाथ बांध कर पास आ खड़ा हुआ। नवाब ने एक दस रुपये का नोट निकाल कर उसकी हथेली पर रखते हुए कहा—'मियां, बाहर हमारी मोटर खड़ी है। ड्राइवर और सिपाही दोनों बेवकूफ हैं—जरा आते जाते नजर रखो लड़के बच्चे शरारती होते हैं। मोटर को छेड़छाड़ न करें।'

'बहुत अच्छा हुजूर।' नौकर ने झुक कर सलाम किया, नोट जेब में खोसा और लम्बा हुआ। नवाब फिर पीनक लेने लगे।

एक दूसरा नौकर फिर उधर आ निकला-पैर की आहट पाकर आपने आंखें खोलीं, पुकारा 'मियां।'

नौकर ने सलाम किया। एक दस रुपये का नोट उसकी ओर बढ़ाकर कहा—'सिगरेट लाना जरा····· ।'

'हुजूर सिगरेट तो हाजिर हैं।' उसने नोट हाथ में लेते हुए एक सिगरेट डब्बे से निकाल कर दियासलाई जलाते हुए कहा।

'तो इसे तुम रख लो। हां जरा देखो—हमारा ड्राइवर सो तो नहीं गया।'

'बहुत अच्छा हुजूर, खिदमतगार चला गया। नवाब सिगरेट फूंकते और राख की ढेरी करते रहे। झपकी लेते रहे। शेरवानी कसे, और नवाबी शान रखते हुए।

नवाब साहब की मुलाकातें ऐसी ही ग्रांडील होती थी—लम्बी और ठण्डी। जो उनकी तबियत को जानते थे, उनके सोने, ऊंघने, चाय नाश्ता, पान सिगरेट का पूरा बन्दोबस्त करके अपने काम लगते थे। क्या जरूरी था कि वे दिन तमाम नवाब साहब के पास बैठे रहें। नवाब को भी इसकी शिकायत न थी।

शाम हुई और नवाब हाकिम साहब से विदा हुए। सिनेमा चलने का इसरार किया। मान लिया जाता तो बारह बज जाते बिना डबल शो देखे नवाब का दिल भरता न था। मगर हाकिम साहब ने चाय पिला पिलू कर उन्हें विदा किया। और अब बारी आई नई दुलहिन हुस्नबानू के महल में जाने की।

चिराग़ जल चुके थे—जब नवाब ने हुस्नबानू की ड्योढ़ी लांघी। पहरे के सिपाहियों ने सलामी दी। नवाब ने मोटर में बैठे ही बैठे कहा—

'इत्तला करो।'

'इत्तला ही है हुजूर, सरकार का हुक्म है कि हुजूर को आने दिया जाय—इत्तला की मुतलक जरूरत नहीं।'

'ताहम, तुम लोग होशियार रहो।'

वहीं से मोटर से उतर कर नवाब पैदल ही रौस पार करते हुए महल तक जा पहुँचे। द्वार पर मिली महरी। पुरानी थी। हुस्नबानू की खिदमत में लगा दी गई थी। नवाब ने कहा—'इत्तला करो।'

'तशरीफ लाइये हुजूर, सरकार का हुक्म है, इत्तला की मनाई है।'

'अजब नादिरशाही हुक्म है, नवाब होंठों में ही बड़बड़ाए और ड्योढ़ियों में कदम रखा।'

६

धूमधड़क्कों में अभी तक नवाब हुस्नबानू से एकान्त मुलाक़ात कर ही न पाए थे। यह उनकी उससे पहिली ही मुलाक़ात थी। दीवान खाने में कदम रखते ही उन्होंने देखा—हुस्न धानी परिधान में बीच कमरे में एक कुर्सी का सहारा लिए खड़ी है। कमरे का भी एक दम काया पलट हो गया है—उसकी तड़क भड़क की सारी सजावट हटा दी गई है और वह निहायत सफ़ाई नफ़ासत और सादगी से सजाया गया है। नवाब की नजर हुस्न से रपट कर पहिले कमरे ही पर गई। हुस्न ने मुस्कुरा कर नवाब का स्वागत किया। बन्दगी की। ताज़ीम की। लेकिन नवाब ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया—उन्होंने कहा—'फुर्सत अब मिली। इतने मुलाकाती हैं, आज ही को लो—हाकिम साहब ने अब छोड़ा। मूंजी ने दिन भर मग्ज़ चाटा—लेकिन हुस्न, तुमने यह क्या किया कमरे की सारी ही सजावट···'

'जी, मुझे यही पसन्द है।'

'और बदन पर एक भी जेवर नहीं, यह तो ज्यादती है।'

'क्या कहूँ—आदी नहीं। लेकिन खाना तैयार है—आप क्या अभी खायेंगे।'

'जल्दी क्या है। हां, गाड़ी में मेरा हारमोनियम है, जरा किसी से कहो-ले आए ?'

हुस्न ने मुस्करा कर कहा—'सुना है—हुजुर इल्म मौसीकी के एक माहिर क़ामिल हैं।'

'तो यों कहो—सब सुन चुकी हो। लेकिन यों ही कुछ गुनगुना लेता हूँ। आज तुम्हें गाना सुनाऊंगा। पसंद जरूर करोगी। मंगाओ हारमोनियम।'

बानू ने दासी को संकेत किया। दासी के जाने पर नवाब ने कहा-'तुम्हारी खूबसूरती की तारीफ, सुनी थी—मुद्दत से इश्तियाक़ था—आज देख लिया।'

'कि जो सुना था झूठ था।'

'नहीं, जितना सुना उससे ज्यादा देखा।

'शुक्रिया, लेकिन कपड़े खोलकर हल्के होकर बैठिये। क्या एक प्याला काफी मंगाऊं ?'

'क्या हर्ज है, और सिगरेट भी।'

'हुस्न कमरे से बाहर गई और फिर आकर पास बैठ गई।'

'यहां तो तुम्हें सब कुछ नया २ लगता होगा।'

'जी नहीं, ऐसा मालूम होता है जैसे हमेशा यहीं रहती रही हूँ।'

'खूब, तो यों कहो तुम्हारे दिलो दिमाग़ यहीं थे।'

'जी' हुस्नबानू जरा मुस्करा कर रह गई।

नौकर ने हारमोनियम लाकर रख दिया। दासी काफी और सिग्रेट ले आई। काफी पीकर नवाब ने हारमोनियम पर हाथ डाला। हुस्न ने बाधा देकर कहा-'छोड़िए भी बातें ही कीजिये।'

'कोई किस्सा सुनाऊं या लतीफा। एक से बढ़ कर एक याद है, सुनाना शुरू करूं तो दिन निकाल दूं।' नवाब ने एक खास अंदाज से हंसते हुए कहा

'हुजूर में इतने गुण हैं, तभी लाली बेगम आपको इतना चाहती हैं।'

'चाहती हैं? एक रात न जाऊं तो बेचैन हो जाती हैं, खाना पीना तर्क कर देती हैं।'

'आज तो वह मछली की तरह तड़प रहीं होंगी।'

'तो मैं क्या करूं, क्या तुम्हारे पास न आऊं?'

'हक तो उनका है।'

'तुम्हारा भी है' 'नवाब ने फिर हारमोनियम पर हाथ डाला। परन्तु हुस्न ने फिर बाधा देकर कहा—'गाना क्या लाली बेगम पसंद नहीं करतीं?'

'खूब करती हैं।'

'और ज़ीनत महल।'

'वह बेतमीज़ है, मगरूर और कूढ़मग्ज़।'

'सुना है, आलिम हैं, शेर कह लेती हैं, अंग्रेजी भी जानती हैं।'

'तो इस तोते की तरह पढ़ने से क्या? दिमाग़ तो है नहीं।'

हुस्नबानू हंस दी। उसने कहा—'समझ गई, उन पर आप रंग चढ़ा ही न सके, आपके सब इल्म वहां फेल हो गये।'

'नहीं, नहीं, गाना सुनती है, तो सकते की हालत में हो जाती है। मगर दिमाग़ में कीड़ा है।'

'तो किसी दिन ज़्यारत कर आऊं—इजाज़त है।'

'जाओ, मगर खुश न होगी।'

'बड़ी हैं, सलाम कर आऊंगी। बड़ी बेगम को भी सलाम करना लाज़िमी है।'

'कौन चीज़ पसंद है तुम्हें ख्याल, टप्पा, या गज़ल।'

'सभी।'

'कुछ शौक भी रखती हो ?'

'सिर्फ सुनने का।'

'तो सुनो' नवाब ने एक बारगी ही गाना शुरू कर दिया। और अब इस खब्ती और सनकी नवाब का चुपचाप गाना सुनने को छोड़ दूसरा चारा न था। हुस्न बैठ कर कानों को चीरने वाला गाना सुनने लगी। वह उनकी नई दुलहिन थी—आज यह उसकी नवाब से पहली मुलाकात थी—जो अजब ठण्डी-बासी और बिखरी सी हो रही थी। हुस्न एक कौच पर मसनद का सहारा लेकर उठंग गई। नवाब तन्मय होकर हारमोनियम के सुर में सुर मिला कर चीखते चिल्लाते रहे। एक के बाद दूसरा गीत ठुमरी ठप्पा। कभी भी इसका अन्त न होता—यदि हुस्न जर्बदस्ती उनका हाथ हारमोनियम से न खींच लेती। नवाब ने कहा—'तमाम रात इसी तरह गाता रहूं और जरा न थकूं।'

'कमाल हासिल है' आपको। मगर अब खाना निकालने का हुक्म दीजिए।'

'मंगालो, लेकिन तुमने सुना—मैं जल्द एक फिल्म प्रोड्यूस करने की सोच रहा हूं।'

'सच ?'

'और मैं उसमें एक्टिंग करूंगा, समझ लो—इस क़दर सही ऐक्टिंग कि.....'

हुस्न अब अपनी हंसी न रोक सकी। उसने कहा—'क्या हर्ज है—यह तो अब बड़ी ही इज्जत का पेशा समझा जाने लगा है।'

'यह आर्ट है, आर्ट। बानू, मगर ये बेवकूफ एक्टर नवाब का पार्ट करते हैं गलत। ये क्या जानें नवाब कैसे रहते हैं—और मैं तो खुद नवाब हूँ—मुझे तो कुछ सीखना ही नहीं है।'

हुस्नबानू ने एक ठण्डी सांस ली। वह सोच रही थी, तमाम

जिन्दगी इसी जाहिल खब्ती आदमी के साथ बितानी है। जब यह आदमी साथ होगा तो अपनी हिमाक़त और बेवकूफी से परेशान करेगा—और जब अकेली होऊंगी तो पुरानी यादें आ आ कर दिल को कौंचेंगी। वाह, खूब जिन्दगी रही। बड़ी देर तक हुस्नबानू यही सोचती रही।

नवाब ने कहा—

'क्या सोच रही हो बानू।'

'यही कि, मैं नाचीज़ क्या आपके लायक हूं।'

'वाह यह भी कोई बात है, मुझे तुम खूब पसंद हो, और मैं रोज तुम्हारे यहां आऊंगा। बखुदा हमारी तुम्हारी मुहब्बत दिन २ बढ़ती जायगी।'

'खुदा ऐसा ही करें।' 'धीरे से हुस्न ने कहा—और दस्तक दी। दासी के आने पर उसने कहा—

'दस्तरखान लगाओ।'

दस्तरखान बिछा, नवाब और बानू ने खाना खाया। फिर बातें हुईं। बातों के अनेक विषय थे। रात गलती गई। मगर नवाब ने कपड़े तक नहीं खोले। बारह बजने पर नवाब ने घड़ी की ओर देखा, और कहा—'अच्छा अब चलता हूँ।'

और वह चल दिये। अपनी पुरानी जेल में, ताला बन्द करके सोने के लिए। इस अनोखी रीति के रहस्य को न समझ कर हुस्न बानू हैरान होकर पत्थर हो गई।

१०

दूसरे ही दिन हुस्न बानू ने जीनत-महल से मुलाक़ात की। जीनत पहिले तो जरा खिंची खिंची सी रही—फिर दोनों में खूब

मेल हो गया—और दोनों दिल खोल कर बातें करने लगीं। ज़ीनत ने कहा—'पसंद आये दूल्हा मियां।'

'उन्हें कौन न पसंद करेगा, उनमें इतने गुण हैं कि वे उन्हें दिखाते जायेंगे और इन्सान को उन्हें पसंद करने को मजबूर होना पड़ेगा।' हुस्न बानू ने मुस्करा कर कहा।

ज़ीनत भी मुस्कुराई। उसने कहा—'तो तुमने एक ही दिन में उनकी सनक समझ ली।'

'समझ ही नहीं ली बहिन, मुझे उनपर तरस भी आया।'

'अरे, यहां तक?' ज़ीनत ने आंख उठाकर हुस्न बानू की ओर देखा, अब पहिली ही बार उसकी आंखों में छिपी वेदना को उसने देखा वह देखती ही रह गई। फिर पूछा—'कितनी देर रहे।'

'बारह बजे तक।'

ज़ीनत चुपचाप मुस्कुराती रही। एक रहस्य उसके होठों में खेल गया। हुस्नबानू ने कुछ आशंकित होकर पूछा—'बहिन क्या इसमें कुछ राज़ है?'

'किसमें?'

'कि वे रात मेरे यहां रहे नहीं। कपड़े तक नहीं खोले, इस तरह बैठे रहे, जैसे गैर मुलाक़ाती।'

'बहिन, नवाब हैं, रईस हैं, कोई ऐरे गैरे मियां नहीं हैं—क्या तुम नहीं जानतीं—रईसों के सब ठाठ निराले होते हैं।'

'लेकिन मेरा दिल कहता है, कुछ भेद जरूर है, और तुम्हारी आंखें भी यही कह रही हैं बहिन।'

'भेद ही कुछ होगा तो क्या तुम से छिपा रहेगा? आज नहीं तो कल वह खुले ही गा।'

'आज ही वह खुल जाय तो क्या हर्ज है।'

'सौदा तो खरीद चुकी हो, अब खोटा होने पर क्या अदल बदल करोगी?

'अदल बदल क्यों करूंगी ?'

'खोटे को भी सहज कर उठा रखोगी ?'

'नहीं तो क्या करूंगी, फैंक दूंगी। खोटा सिक्का बाज़ार में तो चलेगा नहीं, फिर बड़ी बहिन को भी तो देख रही हूँ।'

'बड़ी बहिन कौन ?'

'तुम।'

'मुझ में क्या देखा बहिन ?'

'कि, तुमने भी उसे फेंका नहीं, सहज कर रखा है।'

'कमसिन तो हो बानू, अल्लाह रक्खे, पर ज़हीन हो। लेकिन यह ज़हन, यह हुस्न, यह दिल लेकर आई क्यों ? मैंने सुना है कि ग्रेजुएट हो। इतना पढ़कर भी अपने को न रख सकीं ?'

'ग्रेजुएट होने ही से क्या होता है बहिन, औरत जो हूँ, फिर बड़े अब्बा ?'

'उन्होंने इस चम्पे की कली को ऊंट की दुम से बांध दिया।'

'ऐसा न कहो बहिन, बड़े अब्बा मामूली आदमी नहीं।'

'लेकिन बहिन, तुम्हें यहां देखकर तो छाती फटती है।'

'क्या सौतिया डाह से ?' हुस्न ने हंस कर कहा।

'तुमसे सौतिया डाह करूंगी ? ऐसी सुहागिन नहीं हूँ बहिन।'

'खुदा जाने तुम क्या कहना चाहती हो, अब कह ही दो।'

'सुन सकोगी ?'

'बखूबी।'

'और दिल जो पाश पाश हो जाएगा।'

'नहीं होगा बहिन।'

'ऐसा पत्थर का दिल लेकर आई हो।'

'दिल साथ लाई ही नहीं हूं, हिफ़ाज़त से वहीं छोड़ आई हूँ :'

'अय, तो तुम भी कोई राज़ लिए फिरती हो।'

'मैं भी तो नवाबज़ादी हूं बहिन, कोई मामूली औरत नहीं।'

'तो मुझे बताओ।'

'तुम बड़ी बहिन हो—तुम से कुछ न छिपाऊंगी, छिपाकर क्या करूंगी। अब जीना भी तो तुम्हारे ही सहारे है।'

'जीती रहो बहिन, तुम्हारी बदनसीबी पर तो मुझे बहुत रोना आता है।'

'मेरी बदनसीबी अभी तुमने देखी ही कहां है।'

'ऐसे शौहर की बीबी होना ही क्या तुम जैसी हीरे की कनी के लिए कम बदनसीबी है? लंगूर के हाथ में अंगूर की डाली।'

हुस्न की आंखों से टपाटप आंसू टपकने लगे। उन्हें आंचल से पोंछ कर उसने सिसकते हुए कहा—'यहीं तक होता बहिन, तो मैं तो अपने को खुशकिस्मत ही मानती।'

'ओह, तो मालूम होता है तुम्हारी नसों में लहू नहीं भरा है, दर्द ही दर्द भरा है।'

'दर्द? नहीं, शर्म।'

ज़ीनत ने भेद भरी नजर से हुस्न की ओर देखा। पर मुंह से कुछ नहीं कहा। वह विचार में पड़ गई। हुस्न ने भी यह देखा। पर उसने सम्हल कर कहा—'कहो अब बहिन।'

'सुनो, मेरी शादी को इक्कीस साल हो गए। शादी के वक्त तुमसे कहीं ज्यादा कमसिन थी। लोग कहते हैं—खूबसूरत भी थी, गो तुम सी नहीं। इन इक्कीस सालों के बाद भी मैं आज वैसी ही क्वारी हूं, जैसी शादी की दुलहिन होने की बेला में थी।'

'क्या कहती हो बहिन।' हुस्नबानू की आखें फट गईं। लेकिन ज़ीनत महल कहती गई—'इन इक्कीस सालों में मैं एक बार भी नवाब की ड्योढ़ी में गई नहीं, और नवाब कभी किसी एक दिन तमाम रात मेरे पास रहे नहीं।'

हुस्नबानू भय से पीली पड़ गई। उसने कहा—'तो····तो····' लेकिन ज़ीनत कहती गई—'शुरु शुरु में मैंने इन बातों पर ज्यादा

ग़ौर नहीं किया। मैं एक बद-मिजाज़ लड़की थी, मां की लाड़ली थी। अब्बा की इकलौती थी। वारिस थी। अम्मी को सबसे ज्यादा प्यार करती थी। अब्बा तो बचपन ही में नहीं रहे थे। अम्मी ने ही मुझे पाला था। हम दोनों अम्मी और मैं एक लहमें को भी जुदा न हुए थे। नवाब का यह रवैया मुझे कुछ भी न खला। मैं अम्मी के पास खुश खुश रहती रही। नवाब आते, हंस बोल कर चले जाते। लेकिन धीरे धीरे उनके गुण दीखने लगे, मैं सब कुछ जान गई। बहुत रोई, सब आंसू बह गए, कलेजा पानी होकर वह भी बह गया। अब तो रोना चाहूँ तो भी रो नहीं सकती हूँ। रोने से नफरत भी करती हू। समझ गई, शौहर नाम की एक शै है, ठोस पत्थर की बनी हुई। जब तब उसमें ठोकर लग जाती है चोट खा जाती हूँ, एक जख्म हो जाता है, फिर भर जाता है। खुदा रखे मैं भी एक नवाबजादी हूँ, कोई मामूली औरत नहीं।' इतना कहकर जीनत महल ने रूखी सूखी मुस्कुराहट हुस्नबानू पर डाली।

पर इससे हुस्न का डर कुछ कम न हुआ। उसने सहमते सहमते कांपती आवाज़ में कहा - 'तो क्या नवाब.....'

'नामर्द हैं' ज़ीनत ने धीरे से कहा। और आंखें नीची कर लीं।

'या अल्लाह', हुस्नबानू दोनों हाथ मलने लगी। फिर उसने पूछा—'बस ?'

'नहीं, यह तो सिर्फ एक बात हुई, जिसकी वजह से वह अपनी शादीशुदा बीवियों के साथ रात को नहीं रहते, लेकिन तुमने देखा ही है—वह किसी वक्त किसी के सामने कपड़े भी नहीं खोलते।'

'अरे ? इसमें भी कोई राज है ?'

'उन्हें कोढ़ की बीमारी है, उनका तमाम जिस्म घिनौने सफेद

दागों से भरा है।'

हुस्नबानू का सिर चकराने लगा—उसे ऐसा प्रतीत हुआ-कि वह बेहोश हो जायगी, उसका मुंह सूख गया और आंखें पथरा गईं।'

ज़ीनत ने उसकी यह हालत देखकर कहा—'क्या तबियत ख़राब हो गई, ज़रा लेट जाओ बहिन।'

'नहीं, लेकिन ज़रा सा पानी—बहिन ?'

ज़ीनत खुद दौड़ कर गई। और चांदी के गिलास में बर्फ़ का पानी से आई। हुस्न को गोद में भर कर उसने गिलास उसके सफेद होंठों से लगा दिया।

पानी पीकर हुस्न ने कहा—'शुक्र है खुदा का।'

'खुदा का शुक्र ?'

'हां बहिन, मेरे गुनाहों की मुनासिब सजा यहीं मिल गई। अब शायद दोज़ख की आग से बच जाऊं।'

'तुम और गुनाह' 'कौन इस बात पर यक़ीन करेगा बहिन ? तुम तो सीरत में फ़रिश्ता हो, काश—तुम मेरी बेटी होतीं।'

'तुम्हारी छोटी बहिन हूँ, कनीज़ हूँ—लेकिन यह काफी नहीं तो बेटी ही समझ लो। मैंने मां का प्यार तो ज़िन्दगी में पाया ही नहीं, आज भी वह पाऊं तो निहाल हो जाऊं।'

और उसने अपने को ज़ीनत महल की गोदी में डाल दिया। वह फफक २ कर रोती रही—ज़ीनत ने उसे छाती से लगाकर कहा—'तुम्हें कलेजे से लगा कर कितनी राहत मिलती है। आज पहिली ही बार मिलीं और मुझे ठग लिया बहिन, अब मेरे कलेजे का टुकड़ा हो कर रहना—मुझे तो ऐसा मालूम होता है जैसे कहीं से ज़िन्दगी जिस्म में पनपती चली आ रही है—जैसे सूखा खेत फिर से हरियाली से लहलहा रहा है। खुदा ने तुम्हें मेरे पास भेजा है कि मैं अपने जले भुने दिन अब राहत और खुशी में बिता दूं।'

'लेकिन'-लेकिन-बहिन, इस बदनसीब की भी दास्तान सुन लो। सुनकर न ठुकराओ तो जानू।'

'ओह शायद दिल वहीं कहीं छोड़ आने की बात है। कहां किसके पास छोड़ आई हो ?'

'एक नन्हे मुन्ने के पास' हुस्नबानू अब बिखर कर फूट-फूट रोने लगी। जैसे उसका बांध टूट गया हो। जैसे उसका रोम २ रो उठा हो। सुनकर ज़ीनत चौंक उठी।

'यह क्या कहती हो बहिन ?' ज़ीनत ने उसे उठाकर छाती से लगाकर कहा। और तब धीरे २ एक एक करके अपने दुख-दर्द बदनसीबी की सारी दास्तान उसने सुना दी। सब सुन कर ज़ीनत ने धीरे से पूछा—

'बच्चा अब कहां है ?'

'बस इसे राज़ ही रहने दो, बहिन, यह मत पूछो। कभी बहुत ही ज़रूरी हो गया तो तुम्हीं से कह दूंगी।

ज़ीनत बड़ी देर तक उसे छाती से लगाए रही। फिर उसने आंसू पोंछ कर कहा—

'बड़ी हौंसले वाली हो बानू, आफ़री। तो अब से हम तुम एक हैं। मुसीबतों का मिलकर सामना करेंगी। अभी एक बात गाँठ बांध लेना। बड़े अब्बा ने जो जायदाद तुम्हारे नाम की है—उस पर नवाब का हाथ न लगने पाये इसका ध्यान रखना।'

'ज़ायदाद का अब मैं क्या करूंगी बहिन।'

'बस नादानी न करो, बड़ी बहिन जैसा कहे, वही करना।'

'वही करूंगी बहिन, अब तो तुम्हीं बहिन और तुम्ही मां हो, और कहीं मेरी गत कहां है ?' उसने ज़ीनत महल के दोनों-हाथ आंखों के लगा कर चूम लिये। ज़ीनत ने उसे कस कर छाती से लगा लिया।'

११

काल चक्र घूमता ही गया। और घटनायें जीवनों को धकेलती रहीं। डाक्टर अमृतराय के तीन बच्चे हुए—दो लड़के और एक लड़की। दिलीपकुमार राय जब तेरह बरस का था। भाइयों और बहिन की नज़रों में वह उनका बड़ा भाई था। परन्तु उसकी सूरत-शक्ल, बुद्धि और विचार सत्ता सब कुछ उनसे नया निराला था। उसका रंग अत्यन्त गोरा, आंखें ज़रा भूरी—नाक उभरी हुई—पेशानी चौड़ी, बाल ज़रा लाली लिए हुए। जिस्म पतला दुबला, लम्बा, मिज़ाज तेज़ और गुस्सैल, तबियत ज़िद्दी और हाथ खुला था। अनुशासन उसे पसन्द न था। वह हर बात को मौलिक रीति पर सोचता समझता था। भाइयों और बहिन को वह तुच्छ समझता, उनसे दूर रहता, हर चीज़ में वह अपना एक पृथक् अस्तित्व क़ायम रखना चाहता था। सम्भव है डाक्टर अमृतराय और उनकी पत्नी अरुणा देवी के हृदय में जो एक प्रच्छिन्न भावना यह थी—कि वह उनका अपना पुत्र नहीं है—और वह विजातीय मुसलमान बालक है, और वह बहुत भारी सम्पत्ति का स्वामी है—इससे उनके व्यवहार का कोई अज्ञात प्रभाव उस पर पड़ा हो। परन्तु यह तो निश्चय था कि माता पिता और पुत्र के बीच जो एक गहरी आत्मीयता होती है—वह उनमें न थी परन्तु यह बात खूब पैनी दृष्टि से देखने पर ही दीख पड़ती थी। यों वह पिता का अदब और मां को प्यार करता था।

डाक्टर के दोनों पुत्रों के नाम क्रमशः सुशीलकुमार राय और शिशिर कुमार राय थे। कन्या का नाम था करुणा। शिशिर और करुणा में खूब मेल-जोल था। शिशिर कुमार की तबियत कुछ अनोखी थी। वह एक मस्त प्रकृति का बालक था। खेलने और पढ़ने में तेज़, मगर मिज़ाज का तीखा—हां,

दिलीप जैसा नहीं। दिलीप के रूठने, गुस्सा करने पर उसे मनाकर राजी करने का काम शिशिर को ही करना पड़ता था। लेकिन दिलीप शिशिर पर शासन करता था—प्यार कहीं उसकी आत्मा के कोने में था या नहीं—यह नहीं कहा जा सकता था। उसे प्यार करते, हंसते बोलते, हिल-मिलकर रहते बहुत कम देखा गया था।

डाक्टर दम्पति निस्संदेह सब बच्चों को समान प्यार करते थे। फिर भी कहीं एक छिपी हुई परायेपन की गन्ध थी।' जो जाती न थी। क्या जानें इसी का कोई मनोवैज्ञानिक प्रभाव बालक दिलीप पर पड़ा हो।

डाक्टर की आय अच्छी थी। पर खर्च भी कम न था। रहन-सहन उसका भले आदमियों जैसा था। एक कार भी थी एक घोड़ा गाड़ी ३, ४ नौकर भी। इस कारण वह कुछ ज्यादा बचा न पाते थे। फिर बच्चों की शिक्षा का खर्च। दिलीप कुमार की स्टेट की आमदनी को उन्होंने अभी तक छुआ न था। दिलीप को कभी २ काग़ज़ात पर हस्ताक्षर करने पड़ते थे—और डाक्टर उसकी जायदाद के शुरु ही से वली थे। नवाब ने बालक की शिक्षा और परवरिश के लिए एक अच्छी रक़म की प्रथम ही प्रथक् व्यवस्था कर दी थी—परन्तु डाक्टर ने अभी वह बात भी दिलीप को नहीं बताई थी। वह यह भी सोचते थे कि—ऐसा करने से सब बच्चों से उसे प्रथक् करना पड़ेगा। पर प्रथक् तो वह बालक स्वभाव से ही हो गया था—होता जा रहा था।

अब, जब वह तेरह वर्ष की दहलीज को पार करके शैशव से किशोरावस्था को पहुंचा। तो डाक्टर दम्पति के मन में अनेक संघर्षों ने जन्म लिया। प्रथम तो यह, कि बालक की स्टेट क्या उसे अकेले ही को दी जाय? क्यों न और बालक भी उसके समान भागी बनें। जब डाक्टर दम्पति ने उसे छाती से लगाकर अपने पुत्र की भांति ही लालन पालन किया है तो वही अकेला क्यों उस

सम्पत्ति का अधिकारी बने। निस्संदेह वह सम्पत्ति उसके नाना की थी—मां की थी—उसकी अपनी थी, पर उसके इस अधिकार भावना पर डाक्टर दम्पति जब २ विचार करते—तब उनका मन विरक्ति से भर उठता। कहना चाहिये एक हद तक यह विरक्ति बालक के प्रति एक ईर्ष्या पूर्ण उपेक्षा में बदल गई थी—यद्यपि वह अभी बहुत ही अविकसित और प्रच्छिन्न थी।

परन्तु बालक को इन सब बातों का पता न था। उसे यह शानोगुमान भी न था कि डाक्टर दम्पति उसके सही असल माता पिता नहीं हैं। बालक को लेने के समय ही डाक्टर ने नवाब से यह तय कर लिया था—कि बालक सर्वथा हिन्दु संस्कृति में, हिन्दु की भांति उनके असल पुत्र की तरह पाला जायगा। इस बात को स्वीकार करने के सिवा नवाब की कोई गति थी भी नहीं।

नवाब मुश्ताक अहमद अब मर चुके थे। परन्तु जब तक जिंदा रहे उन्होंने कभी बालक को देखने या डाक्टर से मिलने की चेष्टा नहीं की। एक प्रकार से उन्होंने दिल्ली छोड़ ही दी थी—और वे करांची ही में बस गये थे। बालक का कुशल मंगल पूछने को कभी उन्होंने एक खत भी नहीं लिखा। नहीं कह सकते कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। डाक्टर को सुपुर्द करने के बाद बालक को वह एक प्रकार से भूल ही गये। यह उन्होंने शायद इस लिये किया हो—कि वे नहीं चाहते थे कि डाक्टर के मन में यह अंकुर कायम रहे कि वह पराया बालक है, या मुसलमान बालक है। माता पिता की गहरी एकता बालक के प्रति डाक्टर दम्पति में उत्पन्न हो जाय, इसी भावना से वह एक बारगी ही बालक से विमुख हो गए थे। नवाब के मरने की खबर भी बहुत देर में मिली। डाक्टर ने भी अपनी तरफ से नवाब से कोई सम्पर्क जारी रखने की—चेष्टा नहीं की। उन्हें भेद खुलने का भय था। अपनी बिरादरी का भी भय था। नवाब के मर जाने से वे एक प्रकार से निश्चिन्त हो गये।

हुस्नबानू इस बीच कभी एक बार भी दिल्ली नहीं आई। उसकी कोई खोज खबर भी डाक्टर को न लगी। बालक की भी कोई खबर नहीं ली। बानू का रूप, तेज और प्रभाव डाक्टर को आहत कर गया था ज़रूर, और डाक्टर कभी भी बानू को न भूल सके। बानू की हीरे की कनी के समान उज्ज्वल अमल धवल वह मूर्त सदैव डाक्टर के मानस नेत्रों में प्यार की पीर की एक बांकी झांकी बनी रक्खी रही। जिसे अरुणा ने ही जाना। पर इसके लिए उसने डाक्टर को कभी लानत मलामत नहीं दी। सहानुभूति और उदारता से उसने सहन किया। सम्भव है, बानू के प्रति यह स्नेहाकर्षण होने ही के कारण डाक्टर का मन बालक दिलीप के प्रति ममता से अधिक ओत प्रोत रहता था।

दिन बीतते चले गए, युग करवट बदलता चला गया। जनजीवन भी नियति की नियत चाल पर थिरकता चला गया, डाक्टर दम्पति यौवन की देहरी पार कर वार्धक्य पर बढ़े। और उनके बालक यौवन के राज्य में प्रविष्ट हुए। विश्व की रंगभूमि पर- हिटलर आया, मुसोलिनी आया, स्टालिन आया, रूस में लाल सितारा चमका, अमेरिका के उड़न किले उड़े, हिटलर के चमत्कारों से विश्व चमत्कृत हुआ। महाराज्यों के राज मुकुट उड़ उड़ कर हवा में बिखर गए। समूचा मानव विश्व रक्त स्नान में जुट गया, देश-राष्ट्र-पूंजी सत्ता-अधिकार, सत्ता, अपनी अपनी सीमाएं बदलने लगे। आकाश में वायुयान अनेक कर्तब दिखाने लगे। जापान का आतंक आया और अणु महास्त्र ने जादू के जोर पर उसे विलय कर दिया। सोना और खून दुनिया में अपनी होड़ लगाने लगे। संसार का साहित्य-संसार की वाणी, संसार की विचार सत्ता, संसार का मस्तिष्क सब कुछ 'सोना और खून' की महत्ता को समझने में जुट गए। सोना मनुष्य के शरीर पर लदा था और खून उसकी नसों से बह रहा था। सोने में उसका संसार

था, और खून में उसका जीवन था। मनुष्य खून बहाता था पर सोना देना न चाहता था। इससे मनुष्य का खून एक, करामात बन गया। ज्ञान विज्ञान, शक्ति, सत्ता, सभी मनुष्य के खून को उसकी नसों से बाहर निकाल बहाने में जुट गए।

बहुत लोग मर खप गए। जो रह गए उनके सामने नई दुनिया थी। भूखी-प्यासी भयभीत, कंगाल और अविश्वस्त। चिन्ता और वैकल्य से परिपूर्ण। अभाव और अन्धकार से लथपथ। इसने लोगों के रहन-सहन, सोचने विचारने के ढंग बदल दिए थे।

डाक्टर परिवार पर भी उसका असर था। बच्चे अब कालिज में उच्च शिक्षा पा रहे थे। दिलीप कुमार एम० ए० एल एल० बी० कर संघ में नाम लिखा चुका था। वह कट्टर पंथी हिन्दू था। मुसलमानों का घोर विरोधी, हिन्दू संस्कृति का परम हिमायती। सुशील था कम्युनिस्ट, असहिष्णु और मज़दूरों का नेता, बी० ए० पास करके उसने अर्थ शास्त्र में एम० ए० पास किया था। शिशिर था कांग्रेसी, खद्दरपोश, वह बी० ए० फाइनल में था। करुणा अध्ययन कर रही थी चिकित्सा शास्त्र लेडी हार्डिंग में। वह थी मानव वादिनी, अल्प भाषिणी, भावुक, सरल तरल, जनहित से ओतप्रोत, सब भेदभावों से दूर, केवल मनुष्य के प्यार से ओतप्रोत।

१२

डाक्टर अमृतराय की जैसी मान प्रतिष्ठा थी—वैसा ही उनका खानदान भी था। खत्रियों के ऊंचे खानदान में वे गिने जाते थे। ज्यों २ वे प्रौढ़ होते गए, उनकी मर्यादा बढ़ती ही गई। धन भी उन्होंने काफी कमा लिया था। प्रैक्टिस भी धड़ल्ले से चल रही थी। मोटर, घोड़ा गाड़ी, बाग ज़मीन, मकान सब कुछ था।

मिलन सार आदमी थे–इससे मित्रों की भी उन्हें कभी कमी न रही।

दिलीप कुमार कानून पढ़ चुका था। डाक्टर चाहते थे कि किसी प्रतिष्ठित वकील के साथ प्रैक्टिस करे। परन्तु उसका मन प्रैक्टिस में न था। वह राष्ट्रीय संघ का जनरल सेक्रेटरी था। और चाहता था कि हिन्दू सभा का एक ज़ोरदार नेता बने। नेता बनने के सभी गुण उसमें थे। वह सचोटवक्ता, फुर्तीला, और मुस्तैद युवक, निरालस्य और कठिन श्रमी, हंस मुख और मित्रों का सहायक था। जन संघ में तो उसका अपना एक दल था ही। व्यक्तिगत मित्रों में भी उसका एक समर्थ दल था। अपनी कार्य सिद्धि के लिए-ऊंच नीच भला बुरा वह कुछ भी सोचता समझता नहीं था। अवसर के महत्व को वह जानता था, उससे कभी वह चूकता न था। उसके विचार तीखे, भावना तीव्र और आलोचना व्यंगपूर्ण होती थी। उसके भाषण से उसकी मित्र मण्डली प्रसन्न होती थी। वह वास्तव में जन्म जात नेता था।

परन्तु डाक्टर अमृतराय पर अब एक भारी और असह भार आ पड़ा। बच्चे सब विवाह योग्य हो गये थे। दिलीप कुमार की आयु छब्बीस वर्ष की हो गई थी। और चारों ओर से उसके लिए सम्बन्ध आ रहे थे। अब उसका सम्बन्ध कहां और कैसे किया जाय। एक दिन पति पत्नी में इसी विषय पर चर्चा छिड़ी।

अरुणा देवी ने कहा—'विवाह तो करना ही होगा, चाहे जो भी हो–बिरादरी को तो हम नहीं छोड़ सकते। बच्चे और भी हैं। उसके जन्म का रहस्य किसी पर प्रकट नहीं है। अब वह हमारा ही लड़का है, इसलिए विवाह बिरादरी में ही होगा।'

'पर, मैं जीती मक्खी कैसे निगलूंगा। मैं तो जानता हूँ कि वह हमारा लड़का नहीं है, एक मुसलमान माता पिता का पुत्र है मैं कैसे किसी हिन्दू लड़की को इस धर्म संकट में डाल सकता हूँ। इतना बड़ा छल तो मैं बिरादरी के साथ कर नहीं सकता।'

'तो क्या अब इतने दिन बाद दुनिया को यह बताओगे कि एक मुसलमान के लड़के को तुमने घर में रखा—पाला पोसा—साथ खाया पिया ? फिर बिरादरी में तुम रह सकते हो ? बाक़ी बच्चों की ब्याह शादियां क्या बिरादरी में हो सकती हैं ?'

'क्यो नहीं हो सकतीं, सांच को आंच कहां ।'

'पर यह तुम्हारा सांच अब तक कहां था । नाहक़ एक झमेला खड़ा हो जायगा । क्यों दबी आग कुरेदते हो ।'

'पर इतना बड़ा झूठ कैसे अपने मुंह से कहूँ । फिर अरुणा, यह रक्त का सम्बन्ध है धर्म का बन्धन है, हम हिन्दु हैं । जानती हो, विवाहमें कुल गोत्र उच्चारण होता है,गोत्रावलि और वंशावली का बखान होता है । माता के चार कुल और पिता की चार पीढ़ियां बचाई जाती हैं, यह सब इसीलिये तो–कि ग़ैर रक्त आर्यों के रक्त में न प्रविष्ट होने पाए । अब हम एकदम म्लेच्छ रक्त को कैसे अपने में खपा सकते हैं । कैसे एक आर्य कुमारी को धोखा देकर झूठ बोल कर म्लेच्छ के बालक से विवाह कर सकते हैं । हमारे तो लोक परलोक दोनों ही बिगड़ जायेंगे ।'

'तो यह बात तुम्हें पहिले ही सोचनी थी ।'

'ज़रूर सोचनी थी । पर तब तो इन बातों का ख़्याल ही नहीं आया । और उस समय हुस्नबानू को देखकर तो मैंने जैसे आपा ही खो दिया ।'

'अभी भी शायद कहीं चीस चसक बाकी है, क्यों न ?'

'तुम से तो झूठ न बोलूंगा, अरुणा है तो, जड़मूल से तो कभी मिटी ही नहीं ।'

'तो अभी तो वह भी दुनिया में जीती जागती है । क्यों न उसका बेटा उसे दे दिया जाय उसकी ज़मीन जायदाद तो हमने छुई भी नहीं है ।'

'नहीं छुई है । पर यह भी क्या सम्भव हो सकता है । जानती

हो अपने कलेजे के टुकड़े को हमारी गोद में डाल कर उस स्त्री ने कितनी वेदना पल्ले बांधी है, फिर तब से एक बार भी हमारी ओर उसने देखा नहीं बेटे को याद किया नहीं। अब हम वचन भंग करें—उसकी प्रतिष्ठा का भण्डा फोड़ करें? ना, यह हम से न होगा।'

'तो दिलीप भी अब नासमझ नहीं। उसी से सब खोल कर कह दो।'

'अरे, वह पक्का हिन्दु सभाई, मुसलमानों को तेल में होकर देखता है। संघ का जनरल सेक्रेटरी, हिन्दु धर्म का नेता है। वह सुनेगा तो शायद उसके हृदय की धड़कन ही बन्द हो जायगी—या अजब नहीं—वह क्रोध करके हमारा खून कर डाले।'

'ऐसा भी कहीं हो सकता है। अच्छा तुम नहीं तो मैं कहूंगी।'

'ये सब फालतू बातें हैं अरुणा, हमें यह ज़हर का घूंट पीना ही होगा। हम यह भेद जीते जी खोल नहीं सकते। भेद खोलने में हमारा सर्वनाश होगा। दिलीप का तो जीवन नष्ट हो ही जायगा—साथ ही हम भी लोगों की नज़र में गिर जायेंगे।'

'तो फिर होने दो एक हिन्दु कुमारी का बलिदान। हिन्दु की बेटी तो बलि के लिये ही पैदा होती है। हिन्दु ही दूल्हा होता—लुच्चा और बदमाश—तो वह कितना दुःख देता। घर घर तो मैंने आंसुओं से गीले चेहरे देखे हैं। दिलीप कम से कम ऐसा पशु तो नहीं है। कोई भी स्त्री उसे पाकर संतुष्ट होगी। फिर मुग़लों के ज़माने में मुग़ल बादशाहों ने भी तो हिन्दु कुमारियों से शादी की थी। अब इतना सोच विचार न करो। ब्याह कर डालो। पानी जितना उलीचा जायगा—गन्दा होगा।'

'इधर एक सुविधा जनक बात भी है।' डाक्टर ने जैसे अचानक याद करके कहा।

'क्या ?'

'राय राधाकृष्ण बैरिस्टर हैं। कन्या उनकी २२ साल की है। एम० ए० है। विलायत रिटर्न है, लड़की ने भी विलायत पास किया है। सुन्दरी है। जात पांत बिरादरी को ये नहीं मानते। यों हैं हमारी बिरादरी ही के—पर मुद्दत से बिरादरी से बाहर हैं। माडर्न विचार के हैं। धन दौलत खूब है। वे बड़ा ज़ोर दे रहे हैं—क्यों न रिश्ता लेलूं।'

'लड़की तो मैंने देखी है। पसंद है, यही ठीक होगा। तुम्हारे मन की ग्लानि भी अधिक न होगी। यही करो। पर उससे रिश्ता करके पीछे हमारे बच्चों के रिश्तों में तो विघ्न न होगा।'

'शायद हो, परन्तु जमाना बदल गया है। अब पुराने विचार खत्म हो रहे हैं। मैं सब समझता हूं मैं सब ठीक कर लूंगा। फिर मैं इस मामले में बिरादरी के पंच चौधरियों को भी घसीटूंगा। ये काम उन्हीं की राय से तो होगा।'

'यह अच्छा है। लेकिन दिलीप से भी पूंछ लिया जाय।'

'वह क्या इन्कार करेगा ? अभी इतना एडवांस नहीं हो गया।'

डाक्टर ज़रा मुस्कुरा दिये।

'पूंछ लेना अच्छा है।'

'ख़ैर पूंछ लूंगा, तो मैं राय राधाकृष्ण को ख़त लिख कर मंजूरी दे देता हूँ।'

'जैसा ठीक समझो।'

'फिर किसी दिन तुम जाकर लड़की की गोद भर आना।'

'देखा जायगा। पर दिलीप से ज़रा पूंछ लेते तो।'

'पूंछ लूंगा, चिन्ता न करो।' डाक्टर कपड़े पहन कर बाहर चले गए। अरुणा कुछ देर इन्हीं बातों पर सोचती रही।

१३

परन्तु दिलीप ने इस रिश्ते को बिल्कुल अस्वीकार कर दिया। उसने कहा—'वे लोग बिल्कुल भ्रष्ट हैं। विलायती साहेब लोग हैं। हिन्दु संस्कृति और हिन्दु धर्म के पाबन्द नहीं हैं। सबके साथ उनका खानपान है। उनकी लड़की भी अंग्रेजी फैशन की गुलाम है–मैं ऐसे लोगों के साथ सम्बन्ध नहीं कर सकता। न मैं विलायती बीवी को पसंद करता हूँ, दिलीप कुमार की स्पष्ट बातें सुनकर डाक्टर बड़े असमंजस में पड़े। दिलीप की बात में कुछ अनौचित्य न था। डाक्टर अपनी गृहवधू को स्वयं उसी रूप में देखना चाहते थे जिसमें दिलीप वे एकाएक कुछ न कह सके। परन्तु उन्होंने दिलीप से बिना ही पूछे राय साहेब को स्वीकृति का पत्र लिख दिवा था—इसका उन्हें बहुत मलाल हुआ। उन्होंने कहा—'दिलीप, मुझ से बड़ी गलती हो गई—मैंने तुमसे पूछे बिना ही रायसाहेब को पत्र लिख दिया। अब क्या होगा भला।'

'बहुत बुरा हुआ बाबू जी, उनसे अब भी सब बात साफ़ २ कही जा सकती हैं। वे बड़े आदमी हैं, सज्जन हैं, सब बातें समझते हैं, नाराज़ न होंगे। प्रसन्न ही होंगे।

'लेकिन बेटे एक बार और सोच लो, यह तो तुम्हीं कह चुके हो कि वे सज्जन है, ऐसे सम्बन्ध मिलने सुलभ नहीं।'

'परन्तु बाबू जी, मेरे विचार आपको मालूम हैं, मैं सीता सावित्री का आदर्श पसंद करता हूं, मैं चाहता हूँ कि सीता सावित्री के वंश की ही कोई लड़की आपके चरणों का आशीर्वाद प्राप्त करे।'

विनम्रता और दृढ़ता दिलीप का स्वभाव था। डाक्टर उसकी विनय और दृढ़ता से निरुत्तर हो गए। उन्होंने धीरे से कहा—'एक बार अपनी मां से भी तो सलाह करलो।'

'मां को मैं जानता हूं बाबू जी, वे तो मेरे ही धर्म को मानती हैं। मेम को बहू बनाना वे कभी पसंद नहीं करेंगी।'

'पर बेटे, वेशभूषा ही से क्या, राय साहेब की पुत्री रूप गुण और शील में आद्वितीय है देखोगे तो पसंद करोगे।'

'लेकिन रूप गुण और शील से क्या—आदर्श और विचार भी तो उसके हमारे ही समान होने चाहिएं, आचरण और भावना भी तो हमारे ही अनुकूल होनी चाहिए।

'लेकिन भैया, आज के स्वतन्त्रता और समानता के युग में जो तुम इतनी कट्टरता के विचारों को लिये फिरते हो—सो क्या ठीक है।'

'मैं आपके समान विद्वान् नहीं बाबू जी। पर मैं देखता हूँ कि मैं कट्टर ही कोरा नहीं हूँ, कुछ विचार भी सकता हूँ, और आदर्श और संस्कृति में तो कट्टरता कायम रहनी ही चाहिए। नहीं तो फिर जातीयता कहां रह सकती है।'

'जातीयता न रहने पर भी तो काम चल सकता है दिलीप।'

'कहां, आपने हिटलर को देखा, मुसोलिनी को देखा, किस तरह जातीयता के नाम पर ही वे मर मिटे, अंग्रेज हैं, फ्रैंच हैं, योरोप के अन्य राष्ट्र हैं एक जातीयता के नाम पर एक जातीयता के बल पर ही दुनिया में जीते हैं। हम हिन्दु दरिद्र हैं गुलाम हैं, हमारी आर्थिक और राजनीतिक दासता ने शब्दादियों से हमें पंगु कर रखा है। इसी से गुणवान, विद्वान, धर्मात्मा, धीर वीर रहते हुए भी हम दास भाव से मुक्त नहीं हो पाते। पराजित ही रहते हैं। अब एक जातीयता ही तो है—जिसके बल पर हम सब एक हो सकते हैं। संगठित हो कर अपनी दासता की बेड़ी काट सकते हैं।'

'सो तो है, परन्तु इससे हिन्दू लोगों के बीच तो दीवार खड़ी हो जायगी। हिन्दु तो पहिले ही से छुआछात के कारण दूसरी जातियों से अलग अलग रहते आये हैं—अब तुम्हारे इन विचारों

ने उनके मन में घर कर लिया तो वे अपने पड़ौस के प्रत्येक उस आदमी के शत्रु और गैर हो जायेंगे जो हिन्दु नहीं हैं। यह क्या अच्छा होगा दिलीप।'

'बहुत अच्छा होगा, हम संगठित होंगे, सबल होंगे, स्वस्थ होंगे, सम्पन्न होंगे तो दुनिया के लोग मित्रता का हाथ हमारे सामने फैलाएंगे।'

'भला ऐसा कैसे हो सकता है।'

'क्यों नहीं हो सकता, देखा नहीं आपने, इस युद्ध में अंग्रेजों और अमेरिकनों ने लाल रूस से कैसी दोस्ती गांठी थी। कहिए, इन तीनों का कहीं भी मेल खाता है। बाबूजी, शक्ति ही सब कुछ है। हम शक्ति प्राप्त करना चाहते हैं—और यह काम संगठित होने से होगा। और संगठन संस्कृति के द्वारा ही हो सकता है। इसी से बाबूजी, मैं हिन्दु संस्कृति का इतना पक्ष लेता हूँ।'

'तो कदाचित तुम्हीं ठीक होगे भाई। पर मैं तो समझता हूँ अब तो दुनिया के सब मनुष्यों को परस्पर समान भाव से रहना चाहिए।'

'समान होने ही के लिए हम दासता की बेड़ियों को काटना चाहते हैं। जो गिरे हुए हैं—उन्हें तो समान होने के लिए जरा उठना ही होगा—बाबूजी।'

डाक्टर ने हंसकर दिलीप की पीठ ठोकी। हंसते २ कहा—'तुझ से बहस करना मेरे बूते की बात नहीं है दिलीप। लेकिन जा, इस मामले में अपनी मां से और बात कर ले। तभी जो अन्तिम निर्णय होगा—उसी की सूचना मैं राय साहब को दूंगा।'

'बहुत अच्छा,' कह कर दिलीप चला गया। डाक्टर देर तक इस गुत्थी को सुलझाने में उलझे रहे। जिसकी नसों में शत प्रतिशत मुस्लिम रक्त बह रहा है—वह ऐसा कट्टर हिन्दु धर्म का समर्थक है। यह सोचकर डाक्टर को हंसी आ गई।

१४

उसी रात को दिलीप ने अरुणा से बात की। माता के सोने के कमरे में जाकर वह मां के दोनों पैर गोद में रख कर पलंग पर बैठ गया। अरुणा लेटी हुई थी, एकदम पांव खींचकर उसने कहा—'यह क्या करता है रे पाजी।'

दिलीप ने हंस कर कहा—'खुशामद कर रहा हूँ, जिससे मां मेरे अनुकूल हो जाय।'

'लेकिन बात क्या है।'

'बाबू जी ने कहा है कि जाकर मां से बात करले।'

'पर किस विषय में?'

'ब्याह के विषय में, बाबू जी रायसाहिब की उस मोम की पुतली से मेरा ब्याह करना चाहते हैं, मां।'

'अच्छा तो है, विलायती बीबी मिलेगी।'

'विलायती कहां, विलायतनुमा हिन्दुस्तानी। एकदम एमीटेशन।'

'तूने कोई असल हीरे की कनी ढूंढ ली है क्या?'

'मुझे क्या ज़रूरत है मां, हम तुम दोनों क्या काफ़ी नहीं हैं।'

'सो तुझे तो ज़रूरत नहीं है। पर तेरे और भी भाई हैं—बहिन हैं, उन्हें भी कहीं कुछ ज़रूरत नहीं रहेगी।'

'वाह' दिलीप ज़ोर ज़ोर से हंसने लगा। उसने दोनों हाथ जोड़कर अभिनय सा करते हुए कहा—'बन्देमातरम्।'

अरुणा नाराज़ हो उठी। उसने कहा—'यह सब बातें मुझे पसन्द नहीं हैं दिलीप, इन्होंने जब सब बातें ठीक कर ली हैं तो तू बीच में मत दुलख। तेरे लाभ हानि की सब बातें उन्होंने सोच ली हैं। वह लड़की मैंने देखी है—बहुत सुशील है, मैं उसे खूब अच्छी तरह अपनी बहू बना लूंगी। तू बेफ़िकर रह।'

'तो यही पक्की रही। कह दूं सुशील से जाकर।'

'फिर गधापन करता है, बड़े भाई को छोड़कर कहीं छोटे का ब्याह पहिले होता है ।'

'क्यों नहीं होता । भीष्म ब्रह्मचारी रहे थे । और उन्होंने अपने हाथों से अपने भाइयों का ब्याह किया था ।'

'सो तू भीष्म की तरह ब्रह्मचारी रहना चाहता है ।'

'जरूर रहना चाहता हूँ । जब तक मेरा देश स्वतन्त्र न हो जाय, हिन्दु राष्ट्र का उत्थान न हो जाय तब तक ब्याह करके गुलाम सन्तान पैदा करने से क्या फ़ायदा है मां । फिर कौन जाने हमें किस मुसीबत में फंसना पड़े, जेल जाना पड़े, फांसी लटकना पड़े । ना ब्याह शादी की अभी कोई गुन्जाइश है । पहिले हिन्दी, हिन्दु, हिन्दुस्तान है । पीछे ब्याह शादी । बाबूजी से कह दो मां, वे इस झमेले में दिमाग़ ख़राब न करें–प्रथम तो मैं अभी ब्याह करना ही नहीं चाहता–फिर करूंगा तो मैं सीता और सावित्री के आदर्शों पर चलने वाली हिन्दु कुल-ललना के साथ । जिससे मेरे सब सपने सत्य हो जायें ।'

'सुपने कैसे रे ?'

'कि तुम्हारी बहू बैठकर तुम्हें रामायण का पाठ सुनाये, सूर्योदय से प्रथम उठकर स्नान करे, देव पूजन करे, गुरु चरणों की वन्दना करे, गृहस्थ धर्म का सांगोपांग पालन करे, यह नहीं कि उठते ही टोस्ट चाय । फिर पार्टियों में जाना, उपन्यास पढ़ना, और सिनेमा देखना ।'

'साँगोपांग ग्रहस्थपालन कैसा रे ?'

'जैसा धर्म शास्त्रों में लिखा है—सोलह संस्कार, पंच महायज्ञ, तीर्थ—व्रत उपवास, कथा वार्ता, उपवास, दान-धर्म, यही सब कुछ तो हिन्दु धर्म है, इसी की बदौलत तो हिन्दु धर्म जीवित है । अब तक स्त्रियां यह धर्म पालन करती रहीं । तभी तो वे देवी कहाती हैं, अब वे भी चश्मा चढ़ा और ऊंची ऐड़ी के जूते पहन कर बन जांय

मेम साहेब, और पतिदेव के साथ बैठकर टोस्ट चाय उड़ा कर सास, ससुर, गुरूजनों की सब लाज शर्म वो घहाएं—तो हिन्दु धर्म और हिन्दु जाति कहां रहेगी। रसातल में डूब जायगी मां। मैं अपने घर में ऐसी औरत को घुसने भी न दूंगा।'

'और घुस जाए तो ?'

'तो मार डंडे निकाल बाहर करूंगा।'

'अभी तो तू सुशील के लिये वह मेम ले आने की कह रहा था। उसे लाकर उसके डंडे लगायेगा।'

दिलीप थोड़ा हतप्रभ हुआ। उसने खूब जोर से मां के पैरों को गोद में दबाकर कहा—'नहीं, नहीं—मां, तुम बाबू जी को समझा देना—हमारे घर में भ्रष्टा और स्वेच्छाचारिणी कोई बहू न आने पायेगी। हमारे घर में आयेंगी गृहलक्ष्मियां—जो सदा से हिन्दु धर्म की सांस्कृतिक प्रतिमायें रहती आई हैं। जिनकी पवित्रता की कहानियां हम श्रद्धा और आदर से कहते सुनते हैं।'

'बड़ा पण्डित हो गया है, तू दिलीप, पर देख, यह सब आदर्शवाद अच्छा नहीं है। देश काल का भी तो विचार करना पड़ता है—तू तो इतना पढ़ा लिखा है....फिर भी यह बात नहीं समझता। अब जब नई दुनिया में नये ज्ञान का, नये जीवन का तो प्रकाश आया है—तू कैसे हज़ारों वर्ष पुराने आदर्शों को कायम रख सकता है। बेटे हमें आज के युग में रहना है। आज के युग का आदमी बन कर। सब बातों में पुरानी बातों की लीक पीटने से नहीं चलेगा।'

'मैं क्या पुरानी बातों की लीक पीटता हूँ मां।'

'नहीं तो क्या। तू संस्कृति और सभ्यता की बात तो करता है। तुझे पुराने हिन्दु धर्म में गुण ही गुण दीखते हैं। पर स्त्रियों ही की बात है। हिन्दु धर्म में स्त्रियों को किस प्रकार दासी की भांति रक्खा जाता रहा। किसी ज़माने में तो मुर्दे पति के साथ

जिंदा उन्हें फूंक दिया जाता था। इसे सती धर्म कहा जाता था। जब आठ वर्ष की विधवा का दूसरा ब्याह करना भी अधर्म माना जाता था—तब पुरुष दस दस ब्याह करते थे। अपनी औरतों को भेड़ बकरी की तरह बाजार में बेचते थे जुए के दाव पर लगाते थे। दूसरों को दे डालते थे। क्या तूने युधिष्ठिर-हरिश्चन्द्र और पाण्डु-राज की कथायें नहीं पढ़ी ?'

'पढ़ी हैं मां, परन्तु धर्म बन्धन भी तो होते हैं ?'

'खाक होते हैं धर्म बन्धन। आदमी को विचारशील होना चाहिए। और उसे जीवन में—अपने युग के साथ चलना चाहिए बेटे। तू इतना बड़ा विद्वान् है—सो इतना भी नहीं समझता।'

दिलीप ने और कस कर मां के चरणों को हृदय में लगा लिया। और वह कुछ देर चुप बैठा रहा। फिर उन चरणों में मस्तक रख तेजी से वहां से चल दिया।

१५

विश्व महायुद्ध ने संसार को दो भागों में विभक्त कर दिया था। एक भाग था जनवादी देशों का, जिनका नेतृत्व तरुण पीढ़ी कर रही थी—दूसरा था पूंजीवादी देशों का, जिनका नेतृत्व दकियानूसी पुराने मोटे पेट वाले कर रहे थे। जनवादी देशों का मूल मन्त्र था- श्रम, और पूंजीवादी देशों का-अर्थ। यह श्रम शास्त्र इस युग की सबसे बड़ी विरोधिनी शक्तियां बन रही थीं। और यद्यपि संसार अभी तक गत विश्व युद्ध के घावों से भरपूर कराह रहा था—उसके सिर पर तीसरा महा युद्ध मंडराता आता दीख रहा था। दुनिया के आदर्श बदल गये थे। जीवन के ध्येय बदल गये थे। विश्व सिमट कर जैसे प्रत्येक व्यक्ति की इकाई में

समा गया था।

जनवादी देशों के तरुण मानव प्रतिष्ठा के लिए चरम संघर्ष कर रहे थे। ऐसे तरुण जो जहां थे—सारे संसार के वैसे ही तरुणों से उनके सम्पर्क स्थापित होते जाते थे। राष्ट्रीयता, जातीयता और देश की दीवारों को तोड़ फोड़ कर—किसी भी बाधा की आन न मान कर विश्व के तरुण मानव प्रतिष्ठा के लिए—एकीभूत होते जा रहे थे। उनका संगठन विश्व व्यापी था। और विश्व जैसे एकीभूत हो उनके निकट आ रहा था। नदियों ने, पर्वतों ने, समुद्रों ने, देशों की सीमा रेखाओं ने यद्यपि उन्हें पृथक् कर रखा था—पर वे एक थे। साहस—और निर्भीकता से, जनवाद की विजय में अटल विश्वास रखकर वे तीव्रता से एक होते जा रहे थे।

विश्व युद्ध में सारे संसार के नौजवानों के भाग्य का निर्णय रूस की युद्ध भूमि में हुआ था। सोवियट नौजवान यह समझते थे कि हमने फासिज्म को परास्त करके सारे संसार के मनुष्यों को गुलामी से बचा लिया है। संसार भर के तरुण सोवियट तरुणों के इस कार्य को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। दुनिया के करोड़ों युवकों के हृदयों में उनके नाम आग के अक्षरों की भांति धधक रहे थे। इधर आंग्ल अमेरिकन गुट दुनिया को खून की नदी में फिर एक बार डुबो देना चाहता था। अमेरिका के डालर शाह अब वही नारे बुलन्द कर रहे थे—जो कल तक जर्मन फासिस्ट लगाते थे। और अब ठीक संसार के मनुष्यों के भाग्य निर्णय का काल उपस्थित हुआ था। उनके सामने सिर्फ दो ही मार्ग थे—वे स्वतंत्र हों या आंग्ल अमेरिकन साम्राज्यवाद के गुलाम।

सोवियट संघ जनवाद के कट्टर हिमायती उत्पन्न कर रहा था। राष्ट्रीयता को वे भयानक और घृणास्पद समझते थे। सोवियट संघ तरुणों को अन्तर्राष्ट्रीयता की दीक्षा दे रहा था। वह विश्व के जनवादी युवक संघों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए

उन्मुख था। सोवियट तरुण हर तरह यह उद्योग कर रहे थे कि संसार के जनवादी तरुण एक हैं और उनकी एकता फौलादी एकता है।

समस्त संसार में प्रगतिशील आन्दोलन पर सोवियट तरुणों के जीवन और संघर्ष का भारी प्रभाव पड़ रहा था—उनके उत्कृष्ट गुण, तल्लीनता, उद्देश्यों की पवित्रता, सभी देशों के तरुणों के लिए आदर्श बनती जा रही थी। उनका सहयोग और दृष्टान्त सम्मुख रखकर संसार के प्रगतिशील तरुण जनवाद के प्रति सम्मान तथा साम्राज्यवाद के प्रति तीव्र घृणा करना सीख रहे थे।

भारत में भी प्रत्येक शहर में ऐसे साम्यवादी दल बनते जा रहे थे। सरकार की उनपर कड़ी नज़र थी। साम्यवादी होना अक्षम्य अपराध—राजद्रोह जैसी वस्तु मानी जा रही थी। परन्तु संसार भर में राजद्रोह की परिपाटी ही चल गई थी। और प्रगतिशील तरुण अपनी मनमानी करते ही थे—न फांसी से डरते थे न जेल से। वास्तव में वे अब सरकार के भय की वस्तु बन चुके थे।

सुशील डाक्टर का दूसरा बेटा था, सच्चे अर्थों में और सबसे बड़ा बेटा। कट्टर साम्यवादी था। राजनीति और अर्थशास्त्र में एम० ए० करके वह अब कहीं कोई नौकरी या व्यवसाय करने की अपेक्षा मज़दूरों के संघ में भाषण देने, उन्हें हड़ताल के लिये उत्तेजित करने और पूंजीपति विरोध प्रदर्शन करने में ही अधिक समय व्यतीत करता था। उसके संगी साथियों में अनेक तरुण और तरुणियां थीं परन्तु वह सबका नेता था। वह एक सम्पन्न और प्रतिष्ठित घराने का तरुण था—उच्च शिक्षा प्राप्त था। मेधावी सहिष्णु तथा क्रियाशील था। उसका दुबला पतला शरीर, पतले संपुटित ओष्ठ, छोटे, किन्तु ज्योतिर्मय नेत्र, बढ़ा हुआ मस्तक, बिखरे हुए बाल, लापरवाही से पहने हुए कपड़े सब मिलाकर उसके व्यक्तित्व में आकर्षण उत्पन्न कर देते थे। उसे देखते ही भान होने

लगता था कि यह एक ऐसा तरुण है जिसे अपने ऊपर गहरा विश्वास है।

शिशिर कुमार की प्रवृत्ति सबसे निराली थी। वह अभी केवल इक्कीस वर्ष का तरुण था, पर अत्यन्त गम्भीर, एकान्त प्रिय और अल्पभाषी। वह बहुत कम कुछ होते देखा जाता था—पर ऐसा मालूम होता था जैसे घर भर में सब कोई उससे डरते थे। यहां तक कि माता पिता भी। वह कभी २ सारे दिन दर्वाज़ा बन्द करके अपनी कोठरी में पड़ा रहता। कुछ लिखता पढ़ता रहता। कभी २ कविता भी करता। गाँधी दर्शन उसके अध्ययन की प्रिय वस्तु थी। गांधी जी से वह प्रायः पत्र व्यवहार करता। एक बार तो उसका इरादा गांधी जी के आश्रम में जाकर रहने का भी हो गया था। पर अरुणा देवी के आंखों के आंसू देखकर रुक गया। वह इस समय एम० ए० फ़ाइनल में पढ़ रहा था। शरीर का वह भी दुबला पतला था। चेहरा वैसा सुन्दर न था—पर आकर्षक था। बहिन करुणा से उसकी बहुत पटती थी। दोनों बहुधा बहस करते करते तीव्र हो जाते। पर फिर करुणा के हंसते ही शिशिर के होठों पर भी हास्य फैल जाता। करुणा को उसका बहुत ख्याल रहता। वही यत्न से उसने खाने पीने—का ध्यान रखती। शिशिर अपने में बहुत ही लापरवाह था—कपड़े लत्तों की भी कुछ परवाह न करता। उसका कमरा सदैव ही अस्त व्यस्त रहता—पर करुणा—सदैव ही यत्न से उसे व्यवस्थित करती थी। शिशिर भी करुणा को बहुत प्यार करता था। जब कभी भी वह बाहर से आता—करुणा के लिए—कुछ न कुछ अवश्य ही लाता था।

बहुधा वह उपवास करता। कभी २ मौन भी। कभी वह केवल नमक डाल कर मोटी रोटी खाता—कभी उबली तरकारी स्वास्थ्य और संयम के नाम पर वह-अपने पिता की राय से भी बढ़कर गांधी जी को ही प्रमाण मानता था। डा० अमृतराय उसे गांधी बाबा

कहते–और हंसी उड़ाते थे। पर वह इस बात से नाराज़ नहीं होता था। तब डाक्टर के अनुरोध से उसने एक बात अवश्य की थी कि–उसने कांग्रेस में सक्रिय भाग नहीं लिया था। उसने पिता को वचन दिया था कि विद्यार्थी जीवन में राजनीति में नहीं पड़ेगा। परन्तु राजनीति का वह विद्यार्थी था। और विश्व राजनीति में वह गहरी दिलचस्पी ले रहा था।

वह महायुद्ध की ज्वालाओं से धधकते हुए संसार को देख चुका था। उसका भावुक कोमल हृदय उससे प्रभावित था। और अब किस तरह राष्ट्र टूट फूट रहे थे, देश देशान्तरों की रेखाऐं उलट पुलट हो रहीं थी। भारत में समाज–धर्म–राजनीति और संस्कृति में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे, उन्हें वह देख और समझ रहा था। गांधी जी के विचारों को वह मनन करता था, और वह चुपचाप संयम और तप के जीवन को अपनाता जा रहा था, वह चाहता था कि शिक्षा समाप्त करके वह किसी पत्र का सम्पादन करे। पत्रकारिता की ओर उसकी अभिरुचि बहुत थी। उसका लगभग सारा ही फ़ालतू समय सामयिक पत्रों के पठन पाठन में जाता था। बीच २ में वह कुछ लेख भी लिखता था। उसके लेख और कविताओं की सर्वप्रथम प्रशंसक और समर्थक थी करुणा। करुणा को सुना कर ही वह लेख पत्रों मे भेजा करता था। पर ऐसा बहुत कम होता था–वास्तव में उसके बहुत से लेख तो उसी की फ़ाइल में पड़े रहते थे। कविताओं का भी यही हाल था। एकान्त में वह गुनगुनाता–परन्तु–दूसरों के सामने पढ़ने से झेंपता था। करुणा उसकी कविताओं को बड़े चाव से सस्वर पढ़ती, तो वह बहुत खुश होता था। करुणा के मुंह से अपनी कविता की प्रशंसा सुनकर वह गर्व से फूल उठता। कभी २ वह ना–ना करता ही रहता–और करुणा उसकी कविता की कापी लेकर उसकी नई कविता मां को सुनाने के लिए मां के पास

भाग जाती।

करुणा उन्नीस को पार कर गई थी। वह चिकित्सा विज्ञान पढ़ रही थी। वह बहुत प्रसन्न चित्त, फुर्तीली और चैतन्य लड़की थी। प्यार तो वह यों सभी भाइयों को करती थी, पर शिशिर पर उसकी आसक्ति थी। उसे वह एक निरीह–असहाय सा समझकर–जैसे कहीं से करुणा की चोर उस पर ढालती थी। दिलीप से वह डरती थी–पर बहस डट कर करती थी। दिलीप की कट्टरता की वह बहुधा खिल्ली उड़ाती थी। उसकी आलोचना बहुधा तीखी हो जाती थी। वह कहती डूबने दो इस हिन्दु धर्म की नैया, इसका तो बेड़ा ही गर्क होगा। न जाने इसने कितने पाप किये हैं। और सब एक ओर रहें-केवल स्त्रियों के आंसूओं के समुद्र में ही वह डूब जायगा। वह दिलीप को चिढ़ाती भी थी। व्यंग भी कसती थी–सच्ची बात तो यह थी कि दिलीप की कोई बात भी से पसन्द न थी। उसे वह ढोंगी, पौंगा पन्थी कहती थी। कभी कहती—'भैया, तुम घोड़े पर सवार तो हो पर मुंह तुम्हारा उसकी दुम की ओर है। तुम रूढ़िवादी हो–प्रगतिशील नहीं हो।' इस पर दिलीप कहता—'जा जा, अपने मेंढकों और खरगोशों को चीर। मेरे मुंह न लग। बाल्मीकी और व्यास को तू क्या समझेगी। हिन्दू धर्म की फ़िलासफी।' इस पर करुणा कहती—'रहने दो भैया अपनी फिलासफी। मुझे गुलामों की फिलासफी से नफरत है। फिर, मैं फिलाफसी पर विश्वास नहीं करती–विज्ञान पर करती हूँ। तुम्हारी यह फिलासफी कोरा ढकोसला है, महज़ ख्याली पुलाव।'

दिलीप गुस्से हो जाता, पर करुणा हंस देती। और मैदान छोड़ कर भाग जाती। फिर मां से आग्रह करके कुछ मिठाई लाकर भाई को देती–दिलीप कहता—'लेजा, नहीं चाहिये मुझे। तो करुणा कहती—'जरा सा खालो भैया, बहुत कड़ुआ हो गया है

तुम्हारा मुंह–खट से मीठा हो जायगा।' और साथ ही उसकी मादक मुस्कान, उज्ज्वल दृष्टि देखकर दिलीप हंस पड़ता। बहिन भाई में सुलह हो जाती थी।

सुशील के साथ बहस करने में शिशिर भी बहन के दल में आ मिलता। परन्तु सुशील शीघ्र ही आवेश में आकर नाटकीय ढंग पर मेज़ पर घूंसा मार मार कर और जोर २ से चिल्लाकर अपने अपने कम्युनिस्ट विचारों को प्रकट करता। बुजुर्गों को कोसता। मज़दूरों के अतिरंजित चित्र खींचता। पूंजी पतियों की मिट्टी पलीत करता। उसे उत्तेजित करने में करुणा को मज़ा आता था। उत्तेजित होकर बहस करते २ सुशील तेज़ी से घर से बाहर भाग खड़ा होता था। तब मैदान शिशिर और करुणा के हाथ रहता। दोनों खिलखिला कर हंसते–और फिर या तो शिशिर एक कविता सुनाता था, या करुणा कोई गीत गाती, बहुधा इसी समय किसी पिक्चर देखने का भी प्रोग्राम बन जाता था।

यह तो मानना ही पड़ेगा कि डाक्टर अमृतराय ने बच्चों को बहुत स्वाधीनता दे रखी थी। इसी से उनके मौलिक विचार पनप कर–डाक्टर का घर एक अन्तर्राष्ट्रीय विचार धाराओं का अखाड़ा हो गया था। डाक्टर एक शान्त प्रकृति के व्यवसायी पुरुष थे। उन्हें अपने व्यवसाय से ही फुर्सत नहीं मिलती थी। फिर बच्चों की विचार धारा नैसर्गिक रूप से विकसित हो, इसमें वह बाधा देना पसंद भी नहीं करते थे–इसी से इस तरुण पीढ़ी में ये भिन्न २ रंग खिले। फिर भी एक बात थी। सभी भाई बहिन आपस में प्रेम से रहते थे। विचारों की भिन्नता ने उनके दिलों में अन्तर नहीं डाला था।

अरुणादेवी रात दिन एक तपस्विनी कर्मठ गृहिणी की भांति घर गिरस्ती में लगी रहती। बच्चों से वह प्यार करती। डांट डपट करना उनके स्वभाव में न था। सभी बच्चे तरुण हो गये थे,

समझदार हो गये थे –पर अरुणा का व्यवहार तो उनसे वैसा ही था। और ये सुशिक्षित तरुण बालक भी मां की गोद में बैठ कर छोटे शिशु के समान ही उनकी आज्ञाकारिता और आधीनता में प्रसन्न होते थे। इस प्रकार इस परिवार की गाड़ी आगे बढ़ी चली जा रही थी। यह एक नऐ युग का नया परिवार था, जिसका सारा ढांचा ही पुराने युग से भिन्न–एक नऐ रूप में विकसित हुआ था।

१६

कोई एक योगिराज शहर में आये हुए थे। शहर में उनकी चर्चा खूब धूमधाम से थी। बहुत से पढ़े लिखे मूर्ख उनके चक्कर में फंसे थे। उनके विषय में अनेक बातें प्रसिद्ध हो गई थीं। उनकी उनकी आयु कई सौ वर्ष की है, केवल पवन भक्षण करते हैं, चाहे जो विष खा लेते हैं। उनका कुछ नहीं बिगड़ता। कभी २ महीनों सोते नहीं। एक समय में अनेक स्थानों में देखे जा सकते हैं। सर्वज्ञ हैं। बात करते करते लोप हो जाते हैं। चाहे जब बाल कृष्ण का रूप धारण करके लोगों को दर्शन देते हैं। आदि आदि। परन्तु इन सब गुणों का तो केवल बखान ही होता था–उनमें और एक गुण था जिसके लिये लोग उनके पीछे चिपके रहते थे। वह गुण था कीमियागिरी का। आमतौर पर प्रसिद्ध था कि वे तुरन्त सोना बना लेते हैं और लोगों को सोने की डलिया बांटते हैं। यद्यपि ऐसा कोई गवाह न था जिसे कोई डली दी गई हो।

योगिराज ने जमना तट पर निगम बोध पर आसन जमाया था। पर नगर में आने, सवारियों का शौक करने में, उन्हें कोई उज्र न था। लोगों की मनोकामना की पूर्ति करना उनका व्रत था। इसी व्रत को पालन करने के लिये वह किसी की मनोकामना विफल नहीं

करते थे। यद्यपि योगिराज केवल पवन भक्षण करके ही रह सकते थे–महीनों वर्षों। पर लोग मेवा, रबड़ी, खोआ, मिठाई, फल, दूध, पकवान ले आते थे। उन की मनोकामना ही यह होनी थी कि भगवान भोग लगाएं। इसी से योगिराज–भक्त तेरी ऐसी ही मनोकामना है तो ला–कह कर हंसते २ सब माल चट कर जाते–जो बच रहता उस चेले चांटे साफ़ करते थे–जो हरदम उन्हें घेरे रहते थे।

मन्दी का जमाना था। हज़ारों लाखों लोग बेकार फिरते थे। उन सबके लिए योगिराज एक दिलचस्प आश्रय बन गये थे। जब वे नगर में आते–दस बीस जन उन्हें घेरे ही रहते थे। ये जन कोई भिखमंगे–भुक्कड़, मूर्ख और आवारा ही न होते थे–वकील, बैरिस्टर, प्रोफेसर, और अन्य गण्य पुरुष भी होते थे। अधिकांश को कीमियागिरी की ही चाट होनी थी–वे आशा करते थे कि शायद कोई लटका हाथ आ जाय।

दिलीप भी उनमें एक था। कहना चाहिये भक्तों में उसी का तम्बर प्रथम था। बहुत प्रथम से वह नित्य प्रातःकाल जल्द उठकर निगमबोध पर जाता, कसरत करता, स्नान पूजन करता, सब के दल में मिलकर समाज जुड़ाता, कभी २ मीटिंग होती। पर्व त्यौहार पर स्वयं सेवक दल को लेकर वह जन सेवा करता, वह स्वयं सेवक दल का कप्तान था। बहुधा वह आधे दिन बीत जाने पर घाट से घर आता। परन्तु अब तो वह रात २ भर योगिराज की सेवा में रहने लगा।

इन दिनों अरुणादेवी कुछ अस्वस्थ रहती थीं। काफी कमज़ोर हो गई थी। एक दिन अचानक प्रातःकाल दिलीप योगिराज को घर ले आया। सारे घर में धूम मच गई। योगिराज को बैठक में बैठा कर वह मां के पास आकर बोला–'मां, योगिराज आए हैं वे तुम्हें दृष्टिमात्र से अच्छा कर देंगे। बुलाता हूं। ज़रा ठीक ठीक

होकर बैठो।' उसने कमरे में इधर उधर दृष्टि डाली।

अरुणा को यह सब पाखण्ड पसंद नहीं था। उसने कहा–'उन्हें क्यों ले, आया तू पागल। जा जा कुछ खिला पिला कर विदा कर, यहां लाने का कोई काम नहीं है।'

'काम क्यों नहीं है, मां, वे एक दृष्टि में तुम्हें चंगा कर देगें।'

'चल रहने दे, ऐसे पाखण्ड बहुत देखे हैं मैंने, एक दृष्टि से रोग चंगा कर देगें। और तेरे पिता जो इतने बड़े डाक्टर हैं, सो यों ही।'

'डाक्टरी की बात दूसरी है मां, योग विद्या तो चमत्कार है।'

'तो तूही उस चमत्कार से लाभ उठा।'

'नहीं, मां एक मिनिट के लिये उन्हें ले आने दो, देखो तो, अभी तुम चंगी हो जाओगी।'

'पागल हो गया है तू दिलीप।'

'पागल ही सही। अब तो में उन्हें ले ही आया हूं।'

'तू एक ही जिद्दी है। किसी की सुनेगा थोड़े ही। जो तेरे जी में आऐ सो कर। अरुणा करवट बदल कर पढ़ रही।' दिलीप ने करुणा को पुकार कर कहा–

'करुणा, तनिक यहां आकर बैठो, मां के पास, योगिराज को लाता हूँ।'

योगिराज ने कमरे में पदार्पण किया। आयु कोई तीस साल। काली घुंघराली बलदार लटकती लटें सुगन्धित तेल से तर, रेशमी धोती और सिल्क का कुर्ता, केनेविस का जूता. चांदी की मूंठ की बैंत। आंखों में सुरमा, क्लीन शेव्ड फूलों के गजरों से लदे हुऐ।

दिलीप के संग सुशील भी था। करुणा पहिले ही वहां थी। योगिराज ने एक दृष्टि में अरुणादेवी को आरोग्य किया या नहीं– यह तो नहीं कहा जा सकता। परन्तु अरुणादेवी ने एक दृष्टि ही

में योगिराज को पहचान लिया। वह बड़ी देर तक आंखें फाड़कर योगिराज को कुछ देर देखती रही। परन्तु मुंह से कुछ बोली नहीं।

सुशील ने अब योगिराज को बनाना शुरु किया। वह इन पाखंडियों का प्रबल विरोधी था। पहिले ही वह इनकी महिमा सुन चुका था। अब उनके यह ठाठ देख कर तो वह जैसे जलभुन कर खाक हो गया। उसने नाटकीय ढंग से महात्मा जी को अत्यंत झुक कर प्रणाम किया। उसका यह ढंग देख करुणा मुंह फेरकर हंसने लगी।

सुशील ने बड़ी शालीनता से हाथ जोड़ कर पूंछा—'कहां से आवागमन हो रहा है महाराज ?'

'हम तो मान सरोवर से आ रहे हैं।'

'अहाहा, मान सरोवर, भला हमसे जीवों को कहां नसीब। कितने दिन निवास रहा वहां महाराज का ?'

'कैसे कहें ? कुछ हिसाब तो रखा नहीं। डेढ़सो बरस भी हो सकता है, कुछ कम भी, अधिक भी।'

सुशील ने अब आश्चर्य से आंख फाड़ कर आश्चर्य—और भक्ति की भावना भंगी दिखाते हुये कहा—'धन्य है, महाराज की आयु अब क्या होगी ?'

योगिराज हंस दिये। बोले—'आयु की बात योगिराज नहीं बताते हैं बच्चा।'

सुशील ने कहा—'बच्चा हूँ आपका, मुझे तो बता ही दीजिये।'

'अच्छा, अच्छा, फिर कभी पूंछना। तुम्हें बता देंगे। सबके सामने कहने की बात नहीं है।'

'जैसी आज्ञा—बालों में आप कौन सा हेअर आइल काम में लाते हैं, बड़ी ही प्यारी गन्ध है।'

'हमने इधर तो पचास साठ साल से बालों में तेल दिया ही

नहीं ।'

'परन्तु महाराज, बाल तो तेल से एक दम तरबतर हैं।'

'हाँआं, यह रहस्य भैया, तुम समझ न सकोगे। हम जब प्राणायाम कर प्राणों का ऊर्द्ध आवाहन कर ब्रह्मरन्ध्र में रुद्ध करते हैं, तो उससे बाल स्वयं मस्तिष्क की चर्बी को खींचने लगते हैं—उसी से तुम्हें हमारे बाल चिकने दीखते हैं।'

'चमत्कार है महाराज, और इनमें जैसोमिन, बरबीना, सिटरन के एसेन्सों की लपट उठ २ कर जो घरघस नाक में घुसी आ रही है सो ?'

योगिराज तनिक हतप्रभ हुये। अब तक अरुणा देवी चुपचाप यह तमाशा देख रही थी—करुणा सब देख सुनकर मुस्कुरा रही थी।

अब एकाएक अरुणा ने कहा—'ज्यादा तंग न कर सुशील' फिर योगिराज को सम्बोधन करके कहा—'घर में तो सब कुशल हैं भैया, माता जी हैं न, बहुत दिन से देखा नहीं।'

योगिराज की बोलती बन्द हो गई। वह एक टक अरुणा देवी को देखते हुये बोले—'तो क्या आप·····'

'तुम्हें मैं भूल जाऊंगी भैया ? गोद में मैंने ही न तुम्हें खिलाया था। भूल गए—राय माधोदास···· तुम्हारे कान कौन ऐंठता था—बताओ भला।' अरुणा सरल भाव से हंस दी। योगिराज ने तुरन्त उठकर अरुणा देवी के चरणों को स्पर्श कर प्रणाम किया।

'पहिचान गया दीदी, मां तो आपको नित्य ही याद करती रहती हैं। पर आप जो वहां से आईं तो फिर उधर का रुख ही नहीं किया। आपके कान खींचने को मैं कैसे भूल सकता हूँ। मैं भी तो आप की नाक खींचता था।' योगिराज खुल कर हंस दिये।

'अच्छी तो हैं माता जी।'

'कहां, दमे की बीमारी ने खोखला कर दिया है। उम्र भी तो

खिच गई है।'

'मकान वही है?'

'न वह तो पिता जी रहन रख गए थे। तभी बिक गया था। किराये के मकान में हैं।'

'ललता तो अब बहुत बड़ी हो गई होगी।

'बी० ए० फाइनल किया है।'

'ब्याह हुआ?'

'कहां? उसी की चिंता में तो मां घुल रही है। खर्च का बन्दोबस्त ही नहीं होता—इसी से तो यह पाखण्ड करना पड़ा।'

'भला इतना पाखण्ड क्यों किया? भले घर के लड़के होकर?'

'तो ये भले घर के लड़के बिना पाखण्ड थोड़े ही बस में आते हैं।'

दिलीप हैरान था। वह कुछ समझ ही नहीं पा रहा था। उसे योगिराज पर गुस्सा भी कम न था। सुशील मुस्करा रहा था। अब उसने और भी बनकर कहा—'तो महात्मा जी, आजकल आप पवन ही भक्षण करते हैं। या और भी कुछ?' योगिराज ने बिना झेंपे और भी बन कर कहा— 'नहीं बच्चा, हम तो भक्त की मनोकामना पूर्ण करने को सब कुछ पा लेते हैं। सब के मन की जानते हैं। घट घट व्यापक हैं हम बच्चा।'

'सत्य बचन महाराज, तो बताइए—इस समय हमारी क्या मनो कामना है?'

'यही कि—तुम हमें टोस्ट, मक्खन—चाय, दाल मोठ, नमकीन मिठाई का भोग लगाना चाहते हो—सो बच्चा, शास्त्र में लिखा है, शुभस्य शीघ्रम्, अब विलम्ब क्यों?' करुणा खिलखिला कर हंस पड़ी। सुशील ने कहा—'ले आ करुणा, महात्मा जी आज मनो-कामना पूर्ण करने पर तुले बैठे हैं। देर करेगी तो मार बैठेंगे।'

करुणा ने हंसते २ कहा—'लेकिन एक बात बतलाइये।' किन्तु

अरुणा देवी ने बाधा देकर कहा - 'पहिले चाय लेआ तब बात पूंछना।'

'नहीं, पहिले पूछूंगी।'

'पूंछ बहिन, योगिराज ने स्नेह मिश्रित स्वर में कहा।'

'मैंने सुना था कि आप बालकृष्ण का रूप धारण करते हैं। बहुतों ने आपके बालकृष्ण रूप में दर्शन किये हैं—सो क्या बात है भला, बताइये, आप पर प्रकाश भी नहीं पड़ता।'

बहुत साधारण बात है। मैं एक गैस का हंडा मंगा कर बीच में रख लेता हूँ। भक्तगण चमत्कार देखने उसके चारों ओर बैठ जाते हैं। सब की नजर मेरे ऊपर रहती है। बालकृष्ण का भेष मैं धारण पहिले ही कर लेता हूँ। लोगों से रोशनी तेज़ करने को कहता हूँ। एक दो आदमी हन्डे में हवा पम्प करते हैं। रोशनी तेज़ होती है। सब की आँखें स्वाभाविकनया ही हन्डे पर जम जाती हैं। मैं बराबर तेज़-तेज़ और तेज़ कहता रहता हूं। वह हवा पम्प करता रहता है। एकाएक मैं कहता हूं देखो। तेज़ प्रकाश के बाद आंखें मुझ पर उठ जाती हैं। प्रकाश के बाद एकदम देखने से वे मुझे कुछ छोटा तथा अंधेरे में देखते हैं। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। बस यही वह चमत्कार है।'

'बड़ी चालाकी करते हैं आप' करुणा ने कहा।

'लेकिन यह इतनी सी बात ये पढ़े लिखे गधे नहीं समझ सकते।'

माता का संकेत पाकर करुणा चाय लेने चली गई। अरुणा ने हंस कर दिलीप से कहा—

'दिलीप, तेरे योगिराज ने एक ही दृष्टि में मुझे अच्छा कर दिया भैया।'

दिलीप बहुत झेंप रहा था। योगीराज पर उसे गुस्सा आ रहा था। पर—योगिराज ने उसे खींचकर छाती से लगा लिया। इसके

बाद उस परिवार में मिलकर खूब चाय टोस्ट उड़ाकर योगिराज अपने आश्रम को गये।

१७

राय राधाकृष्ण कानपुर में प्रेक्टिस करते थे। मस्त जीव थे। दबंग भी पूरे थे। अदालत में उनकी धाक थी। उन्हें पहिले तो डाक्टर अमृतराय का विवाह की स्वीकृति का पत्र मिला, पीछे इन्कारी का। उसमें केवल इतना ही लिखा था—'मैं मजबूर हो गया—और शर्मिन्दा भी हूं—परन्तु आप क्षमा कर देंगे ऐसी आशा है।' पत्र पढ़कर रायसाहब ज़रा चिन्ता में पड़ गये—परन्तु उन्होंने तुरन्त ही अपना मत स्थिर कर लिया—उसी शाम को उन्होंने अपनी पुत्री माया को बुला कर कहा—कल शनिवार है—कोर्ट आधे ही दिन का है। मुझे कुछ ऐसा काम भी नहीं है—बस एक घन्टे में आ जाऊंगा। हम लोग दो बजे की गाड़ी से ज़रा दिल्ली चलेंगे। सब ठीक ठाक कर रखना।'

'हम लोग कौन ?' माया ने हंस कर कहा।

'मैं और तू' रायसाहेब ने भी हंस कर जवाब दिया।

'ममी नहीं ?'

'न, जानती है तीन टिकिट खरीदने पड़ेंगे उसके लिए।'

'तीन क्यों ?'

'देखती नहीं, तीन आदमियों के बराबर वज़न है उसका। आज कल चैकिंग कितना सख्त है।'

'और मेरा शायद आधा टिकट लगेगा।'

'तभी तो तुझे ले जा रहा हूँ, तेरा कहीं कोई एंगेजमेंट तो नहीं है, इस इतवार को।'

'है क्यों नहीं, इसी इतवार को हम लोग लखनऊ जा रहे थे।'

'हम लोग, कौन ?'

'मेरी सहेलियां है कालेज की।'

'कुछ खास मतलब था ?'

'यों ही, अमीनाबाद में एक चाटवाला बैठता है बाबू जी, बहुत बढ़िया मटर की चाट बनाता है। मटर में नीबू निचोड़ता जाता है—और ऐसा मुंह बनाता है जैसे अपने मुंह में ही नीबू निचोड़ रहा हो। बस जरा उसकी मटर की चाट खाना था।'

'बस ?'

'एक पिक्चर भी बढ़िया लग रही है।'

'जाने दे उसे, अगले इतवार देखना। अभी दिल्ली चल, तुझे बहुत बढ़िया कचालू की चाट खिलाऊंगा।'

'दिल्ली कोई काम है क्या बाबूजी।'

'काम कुछ ऐसा नहीं है, जरा डाक्टर साहेब से मिलना चाहता था, खत आया है उनका।'

'उन्होंने पतलून की दोनों जेबें टटोली और खत माया के सामने फैंक दिया।'

खत पर सरसरी नजर डाल कर कहा—'डाक्टर साहेब की अब खुशामद करनी होगी हमें बाबू जी।' उसके तेवर पर बल पड़ गये।

राय साहेब हंस दिये। उन्होंने कहा—'बेटी का बाप हूँ बेटी, बिना खुशामद किए तो इस घर से तुझे धकेलना मुश्किल है।'

'तो आप जाइए, मुझसे यह न होगा।'

'तुझे कुछ नहीं करना पड़ेगा। बस तमाशा देखना होगा।'

'मुझे तमाशा भी नहीं देखना।'

राय साहेब हंस दिये। उन्होंने कहा—'असल बात यह है—बेटी,

मैं जरा साहेब ज़ादे का मिज़ाज तोलना चाहता हूं। हां कह कर उन्होंने ना कह दी। डाक्टर बहुत भले हैं-देखूं तो मामला क्या है। फिर एक बार जरा दिलीप से तू भी तो बात कर, उसका रंग ढंग तो देख। बड़ा भारी आर्थोडाक्स है। मगर उसकी बहस बड़ी प्यारी होती है।'

'ममी को ले जाइए बाबू जी।'

'ममी को लेजाकर क्या करूंगा बोल? राह में कहीं दिल का दौरा हो गया तो? फिर मेरी खटपट तेरे बिना कौन करेगा—बना। तेरे बाबू जी का काम तो तेरे बिना एक मिनिट नहीं चल सकता।'

'तो फिर मुझे धकेल कर निकाल बाहर करने के लिए आप काहे को दुनिया की खुशामद करते हैं?'

'राशन का ज़माना है बेटी, पुराने जमाने में जब सब चीज़ें सस्ती थी तब भी बेटी किसी बाप के घर नहीं खपी—और अब तो रुपए का पौने दो सेर गेहूँ मिलता है। देखती है न?'

'देखती हूँ, पहिले की बेटियां खाती भी तो थी मन भर, मैं तो जरा सा खाती हूँ?'

'वह भी मेरे बूते का नहीं बेटी, तुझे तो धकेल कर निकाल बाहर करना ही होगा।' राय साहब हंसते २ रो पड़े। बेटी को खींच कर उन्होंने छाती से लगा लिया। विरोध सारा खत्म हो गया। माया ने कहा—

'मैं सब ठीक कर लूंगी बाबू जी। लेकिन लौटेंगे कब?'

'बस इतवार की रात को।'

'तो चाय ले आऊं।'

'लेआ? लेकिन ज़रा एक तार लिखकर केशव को स्टेशन भेज दे। तार में इतना ही लिखना 'हम लोग आ रहे हैं,' एक नया टाइम टेबिल भी ले आयगा।'

'अच्छा।'

माया की ममी का नाम था कुमुदेश्वरी देवी। सीधे मिज़ाज की सरल मना स्त्री थी। मोटी बहुत थी और राय साहेब सदैव ही उनका मज़ाक उड़ाया करते थे। इस विलायती परिवार में वही एक आदर्श हिन्दु रमणी थी। पति—पुत्री के साथ विलायत जाकर भी उन्होंने अपनी निष्ठा को छोड़ा नहीं था। तीर्थ, व्रत, उपवास, दान, कथा—सभी चलता था। पुजारी—रोज आकर उन्हें जब तक ठाकुर का चरणामृत नहीं दे जाता था—वे अन्न ग्रहण नहीं करतीं थी। पुत्री उनकी इकलौती ही थी। माया के बाद पुत्र हुआ। किंतु वह ६ वर्ष का होकर दगा दे गया। तब से मुन्नी माया पर उनका दूना मोह हो गया था। माया के ब्याह की उन्हें बड़ी चिन्ता थी। पुराने विचार की होने पर भी उन्होंने कभी भी बेटी के स्वतन्त्र जीवन—नये विचारों का विरोध नहीं किया। जब उन्होंने सुना कि पिता पुत्री दिल्ली जा रहे हैं—तो उन्हें प्रसन्नता भी हुई—संतोष भी हुआ। उन्होंने हंसती आंखों से बेटी को देखकर कहा—'बेटी, नादान नहीं हो तुम, समझदारी से बात करना। ब्याह से पहिले सुसराल जाना हमारे खानदान में नई बात है—पर खैर नये ज़माने में सभी नई बात हो रहीं हैं। दिलीप अच्छा लड़का है। पूरा धर्मात्मा मैं देख चुकी हूं उसे। यह घड़ी मेरी ओर से देना उसे। और मेरा बहुत २ आशीर्वाद कहना।'

उन्होंने बेटी को बहुत २ आशीर्वाद दिया। लाड़ किया, जैसे वह छोटी सी बच्ची सुसराल जा रही हो।

डाक्टर तार पाकर घबरा गये। अब क्या करें? कैसे रायसाहेब के सामने जांय। परन्तु राय साहेब के सामने आते ही उनका सब संकोच दूर हो गया। राय साहेब ने उनका हंसकर आलिंगन किया। माया ने झुक कर चरण रज ली। फिर राय साहेब ने हंसते २ कहा—'देखता हू—साहेब ज़ादे पर कुछ गहरा रंग चढ़ा है।'

'क्या कहूँ, आपके सामने शर्मिन्दा होना पड़ा । एक ही ज़िद्दी लड़का है ।'

'यही तो देखने आया हूं । पर इसमें शर्मिन्दा होने की क्या बात है । मैंने सोचा—माया भी चले तो अच्छा है ।'

'घिटिया को ले आए—बहुत अच्छा किया ।' उन्होंने परिजात पुष्प की भांति शोभायमान माया पर एक नज़र डाली । उनके मन में एक चीत्कार उठा—क्या ऐसे रूप गुण की खान—सुशीला पत्नी को दिलीप इन्कार कर देगा ? फिर तुरन्त ही दिलीप के जन्म का रहस्य उनके हृत्पटल पर अंकित हो गया । भय से उनका हृदय कांप गया । वे सोचने लगे—'यह तो इतनी बड़ी प्रवंचना है कि··· परन्तु संभवतः यह ब्याह तो होगा ही नहीं ।'

सब लोग घर आए । अरुणा देवी ने माया को उठा कर गोद में बिठा लिया । करुणा तो खुशी से नाचने लगी । घर भर में उत्सव सा मच गया । करुणा दौड़ी २ गई दिलीप के कमरे में । वह कहीं बाहर से आकर कपड़े उतार रहा था । उसने कहा—'भैया भाभी आई हैं, पता है तुम्हें ?'

'कौन भाभी ?'

'अरे वही कानपुर वाली, और कौन—बड़ी भाभी ।'

'जा भाग, बकवाद न कर ।' करुणा ने हंसते २ कहा —'अच्छा चलो, देखना चाहो तो मैं अभी दिखला सकती हूं—मां के पास बैठी हैं । दिलीप ने करुणा को बाहर धकेल कर—कमरा भीतर से बन्द कर लिया । पर करुणा का उत्साह मन्द न पड़ा । वह सुशील के पास जाकर बोली—'सुशील भैया, भाभी आई हैं देखोगे ।'

सुशील मुस्कुरा कर रह गया । उसने कहा—'बड़े भैया को दिखा—मैं देखकर क्या करूंगा ?'

'बड़े भैया ने तो सुनकर मुझे धक्का देकर कमरे से निकाल दिया—और कमरा भीतर से बन्द कर लिया ।'

सुशील हंसने लगा। उसने कहा—'महात्मा जी जो ठहरे, पर फिक्र न करें, कमरा फिर खुला जायगा। तब तक तू जाकर भाभी की खूब खातिर तवाज़ा कर। वे लोग इंग्लैण्ड रिटर्न हैं—तुझे कहीं गंवार का खिताब न दे बैठें।'

'तो हर्ज क्या है, भाभी जब मेरे पास रहेंगी—तब मैं गंवार थोड़े ही रहूंगी। कल्चर्ड बन जाऊंगी।'

वह हंसती हुई भाग गई।

१८

डाक्टर ने सब बातें साफ़ साफ़ स्पष्ट शब्दों में रायसाहेब को कह दीं। उन्हों ने यह भी कहा—'माया जैसी बहू को पाकर हम दोनों—मैं और मेरी पत्नी—धन्य होंगे। परन्तु जब तक दिलीप विरोध करता है—मैं लाचार हूं। ज़बर्दस्ती तो करना ठीक नहीं है।'

रायसाहेब ने स्वयं दिलीप से बात कीं। पिता की आज्ञा से आकर दिलीप ने रायसाहेब को प्रणाम किया। रायसाहेब ने उठकर उसे छाती से लगाकर कहा—

'आओ, बेटे, मैं तुम से साफ़ २ बातें करना चाहता हू। दिल खोल कर बात करो। मेरा अभिप्राय तो तुम्हें मालूम ही है—अब कहो तुम्हें आपत्ति क्या है?'

'बाबू जी, यह सिद्धान्त का प्रश्न है।'

'कैसे सिद्धान्त का।'

'मैं हिन्दु सभ्यता का कट्टर पक्षपाती हूँ। इसलिये मैं ऐसा कोई काम करना नहीं चाहता जो मुझे हिन्दु आदर्शों से विचलित करे।'

'यह तो अच्छा ही है, हम लोग हिन्दु ही तो हैं, माया की

मां का तो कहना ही क्या ? बड़ी आर्थोडाक्स हैं । अपने धर्म-वंश और रक्त का तो हमें अभिमान होना ही चाहिये ।'

'बस यही बात है बाबू जी, मैं साधु महात्मा का जीवन व्यतीत नहीं करना चाहता, परन्तु मैं ऐसी पत्नी भी नहीं पसन्द करता—जिसकी शिक्षा दीक्षा हिन्दु आदर्शों के विपरीत पश्चिमी सभ्यता में हुई हो ।'

'पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव सर्वदा ख़राब ही रहता है । ऐसा तुम्हारा मत है ।'

'ख़राब अच्छा, मैं कुछ नहीं कहता । पर दोनों में पूरब पश्चिम का अन्तर है ।'

'तो इससे क्या । तुम सुबह पूर्व में मुंह करके संध्या करते हो—शाम को पश्चिम में ।'

'पूर्व और पश्चिम के विचार—संस्कृति—आचरण सभी में अन्तर है । मैं पाश्चात्य संस्कृति से घृणा करता हूँ । मैं उन सब लोगों से घृणा करता हूँ । जो अपने धर्म संस्कृति और सामाजिक जीवन को छोड़ कर पाश्चात्य लोगों की नक़ल करते हैं ।'

'इस प्रकार घृणा करना तो अच्छी चीज़ नहीं है दिलीप, ख़ासकर तुम जैसे सुशिक्षित युवक को ऐसा नहीं करना चाहिये । तुम जानते ही हो—मानव जीवन के गुण दोष, जो सामाजिक परिस्थितियों से उत्पन्न होते हैं, सभी जगह हैं । हिन्दु संस्कृति भी उससे मुक्त नहीं है ।'

'मैं तो बाबू जी, आप से बहस करना ही नहीं चाहता हूँ ।'

'तुम यदि अपनी हिन्दु संस्कृति को केवल—प्यार करते-तब तक तो बहस की बात नहीं थी, पर जब तुम दूसरों से घृणा करते हो—तब तो बहस करनी होगी । ख़ासकर उस हालत में—जबकि जिन्हें तुम घृणा करते हो वह तुम्हें प्यार करें ।'

'बहस से कुछ लाभ न होगा ।'

'क्यों नहीं होगा। क्या तुम विवेकी युवक नहीं हो। प्रगतिशील नहीं हो। औचित्य को समझते ही नहीं।'

'मैंने तो सभी बातों पर विचार कर लिया है।'

'तो भैया, जो लोग पाश्चात्य संस्कृति में रहते हैं—वे भी अपनी संस्कृति का आदर करते हैं। मनुष्य का ऊपरी रूप ही तो सब कुछ नहीं है।'

दिलीप ने अविश्वास की हंसी हंसकर कहा—'हो सकता है। मैंने तो पहिले ही कह दिया था कि मैं बहस नहीं कर सकता।'

'तुम चाहते क्या हो आखिर, विवाह तो तुम करो ही।'

'जरूर करूंगा, पर मेरा आदर्श सीता और सावित्री है, पाश्चात्य जीवन में डूबी हुई किसी लड़की से मेरी पटरी नहीं बैठ सकती। मेरा भी जीवन दुखी होगा—उसका भी जीवन नष्ट होगा। इस सम्बन्ध में ज़ोर ज़ुल्म व्यर्थ है।'

'ज़ोर ज़ुल्म का बात मैं नहीं कहता। पर तुम यदि यह कहते हो कि शील-गुण-प्रेम और त्याग की भावना उन लड़कियों में होती ही नहीं-जो पाश्चात्य जीवन में रहती हैं, तो यह तुम्हारी भूल है, पहाड़ जैसी भूल। क्या पाश्चात्य जीवन मानवीय तत्वों से एक दम रहित है।'

'मैं तो ऐसा ही समझता हूँ बाबू जी।'

'और यह भी समझते हो, कि तुम्हारे हिन्दु धर्म में सारी ही स्त्रियां सीता सावित्री हैं। जबकि पाश्चात्य समाज में सभी सूर्पनखा हैं?'

दिलीप ने जवाब नहीं दिया। उसने देखा—रायसाहेब क्रुद्ध हो रहे हैं। वह राय साहेब के सामने अविनय नहीं कर सकता था। वह देर तक मुंह नीचा किये चुप बैठा रहा। राय साहेब ने कहा—'जवाब दो।'

'बाबू जी, मुझे आप क्षमा कीजिए। मैं अविनय नहीं कर

सकता। पर मैं अपने विचारों से लाचार हूँ।'

'तो यह तुम्हारा अंतिम निर्णय है—या कुछ सोच विचार भी करना चाहते हो।'

'जी, सोचने जैसी तो कोई बात नहीं है।'

'व्यक्तिगत बातें भी कुछ महत्व रखती हैं। मेरी माया—पाश्चात्य वातावरण में पली ज़रूर है। पर उसका जैसा शील—सदाचार है—उसपर मुझे गर्व है।'

'हो सकता है, पर और भी तो कुछ बात हैं बाबू जी।'

'और क्या बात हैं?'

'सामाजिक मर्यादा की। जात बिरादरी की। मैं उन सब से बाहर नहीं हो सकता।'

'ओफ़, यहां तक?' राय साहेब का चेहरा क्रोध से लाल हो गया। कुछ ठहर कर उन्होंने उठते हुए कहा—'अच्छा, खुश रहो।' और वे कमरे से बाहर चले गए।

१६

दिलीप को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे किसी ने बड़े ज़ोर से उसकी पीठ पर चाबुक दे मारा। वह हक्काबक्का सा खड़ा रह गया। जो बात उसके मुंह से निकल गई—उसको पीछे लौटाने का कोई उपाय न था। उसने स्पष्ट ही देखा—बहुत खराब—बहुत ओछी बात वह कह गया है। एक भद्र पुरुष का उसने अपमान—घोर अपमान कर डाला है। राय राधाकृष्ण साधारण आदमी न थे—बड़े भारी प्रतिष्ठित पुरुष—और नामी बैरिस्टर थे। बुजुर्ग थे। आकर उन्होंने दिलीप से बड़े ही प्रेम और ममता से बातें की थी। उनके साथ ऐसा अभद्र व्यवहार? फिर वह तो इस समय उसके पिता के

स्थानापन्न सम्मान्य अतिथि थे। दिलीप जैसे सुशिक्षित तरुण को तो ऐसा न करना चाहिए था। अपनी इतनी बड़ी भूल उसे न दीखे—ऐसा अन्धा तो वह था नहीं। वह एक प्रगतिशील तरुण है। विचार अवश्य उसके प्राचीनता के पोषक हैं—पर वह मूढ़ नहीं है। और सब बात ठीक, पर जात बिरादरी की बात—ऐसे भद्दे ढंग से कह जाना जबकि—वह जानता था कि विलायत जाने के कारण राय साहब को बहुत दिन से बिरादरी से च्युत किया हुआ है। बहुत ही खराब बात हुई। राय साहब को सचमुच यह बात आहत कर गई। उन्हें दिलीप से इतनी संकुचित वृत्ति की आशा न थी।

पर तीर तो हाथ से छूट चुका था। अब क्या किया जाय? बार बार उसका मन होता था कि वह दौड़कर जाय और राय साहब से माफी मांग ले? पर यह भी उससे न बन पड़ा। वह सोचने लगा—यह भी एक भद्दा नाटक सा हो जायगा। वह प्रत्यक्ष देखने लगा कि जैसे राय साहब—जो ऐसे प्यार और ममता से बात कर रहे थे—घृणा से भरे हुए उसके पास से लौट गए। चलती बार जो वह उसे—खुश रहो, कह गए—वह उसे अपने लिए शुभाशीर्वाद नहीं—ऐसा प्रतीत हुआ कि—प्यार करते २ लात उसकी पीठ पर मार कर वे चले गए हैं। उसी लात से पीड़ित—मर्माहत वह तरुण मेघावी मूर्ख दिलीप अपने उस सूने कमरे में बड़ी देर तक जड़ बना खड़ा रहा।

राय साहब ने संक्षेप से माया को स्पष्ट रूप में अपनी बात चीत का निष्कर्ष बता दिया। सदैव का समुद्र की भांति हंस मुख उनका मुंह भरे हुए बादलों के समान गंभीर और भारी हो गया था यह माया से छिपा न रहा। मुस्कुरा कर—बल्के हंसते २ ही उन्होंने बेटी से दिलीप की बातचीत का सारांश कहा पर माया को यह साफ २ भास गया कि—दिलीप ने उसके पिता का घोर अपमान कर डाला है। और वह विचारों का चाहे जैसा है—तथा

शिक्षित भी चाहे जितना है–पर सभ्य नहीं। पिता की सब बातें सुनकर उसने अपना कुछ भी मत व्यक्त नहीं किया। सूखे कण्ठ से उसने कहा—'किस गाड़ी से चलना होगा–बाबूजी ?' सूखे कण्ठ से क्यों ? इसलिए कि उसके आते ही जिस सरल तरल मुख ने उसे भाभी का प्रिय सम्बोधन किया था–जिस सुखद मधुर ध्वनि ने उसे व्यामोहित किया था–वह भाभी सम्बोधन उसके अन्तर में विद्रूप करके हा हा–करके हंस उठा। छी छी कैसी लज्जा की बात है–अब वह कैसे करुणा को आंख उठा कर देखेगी। और उसने यदि फिर वही सम्बोधन किया तब ?

परन्तु इतना ही नहीं। अरुणा देवी ने जो उसे मां की ममता से अपनी छाती से लगाया था सो ? आज ही तो वह प्रतिमा एक सिंहासन पर आरूढ़ हुई, और आज ही च्युत हो गई। बाहरी विडम्बना। वह सोचने लगी। उसका यहां इस भांति आना कितनी खराब बात हुई। पुराने विचार के लोग, जो रिश्ते सम्बन्ध के मामलों में आन मानते थे–क्वारे मढ़े लड़कियां सुसराल नहीं जा पाती थीं सो ही ठीक था। यह सब क्या हो गया भला। एक वाक्य, एक भाव, एक मूर्ति, एक सम्बन्ध, एक सम्बोधन, एक प्यार उसकी रक्त बिन्दुओं ने जो उसकी चेतना पर अंकित किया। उसे वह अभी–इसी क्षण कैसे धो पोंछ कर साफ कर दे। यह तो उसके बूते की बात ही नहीं है–अब कैसे वह उस प्यार को, आदर को, ममता को, आत्मीयता को सहन कर सकती है। उसका मन हुआ–इसी समय–इसी क्षण वह किसी जादू के बल पर यहां से लोप हो जाय चुपचाप, बिना किसी से जाने चली जाय–सो ही अच्छा है। और उसकी अन्तरात्मा पर उस प्यार और ममत्व का जो भार लद रहा था–उसे वह वहीं किसी तरह उतार फैंके। यह भी उसके बूते की बात नहीं है–इसी से उसका कण्ठ स्वर सूख गया।

परन्तु जीवन में पहिली बार राय साहब ने बेटी का वह सूखा कण्ठ स्वर सुना। राय राधाकृष्ण की वह साधारण बेटी न थी। उनके प्राणों का सम्पूर्ण आवाहन उस कोमल-अमल धवल उज्ज्वल आलोक प्रतिमा में था। वह जानते थे—कि माया कितनी सहृदय, भावुक और प्रतिभा सम्पन्न है। आत्म सम्मान भी उसका कितना है, वे स्वयं भी बड़े मानधनी थे। अब जो मूर्ख दिलीप ने छोटे मुंह बड़ी बात कह डाली सो इसमें उनका अपना जो इतना अपमान हुआ-जिसके कारण राय साहब एक आहत योद्धा की भांति कराह कर दिलीप के पास से उठ आए, उसे तो वह बिल्कुल ही भूल गये। इस समय तो उनकी अपनी सम्पूर्ण चेतना माया के दुःख से ओत प्रोत हो गई। माया का वह सूखा कण्ठ स्वर सुन कर उन्होंने एक निरीह असहाय से होकर बेटी की ओर देखा-फिर वैसे कराहते हुए कहा—'गाड़ी तो अब तीन बजे मिलेगी।' उन्होंने जेब से घड़ी निकाल कर देखी फिर कहा-'अभी तो बारह बजे हैं।'

'क्या अभी-इसी क्षण नहीं चला जा सकता बाबूजी', माया ने खोखले स्वर में कहा।

'नहीं बेटी, ऐसा कभी नहीं हो सकता है। क्या कहेंगे डाक्टर। हम क्या उनसे नाराज होकर यहां से जा सकते हैं? नहीं, नहीं, ऐसा तो होना ही नहीं चाहिये।'

परन्तु पुत्री को पिता का दर्द दीख गया। उसने सूखे होंठों में हंसी भर कर-जैसे सारी वेदना-सारे अपमान को एक ओर धकेलकर कहा—'आपने मुझे कचालू खिलाने का वादा किया था चलिए ज़रा, देखूं कैसी होती है-कचालू की चाट।'

पिता तो प्रथम ही पुत्री का सूखा कण्ठ स्वर देख चुके थे—जब सूखे होठों पर हंसी देखकर उन्होंने कहा—'हां, हां—लेकिन अभी नहीं, भोजन से निबट कर। तीसरे पहर। अभी तू जा, करुणा से गप्प उड़ा। मैं तब तक डाक्टर से थोड़ी बात करलूं।'

वे मुड़ कर जाने लगे।

माया ने कहा—'तो फिर आप शायद यह गाड़ी न पकड़ सकेंगे।'

'देखा जायगा, मैं ज़रा बात तो करलूं। बात तो करलूं ?'

'और वह कभी न हारने वाला अजेय योद्धा—जैसे लड़खड़ाता हुआ, बाहर निकल गया। बेटी का बाप होना भी कैसा दुस्सह है—यह उसने प्रत्यक्ष देख लिया।

२०

उसी दिन तीसरे पहर, दिलीप बाहर जाने को तैयार था कि माया ने यथोचित रूप मे उसके कमरे में आकर कहा—'आप क्या जल्दी में हैं।'

क्षण भर के लिये दिलीप स्तंभित रह गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे आज पहिली ही बार उसने एक स्त्री मूर्ति देखी है। जो अलौकिक है, अद्‌भुत है, उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उसके हृदय के गहन अंधकार में एक बारगी ही सूर्य किरण फूट उठी। जीवन में कभी न अनुभव में आई हुई भावना ने उसे जकड़ दिया। जैसे उस मूर्ति के दर्शन मात्र से ही उसका सारा धैर्य-पौरुष-सम्पूर्ण दृढ़ता गल कर बह गई। वह जैसे अब तक एक चट्टान था, और अब क्षण भर ही में उस दर्शन का स्पर्श पाकर रजकण हो गया।

उसने हकलाते हुए कहा—'हां, नहीं—आप-आप—आइये।'

माया ने दो क़दम आगे बढ़ कर बिना ही किसी भूमिका के कहा—'ममी ने आपको देने के लिये यह घड़ी मुझे दी थी।' उसने वह घड़ी सामने टेबुल पर रख दी।

दिलीप को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे प्राण वायु का एक झोंका आकर उसे आप्यायित गया। उस शारदीय शोभा की मूर्ति के सान्निध्य में वह खो गया। उसकी समझ ही में नहीं आया कि क्या जवाब दे। वह घबराया सा एक टक माया के मुख को तकता रहा।

क्षण भर माया रुकी रही और फिर वह मुंह फेर कर चल दी। दिलीप ने कहा—'ठहरिए, सुनिये।'

'कहिये।'

'यह घड़ी आप—आप ले जाइये।'

'ममी ने आपके लिये भेजी है इसे आप वापस कर रहे हैं?'

'ममी से कहिये····

···· ···· कि घड़ी आपको पसन्द नहीं है है, ज़रा और घढ़िया सी···· ···· 'माया एक कटाक्ष फेंक कर मुस्करा दी। इस समय भी उसका स्वर सूखा था—आंखें सूनी थी। पर दिलीप ने इतना रस—इतना माधुर्य अब तक जीवन में कभी देखा ही न था। दिलीप ने जवाब की राह न पाकर कहा—'नहीं, नहीं, यह बात नहीं है।'

'तो मैं ममी से क्या कहूँ?'

'मेरा प्रणाम कहिये चरण स्पर्श कर दीजिए।'

माया ने हंसी रोक कर कहा—'मेरे चरण स्पर्श करने से क्या होगा भला, आप ही कभी आकर चरण स्पर्श कर लीजिये, प्रणाम मैं कह दूंगी। अच्छा, नमस्कार।'

वह मुड़ी। परन्तु दिलीप ने फिर बाधा देकर कर कहा—'सुनिए तो?'

'कहिए भी, आपका समय नष्ट हो रहा है।'

'ममी को मेरा प्रणाम कह कर और चरण स्पर्श कहके कहिए—यह घड़ी मैं नहीं रख सकता।'

'ममी पूछेंगी, क्यों नहीं रख सकते, तो क्या जवाब दूं?'

'जैसा ठीक समझिए।'

'तो कह दूं कि घड़ी पसंद नहीं है और बढ़िया मंगाई है।'

'नहीं, नहीं।'

'तब ?'

'मैं रख नहीं सकता हूँ।'

'किन्तु कारण क्या ?'

'कारण कुछ नहीं।'

'तब आप स्वयं ही कभी उन्हें मिल कर लौटा दीजिए। अकारण तो मैं लौटा कर ले नहीं जाऊंगी।'

वह फिर चलने लगी। दिलीप ने फिर बाधा देकर कहा—

'आप समझती नहीं हैं।'

'यानी मैं कूढ़ मग्ज़ हूँ।'

'वाह, यह भी कोई बात है।'

'तो आप समझाना नहीं चाहते।'

'नहीं, नहीं, पर यह अनुचित है।'

'क्या ? ममी ने प्यार से आपको एक उपहार भेजा है—उसे आदर पूर्वक ग्रहण करना अनुचित है, यही शायद आपकी हिन्दु संस्कृति है।'

'परन्तु.....'

'मैं अपना काम कर चुकी। एक फ़ालतू काम ममी ने झूठमूठ मेरे सिर मढ़ दिया। अब आपको रखना हो रखिये—वापस करना हो जाकर उन्हें वापस कर आइये। फैंक दीजिए या जो चाहे कीजिए। मैं तो इसे वापस नहीं ले जा सकती।'

इतना कह कर माया तेज़ी से कमरे से बाहर हो गई। उसके बाहर जाते ही दिलीप को ऐसा प्रतीत हुआ—जैसे सूर्य अस्त हो गया, या उसके प्राण ही निकल गऐ। या जीवन उलट पुलट हो गया। या संसार असत्य हो गया। जीवन की यह अनुभूति उसके

लिए असहनीय हो गई। वह घड़ी देर तक चुपचाप खुले द्वार की ओर मुंह किये खड़ा रहा। द्वार सूना था, कमरा सूना था, हृदय सूना था—आंखें सूनी थीं। संसार सूना था। उसने वह घड़ी उठाकर छाती से लगाली। आंखों में उसके आंसू छलक आए। वह ज़ोर २ से आह भरता, गहरी सांसें लेता हुआ कमरे में इधर से उधर घूमने लगा। एकाएक उसने सोचा—मैंने उसे बैठाया भी नहीं, कुछ खान भी नहीं की। मैंने उसे पाकर खो दिया। जैसे सीता सावित्री नया अभिनव रूप धारण करके अभी २ उसे दर्शन दे गई। उसके हृदय को आक्रान्त कर गई।

क्या वह फिर आयेगी। एक बार मैं उससे बात करना चाहता हूँ। परन्तु किस विषय पर? क्या उससे बहस करूं? पाश्चात्य जीवन के गर्हित वातावरण पर जिसकी प्रखरता के लिये वह प्रसिद्ध हो चुका है। अच्छा, कदाचित, वह फिर आए तो क्या बात करूंगा? दिलीप बहुत देर तक विचारने के बाद भी कुछ निर्णय नहीं कर सका। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे—कहने योग्य कुछ रहा ही नहीं। उसने एकाएक अनुभव किया कि वह अपना आपा खो चुका। अब उसके जीवन का प्रत्येक जीवकोष माया मय हो चुका था। और उसका वह आदर्शवाद अतलपाताल में डूब गया था।

२१

प्रेमालाप तो कुछ हुआ नहीं, पर प्रेम का अपरिसीम आदान प्रदान हो गया। दिलीप का वह अस्पृष्ट यौवन आहत सांड की भांति कराहने और चीत्कार करने लगा। वह घड़ी देर तक तो उस कमरे में प्रेत आवेशित की भांति चक्कर काटता रहा, फिर शैया पर गिर कर छटपटाने लगा। जैसे जलती हुई—दहकती हुई कोयलों

की अंगीठी पर वह भूना जा रहा हो। जीवित। एक असह्य वेदना—एक अनिर्वचनीय आकांक्षा, एक दुर्दम्य भूख—प्यास, उसे आक्रांत कर गई। आज तक के जीवन में सर्वथा अनुभूत पीड़ा से उसके प्राण व्याकुल हो गए। उसका सारा आदर्शवाद, हिन्दु संस्कृति, धर्म विचार, तर्क, बुद्धिवाद न जाने किस अतल भूतल में जा लोप हुये—रह गई माया—केवल माया। उसके मानस पटल पर—नेत्रों और आत्मा के अणु अणु में माया शत सहस्त्र मूर्त रूप धारण करके आनन्दनृत्य करने लगी। उस आनन्द को—शोभा की सुषमा को आत्मसात करने—अपने निकट लाने—अपने में ओतप्रोत करने को वह जितना ही व्यग्र होने लगा, उतना ही वह उससे दूर अधिक दूर—उसकी पहुंच की सीमा से बाहर दीख पड़ने लगी।

किन्तु, एक बार भी उसके मन में यह बात न आई कि जिस माया के लिए वह इतना व्याकुल हो रहा है जिस माया का इतना अभाव वह अपने जीवन में अनुभव कर रहा है—वह तो सांगोपांग उसे अपना आत्मार्पण करने ही आई थी। संभवतः वह आत्मार्पण कर भी गई है। राय साहेब और डाक्टर दोनों ही उसके प्रति सानुनय हो चुके हैं। माया की प्राप्ति में तो वह स्वयं ही अपनी माया है। एक बार भी उसके मन में यह ज्ञान न हुआ कि वह अभी अरुणा से, करुणा से, माया से, पिता से, माया के पिता से—किसी से भी—जाकर कह दे कि मेरे मन की सारी बाधाऐं हट गई हैं। सब व्यवधान दूर हो गऐ हैं। हवाई किले सब ढह चुके हैं—अब माया मेरे प्राणों में आ बसी है। लाओ—माया को मुझे दो। प्राणों में उसका लय होने दो। यद्यपि वह उसकी धर्म मूढ़ता, तो यहां अति तुच्छ नगण्य बन चुकी थी—पर वह जो उसका दर्प था—अहं तत्व था—वह उसके आहत आर्त हृदय पर तनिक भी सदय न था। न, न, वह अब हां कह भी सकता है। यह भावना भी उसके प्राणों की चेतना में नहीं थी। जैसे करोड़ों

बलिष्ट हाथों ने आकर उसका मुंह बंद कर दिया था।

अंधेरा हो गया, दिये बत्ती जल गये। पर दिलीप को इसका कुछ भी भान नहीं हुआ। वह उसी भांति अंधेरे में पड़ा रहा। किस नये रोग में वह आज इस समय एकाएक ग्रस्त हो गया था—उसका निदान वह नहीं जानता था। परन्तु जब घर के नौकर ने कमरे में आकर बत्ती जलाई और देखा—बाबू सो रहे हैं। तब उसने पास आकर स्नेह से पूछा—'तबियत खराब है क्या बाबू मांजी से कह दूं।' तब दिलीप कुछ भी जवाब नहीं दे सका। नौकर ने कुछ कहा है—यह तो उसने सुना—पर क्या कहा है—यह नहीं, सुना। वह नौकर को कुछ जवाब न देकर करवट बदल कर सो रहा।

पर अब वह सो भी न सका। नौकर के जाते ही वह तड़प कर उठा। और एकदम घर से बाहर हो लिया। ज्वराक्रांत की भांति उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। पर वह बढ़ा जा रहा था। आप ही आप। वह अपने पूर्वाभ्यासवश जमुना तीर पर जा पहुँचा। एक दो परिचितों ने उसे टोका भी, पर उसने सुना ही नहीं वह किनारे ही किनारे दूर तक चला गया। गहरी अंधेरी रात थी। आकाश में तारे टिमटिमा रहे थे। जमुना किनारे ऊंची २ घास में झींगुर बोल रहे थे। दूर नगर की बिजली की बत्तियां टिमटिमा रहीं थी। और सन्नाटे के आलम में वह एक उन्मत्त, मदमत्त विवश आदमी की भांति बढ़ा जा रहा था। वास्तव में उसे अपने तन बदन की सुध न थी।

किन्तु, आगे राह नहीं थी। गहन अंधकार में यमुना तीर का वह सघन जंगल जैसे और भी सघन हो उठा था। उसे रुकना पड़ा। अपने चारों ओर उसने देखा, यत्किंचित उसने सोचा—वह कहां आ गया है। ज़रा सी चेतना उसे हुई—वह लौटा। पर चेतना के उस क्षीण आलोक के सहारे से वह यही सोच सका

कि उसका जीवन अब समाप्त हो गया है। और जैसे वह अब अपने आपका एक भस्मीभूत पुतला है। फिर घाट आ गये थे। घाट के किनारे २ वह धीरे २ चलता रहा। जमुना का श्याम जल धीरे २ बहा जा रहा था। आकाश में वही तारे टिमटिमा रहे थे—कहीं २ उनकी कांपती हुई परछाई जल में दीख रही थी। एकाध बादल का टुकड़ा आकाश में घूम रहा था।

वह एक सुपरिचित घाट पर बैठ गया। वह सोचने लगा—यह हो क्या गया। माया तो उसकी कुछ थी नहीं। उसका उसपर कुछ अधिकार भी न था। फिर क्यों वह ऐसा समझ रहा है कि वह लुट गया। जब उसकी गांठ में कुछ था ही नहीं तो लुटा क्या है। नहीं लुटा है तो वह आज इस समय ऐसा निरीह—असहाय—एकाकी कैसे हो गया है? अब तक क्या था उसके पास—जो अब नहीं रहा। उसने बहुत सोचा—पर कोई भी तो कूल किनारा उसे नहीं मिला। वह कुछ भी तो नहीं समझ पाया—कि उसकी क्या स्थिति है और वह क्या करे।

बहुत देर तक वह वहीं चुपचाप बैठा रहा। एकाएक उसे योगिराज का स्मरण हो आया। कैसा झूठा, मक्कार, और धूर्त था वह। उसकी श्रद्धा भावना पर कैसा करारा आघात कर गया वह। धर्म-कर्म-योग-व्रत-उपवास-नियम—सबकी एक रूप रेखा सी जैसे उसे छू गई। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो—अबतक वह व्यर्थ के बोझ को ढोता फिर रहा था—आज उसे मिली अनायास एक निधि—और—मिलते ही छिन गई। वह गुनगुना उठा। 'आज ही तो था मिलन क्षण आज ही हो गई विदाई।'

झर झर झर झर आंसू उसकी आंखों से झरने लगे। जीवन में प्रथम बार इन अश्रुकणों ने उसके नेत्रों को सजाया था। उन आंसुओं से स्नातपूत माया का दिव्य शरीर जैसे उसे उसके बिलकुल ही निकट दीखने लगा। उसने दोनों हाथ उन्मुक्त आकाश

की ओर फैला कर अस्फुट स्वर से कहा—'आओ-आओ-आओ-माया-तुम मेरी हो—मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता—और उसका मुख पृथ्वी पर झुक गया—उसे ऐसा प्रतीत हुआ—जैसे उसकी नींद में ताजा फूलों का सुरभित ढेर कहीं से आ पड़ा है—और उन्हीं फूलों के ढेर में माया के चरण हैं, उन फूलों से भी अधिक सुरक्षित—कोमल और प्रिय। और उसके विदग्ध ओठ उन चरणों को चूम रहे हैं। सम्पन्न हो रहे हैं। आप्यायित हो रहे हैं। परिपूर्ण हो रहे हैं।

२२

और माया ? उसने यह सोचा भी न था कि जो कुछ हो गया—वही हो जायगा। पिता का दिलीप ने मूढ़ की भांति अपमान किया था। इसलिए वह दिलीप का अपमान करने ही उसके पास गई थी। दिलीप को उसने इससे प्रथम कभी देखा भी न था। उससे उसके विवाह की चर्चा चल रही है। यही वह जानती थी। डाक्टर परिवार की गरिमा से वह परिचित थी। एक बार वह अरुणा देवी की स्नेहमयी गोद में प्यार पा चुकी थी—पर वह बहुत पुरानी बचपन की बात थी। दिलीप की बाबत उसने इतना ही सुना था कि वह बड़ा ही कट्टर हिन्दु है। परन्तु मन से माया को यह बात प्रिय थी। वह अपनी आंखों से योरोप के जीवन को देख आई थी। उसे जीवन में स्पर्श कर आई थी—वह उसके गुण दोषों से भी परिचित थी। इसी से आर्य सभ्यता हिन्दु संस्कृति पर उसकी श्रद्धा थी। अपनी श्रद्धामयी माता का उस पर बहुत प्रभाव था। पर वह प्रगति की शत्रु न थी। नये विचार—ज्ञान विज्ञान की विरोधिनी न थी। न वह कुरीतियों की

समर्थक थी। रूढ़िवाद से उसे घृणा थी। दिलीप इतना उच्च कोटि का विद्वान, दर्शन शास्त्र का ग्रेजुएट होने पर भी अपनी हिन्दु संस्कृति पर आस्था रखता है। इससे वह मन ही मन दिलीप के प्रति श्रद्धा भाव रखने लगी थी। दिल्ली जब वह चली थी तो उसके मन में एक गुदगुदी हो रही थी—वह सोच रही थी—क्या हर्ज है—ममी की घड़ी जब दूंगी तो ज़रा नोक झोंक भी होगी। देखूंगी बाबू साहेब की फिलासफी। ज़रा व्यंग करूंगी, जलाऊंगी, चिकोटी काटूंगी, सुईं चुभाऊंगी। फिर उस तड़फ का मज़ा लूंगी।

पर यहां तो यह व्यंग विनोद कुछ हुवा नहीं। राय साहेब से जिस ढंग पर दिलीप ने बात खत्म की, उससे राय साहेब बेहद नाराज़ हो गये। वे बिरादरी से खारिज है। उनकी बेटी को ब्याहने से बिरादरी नाराज़ होगी। यहां तक दकियानूसी विचार दिलीप के मुंह से सुनने की उन्हें आशा न थी। वे अपनी बेटी को भीतर से बाहर तक जानते थे, इसी से वह साथ में माया को लाये थे—उन्हें विश्वास था—माया को देख समझकर सब ठीक हो जायगा। दिलीप ऐसा मूढ़ न होगा।

माया ने जब यह सब सुना तो—दर्प और आत्म सम्मान दोनों ही ने उसे दिलीप के पास जाने को प्रेरित किया। मां की घड़ी देने का बहाना था। वह पिता के अपमान का बदला लेना चाहती थी—कुछ तीखा व्यंग करना भी चाहती थी। यदि उसे मालूम होता कि वह असल मुसलमान माता पिता का बालक है—तब तो वह पिता के अपमान का पूरा ही बदला चुका लेती। असल में वह बिना ही हथियार शत्रु जीतने चली थी।

परन्तु वहां कुछ और ही हो गया। उसने देखा—एक गौर वर्ण, तेजस्वी, छरहरे बदन का लम्बा दुबला तरुण, नोकदार नाक और पानीदार तेज गहरी काली आंखें, सुर्ख पतले होठ, मजबूत

ठोड़ी और मांसल गर्दन, विशाल वक्ष और मुट्ठी भर कमर, सीधा सरल वेश तो माया ने आपा खो दिया।

माया इस तरुण की विभूति को अपने आंचल में भर ले जाने को आई है—पर उसे सूखा लौटना पड़ रहा है। कितना दुर्भाग्य है। कितना अपमान है। पहिले भी भला कभी कोई हिन्दु कुमारी इस भांति लांच्छना की पात्र बनती थी? भला कभी वह इस प्रकार निराश हो कर लौटने के लिए पति घर में आती थी। हिन्दु वधू तो गाजे बाजे के साथ—हीरे मोतियों से सुसज्जित, सुसराल की आंखों पर पैर रखकर श्वसुर गृह में प्रवेश करती हैं। नई सभ्यता और नऐ आलोक ने ही उसे इस भांति अपमानित किया। वह दिलीप को न व्यंग बाणों से विद्ध कर सकी, न उसके हृदय में सुई चुभा सकी—न चिकोटी काट सकी। माता की दी हुई घड़ी वहां रख और आंखों में एक चुभन भर वहां से भाग आई।

भाग आई, यह तो ठीक। पर अपने रक्त की प्रत्येक बूंद में दिलीप की वह मूर्ति भर लाई। प्रेम और दर्द अब संग्राम करने लगे। और माया उनकी चपेट में घाव खाने लगी। वह और राह न पाकर सीधे अपनी शैया पर पड़ गई।

उसी समय करुणा ने आकर कहा—'उठो भाभी, हम सिनेमा चल रहे हैं। मां तैयार है। जल्दी करो।' हाय रे भाभी। यह अबोध बालिका नहीं जानती कि यह मधुर सम्बोधन उसे कहां घायल कर रहा है। उसने उसे भाभी ही बना लिया है जीवन के घात प्रतिघातों से इस सरल तरल व्यक्ति को क्या सरोकार है।

माया ने आंखें पोंछते हुऐ कहा—'इस समय न जा सकूंगी, मां से कह दो।'

'अरे, तुम्हारी तो आंखें सूझ रहीं हैं, लाल चोट हो रहीं है, क्या तबियत ख़राब है?'

'हां, बहुत खराब है, ख़रा सोने से ठीक हो जायगी।'

'तो मैं मां को बुलाती हूँ।' माया का तनिक भी अनुरोध न मान करुणा अरुणा देवी को बुला आई। अरुणा के साथ आगे डाक्टर भी—राय साहेब भी। और कोई न समझे, पर राय साहेब ने पुत्री की चोट को समझ लिया। डाक्टर भी कुछ २ समझ गये, वे मौन ठगे से खड़े रहे। केवल अरुणादेवी माया का सिर गोद में लेकर व्यस्त भाव से बैठ गई। करुणा और भी परेशान होकर दौड़ धूप करने लगी। यूडीक्लोन ले आई। और भी उपचार हुए। अरुणादेवी ने सभी को विदा कर दिया। किन्तु करुणा किसी तरह नहीं गई। अब कैसा जी है भाभी। वह बार बार पूछती रही। कोई भी किसी तरह उसका 'भाभी' कहना न रोक सका। और अब, न जाने किस सूक्ष्म अनुबन्धन के सहारे यह शब्द किन २ भावों—अनुभावों—विभावों से घुल मिल कर माया के तृषित कर्णों में सुधा बरसाने लगा। रक्त की प्रत्येक बूंद में सिहरन पैदा करने लगा।

बहुत रात बीतने पर माया ने बड़ी कठिनाई से अरुणादेवी को विदा किया। परन्तु करुणा किसी तरह न गई। वह वहीं—माया के पास, उसी पलंग पर, माया के गले में अपने कोमल भुज मृणाल का बन्धन डाल कर सो रही। दो स्त्री हृदय पास २ धड़क रहे थे—दोनों अम्लान—अनघात, कौमार्य के पुनीत तत्व से ओत प्रोत—शुद्ध सरल प्रेम से लबालब। किन्तु एक ज्ञात दूसरा अज्ञात। केवल एक ही पोरे आगे बढ़ने से दोनों में इतना अंतर पड़ गया था—इन्हीं कुछ क्षणों में।

२३

माया की यह मर्म पीड़ा, और दिलीप का औद्धत्य सभी ने देख समझ लिया। इससे डाक्टर अत्यन्त मर्माहत हुए। अरुणादेवी

भी विचलित हुईं। उसी रात पति पत्नी में बातें हुईं।

अरुणा ने कहा—'तुम तो शायद कुछ भी नहीं समझे।'

'क्या ?'

'लड़की को कितना दुःख हुआ है। मैं स्त्री जाति हूँ—उसका दुःख समझ गई हूँ। मानती हूँ। उसे हमारे द्वार पर इस तरह न आना चाहिये था—पुरानी परिपाटी अच्छी थी। परन्तु उसके इस आने को मैं निन्द्य भी नहीं समझती। एक ही दृष्टि में मैंने उस रत्न का मूल्य समझ लिया यदि वह तिल भर भी यह संदेह मन में करती—कि यह रिश्ता होगा ही नहीं—तो वह इधर क़दम भी नहीं रखती। वह जैसी सरला है—वैसी ही मानवती भी है। वह स्वयं हो विदुषी है, समझदार है, फिर उसके पिता साथ हैं। कितने सत्पुरुष हैं—कितने महापुरुष हैं। मैंने तो ऐसे साधु सज्जन कोई देखे नहीं। अब क्या हमारे द्वार पर हमारी लक्ष्मी सूनी लौट जायगी! यदि ऐसा हुआ तो हमारी मर्यादा गई समझो। मैं तो इस शर्म को ढोकर जिन्दा न रह सकूंगी।'

'लेकिन मैं करूं क्या ? तुम्हीं कहो। दिलीप से मैं सब कुछ कह सुन चुका, तुम भी कर चुकीं—वह अपने मन का है—देखती ही हो। क्या मैं उसके साथ ज़बर्दस्ती करूं। ज़बर्दस्ती करने पर—वह घर से भाग न जायगा—इसकी क्या गारंटी है। फिर इस तरह भैंसा बैल की अनमेल जोड़ी, रस्सी से ज़बर्दस्ती घांध देने से कहीं गृहस्थ की गाड़ी चलती है। तुम्हीं कहो।'

'नहीं चलती, दिलीप से ज़बर्दस्ती करने की हमें ज़रूरत नहीं। वह हमारा लड़का नहीं है। पराया है, विधर्मी है, वे कहाँ हैं, उन्हें उसका सच्चा परिचय दे दीजिए—उसकी सब ज़मीन जायदाद उसे दे दिला कर यहां से उसका काला मुंह कीजिए। हमसे उसका कुछ सरोकार नहीं है।'

'ज़रा धीरे बोलो। यह तुम क्या कह रही हो। दुनिया पर

जब यह बात खुलेगी तो दुनिया क्या कहेगी ! सोचो तो। और स्वयं दिलीप की क्या हालत होगी। देखती हो—विचित्र ढंग से वह साम्प्रदायिक आदमी बन गया है—एक कट्टर हिन्दु की तरह रहने में वह अपनी शान समझता है—अब जो उसे यह पता लगेगा तो अजब नहीं पागल हो जाय, या जान दे दे। फिर माया का इससे क्या भला होगा। उसका दुःख तो और भी बढ़ जायगा। उसका उपाय क्या है।'

'उसका भी उपाय है—मैंने सोच समझ लिया है।'

'कौन उपाय ?'

'मैं अपने सुशील से माया का ब्याह करूंगी। तुम रायसाहेब से कह दो। लड़की तेरे घर से सूनी न जायगी।'

डाक्टर कुछ देर चुप रहकर बोले—'यह क्या ठीक होगा ? और सुशील ही क्या राजी हो जायगा।'

'सुशील तो मेरे पेट का पैदा हुआ लड़का है।'

'तुमने क्या उससे बातें की हैं।'

'नहीं कीं। पर इसमें क्या ? वह 'ना' न कहेगा।'

डाक्टर ने सिर खुजा कर कहा—'अच्छा, बिरादरी में जो एक बवंडर खड़ा होगा ?'

'दिलीप से ब्याह करते तो क्या न होता ?'

'शायद होता।'

'तो अब भी होने दो। क्या होती है बिरादरी। मैं परवाह नहीं करती।'

'डाक्टर ने संतोष प्रकट किया। पत्नी के प्रस्ताव से सहमत होते हुए उन्होंने कहा—

'अच्छी बात है, मैं रायसाहेब से सुबह बात करूंगा।'

'बात करके ही रह जाना न होगा। सगाई और गोद की रस्म भी कल ही को करनी होगी। अब मैं कच्ची बात थोड़े ही

करूंगी।'

'सुशील से ज़रा पूंछ तो लो।'

'सुशील को मेरे ऊपर छोड़ दो।'

'तो तुम जानो।'

डाक्टर एक प्रकार से आश्वस्त होकर सो गए। सुबह जब राय साहब ने चलने का उपक्रम किया—तो डाक्टर ने नम्रता पूर्वक कहा—'जाना तो आज न हो सकेगा—आपका, सुशील की मां की यही इच्छा है।' डाक्टर जैसे इस बार दिलीप की मां कहना ही भूल गए।

राय साहब ने अकचका कर कहा—'क्यों, क्या बात है, जाना तो अवश्य होगा, मेरे कोर्ट में केस हैं।'

'यहां के केस को पहिले निबटाना जरूरी है।' डाक्टर ने रसिकता से कहा।

'ज़रा साफ़ २ कहिए, तो समझूं।'

'सुशील की मां चाहती है, सगाई की रस्म आज ही के शुभ मुहूर्त में हो जाए। वह बिटिया को बिना गोद भरे सूना जाने देना नहीं चाहती।'

'लेकिन दिलीप की तो इच्छा···'

'दिलीप की इच्छा न हो। मैं सुशील के लिए रिश्ता स्वीकार करता हूं।'

'सुशील के लिए? हठात् राय साहब को दिलीप का वह वाक्य याद आ गया—बिरादरी का भी सवाल है।' उनका खून गर्म हो गया। पर उन्होंने संयत होकर कहा—'यह तो बात ही दूसरी है, इस पर मुझे विचार करना होगा—मैं विचार कर आपको लिखूंगा।'

डाक्टर को स्वप्न में भी गुमान न था कि राय साहब इस प्रस्ताव को अस्वीकार देंगे। राय साहब की बात सुनकर वे भौंचक

से उनका मुंह ताकते रह गए। क्षण भर उनके मुंह से बोली न निकली। फिर कुछ सम्हल कर उन्होंने कहा—'परन्तु आपका इस तरह जाना तो ठीक नहीं है।'

'जो ठीक नहीं है, उसे आप इस तरह ठीक करना चाहते हैं। मैं उसे ठीक नहीं समझता।' राय साहब एक फीकी हंसी हंस दिए। फिर डाक्टर के कन्धे हर हाथ रख कर कहा—'आप मेरे पुराने दोस्त हैं। हम दोनों में फारमेलिटी की जरूरत नहीं। आप दिल में जरा भी मलाल न लाइए। सच पूछिए तो मुझे दिलीप की स्प्रिट पसन्द है। और मैं उसकी कद्र करता हू। इसलिए, आप बिल्कुल संकोच न करें। हमारे आपके पुराने सम्बन्ध वैसे ही क़ायम रहेंगे जैसे अब तक रहते आए हैं। इतनी सी बात पर कुछ अन्तर थोड़े ही पड़ जायगा।'

उन्होंने डाक्टर का प्रगाढ़ आलिंगन किया। डाक्टर ने सूखे मुंह से पत्नी के पास जाकर कहा—'राय साहब तो रुकने को राज़ी नहीं होते—जा रहे हैं।'

'वाह, जा कैसे सकते हैं, मैं जाने दूंगी तब न?'

'तो तुम उनसे कहो।'

'चलो कहती हूँ। अरुणा चाभियों का झुब्बा वाला साड़ी का पल्ला कन्धे पर डाल कर जिस कमरे में राय साहब समान बांध-बूंध रहे थे उसकी बग़ल में किवाड़ की ओट में आ खड़ी हुई। डाक्टर ने कहा—'सुशील की मां, आपसे कुछ कहने आई हैं'—इस समय भी डाक्टर पत्नी को दिलीप की मां न कह सके। राय साहब ने आदर प्रदर्शित करते हुए-खड़े होकर कहा—'कहिए, कहिए, मुझे क्यों न बुला लिया।'

'आप यों न जाने पाएंगे। बिटिया मेरे घर से सूनी न जायगी।'

'आप बड़ी उदार हैं, कभी भी आपका यह अनुग्रह नहीं भूलूंगा। पर अभी तो हमें जाने ही दीजिए। डाक्टर साहब ने

जो प्रस्ताव उपस्थित किया है–उस पर हमें नए सिरे से विचार करना होगा। विचार परामर्श करके मैं आपको लिखूंगा। अभी ऐसी जल्दी क्या है। फिर आपको भी भली भांति सब बातों पर विचार कर लेना चाहिए। इन मामलों में जल्दी करने से धोखा ही होता है।' इतना कह कर राय साहब ने माया को लक्ष्य करके कहा—'जल्दी करो बेटी–गाड़ी का समय हो गया है।'

राय साहब के स्वर में एक ऐसी दृढ़ता थी कि फिर अरुणा देवी को कुछ कहने का साहस ही न हुआ। फिर वह बेटे की मां थी। बेटी के बाप के इस उत्तर से उनके अहंकार पर करारी चोट लगी। वह सूखे मुंह से भीतर लौट गई।

जब गाड़ी पर सब सामान लद गया तो सारा परिवार अपने सम्मान्य अतिथि को विदा करने एकत्रित हुआ। इसी समय दिलीप भी आ गया। एक ही रात में उसकी आकृति कुछ की कुछ हो गई थी। वह सब के पीछे, सबसे छिप कर चोर की भांति खड़ा था। इसके विरुद्ध सुशील ने आज अपनी सदा की असावधान और लापरवाह आदत जैसे छोड़ ही दी थी–उसने सिल्क का कुर्ता पहना था। बालों को भी संवारा था। वह सकुचाया सा–लजाया सा मां के पास खड़ा था। मां का प्रस्ताव उसने सुन लिया था।

माया और करुणा एक दूसरे से आलिंगनबद्ध थीं। करुणा माया को छोड़ती ही न थी। वह बारंबार भाभी भाभी कह कर उसे जकड़ रही थी। अब कब आओगी भाभी बार २ पूछ चुकी थी और बार बार पूछ रही थी। माया जैसे रात भर रोती ही रही थी–आंखें उसकी फूलकर गुल्लाला हो रही थीं। अन्त में करुणा को अलग किया। और अपने गले का नैकलैस उतार कर उसके कण्ठ में डाल दिया। अरुणा देवी के विरोध पर वह सिसकने लगी। पैरों पर गिर पड़ी। उस मूक रुदन के विरोध की सामर्थ्य किसमें थी भला? अरुणा ने कराह कर छाती पर हाथ रखा।

और जब वह और अरुणा देवी के अंग पाश में बद्ध बाण बिद्ध आहत हंसिनी की भाँति लड़खड़ाती हुई गाड़ी में बैठ रही थी—उसने एक बार अपनी सूझी हुई लाल लाल आंखें उठाकर सब के पीछे अपराधी की भांति मुंह छिपाए खड़े दिलीप की ओर देखा उसकी सूनी सूखी—उन्मत्त दृष्टि उसकी फूली हुई आंखों में बरछी की नोंक की भांति घुस गई। वह झपट कर गाड़ी में घुस गई। आंख के इस नए घाव को देखा—सिर्फ दिलीप ने।

माया चली गई। परन्तु। इस परिवार के प्रत्येक आदमी को आहत कर गई। दिलीप तो तीर की भांति सीधा जमुना तट की ओर चला गया, सुशील कोई गीत गुनगुनाता अपने कमरे में घुस गया। डाक्टर अपराधी से चुपचाप नीचा सिर किए घर में लौट आए। करुणा रोती रही—और अरुणा जैसे अपनी मर्म पीड़ा को भुला कर बेटी को भुलावा देती अपने शयन गृह में लौट आई। इस समय केवल एक व्यक्ति इस घर में स्वस्थ चित्त और आनन्द-मग्न था—वह था—शिशिर। उसने मां से, करुणा से, पिता से, दिलीप से, सुशील से सभी से पूछा—'भाभी आई थी तो चली क्यों गई।' किसी ने कोई जवाब नहीं दिया—सिर्फ सुशील ने हंस कर कहा—'घुत्।'

२४

माया का वह वैकल्य और दिलीप का उन्माद देख कर भी किसी ने यह नहीं समझा कि दो तरुण हृदय प्यार का घाव खा गए हैं। माया के वैकल्य में सभी ने अपमान की वेदना देखी—पर दिलीप की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। इस घटना के बाद दिलीप एक बारगी ही माता पिता के विराग और उपेक्षा का

पात्र बन गया। पिता ने उससे बातचीत ही बन्द करदी। और मां ने उसे यह दिया—'तू मेरा लड़का नहीं है, जा, चला जा, जहां तेरा जी चाहे और वही कर जो तू चाहे। वह तो चाहता था कि एक बार फिर उसके सामने व्याह का प्रस्ताव आये। परन्तु वह प्रसंग आया ही नहीं। दिलीप अपने दिल की बात खोल कर किसी से कह सका नहीं। मन ही मन में घुटता रहा। अब उस घर भर में सर्वत्र सूना लग रहा था। माता पिता उससे नाराज थे। पर अभी तक उसे यह पता न था कि अरुणा देवी ने गुस्से में आकर जो बात कही है—एक यथार्थ में सत्य है। ऐसा होना या सच्ची बात का उसे पता लग जाता तो शायद वह इस परिस्थिति में आत्मघात ही कर लेता।

अब वह बहुधा नित्य ही बहुत जल्द सुबह उठकर जमुना किनारे चला जाता। और कभी २ तमाम दिन वहीं पड़ा रहता। संघ के काम में भी अब उसे रुचि नहीं रही थी—संगी साथी उसे कौंचते—वह गुमसुम सभी के उलहने सुनता। अपनी विरह वेदना किसी पर प्रकट करना उसके लिए शक्य न था। वह किसी को दिल की बात कहे—ऐसा कोई उसका हितू मित्र न था। यह उसने अब जाना।

माया के प्रति मन ही मन सुशील के मन में भारी मोह उत्पन्न हो गया था। उसे आशा बन्ध गई थी कि उसका विवाह माया से हो जायगा। यह यद्यपि बड़े ही उच्छृंखल स्वाभाव का था, परन्तु इस प्रकरण में वह कच्चा था। वह अभी से मन में बड़े बड़े मंसूबे बांधने लगा। माया फार्वर्ड लड़की है। मजा रहेगा। वह पर्दे की रानी बन कर तो बैठने की नहीं। हम लोग कन्धे से कन्धा भिड़ा कर आंदोलन करेंगे। बढ़ २ कर भाषण करेंगे। माया का चमत्कारिक व्यक्तित्व हमें नेतृत्व की चोटी पर खींच ले जायगा। सुशील इस प्रकार अपने अस्तव्यस्त जीवन को माया की कल्पना के सहारे व्यवस्थित करने लगा।

करुणा घपले में पड़ी थी। उसे भीतरी बातों का कुछ भी पता

न था। जात बिरादरी के झमेलों से यह दूर थी। दिलीप के जन्म के सम्बन्ध में भी वह कुछ नहीं जानती थी। माया उसकी भाभी बन कर आई है, बस यही उसके लिए काफी था। उसने यही सुना था कि बड़े भैया से नहीं, सुशील भैया से उसका ब्याह होगा। यह सब अदला बदली क्यों हो रही है, यह वह समझ नहीं पा रही थी—पर उसे संतोष था कि ब्याह चाहे जिस भैया से हो—वह भाभी तो रहे ही गी। उसके लिए यही यथेष्ट था। करुणा से ही बात फूट कर दिलीप के कान में भी पहुँची। दिलीप के लिए यह मर्मान्तक था। यद्यपि यह बात न दिलीप जानता था न सुशील—कि रायसाहेब ने अभी यह रिश्ता स्वीकार नहीं किया है। परन्तु सुशील में ज्यों २ इस रिश्ते के सम्बन्ध में उत्सुकता और उद्वेग के चिन्ह पाते गये-त्यों २ दिलीप का क्षुब्ध मन हाहाकार से भरता गया। जो शीघ्र ही सुशील के प्रति तीव्र प्रतिहिंसा और विद्वेष का रूप धारण कर गया।

अरुणा देवी को दिलीप की 'ना' ने तो आहत किया ही था। राय साहेब की 'ना' ने उन्हें और भी मर्माहत किया। वे बारम्बार अपने को धिक्कार ने लगी कि क्यों उन्होंने यह प्रस्ताव किया। क्यों फजूल सुशील के मन में एक नई आशा-नई भावना की जड़ जमाई। वे आत्मग्लानि से मरी जा रही थीं। उन्होंने उस सुबह जब सुशील को बुलाकर कहा था····'मैं तेरा ब्याह माया से पक्का कर रही हूँ रे।' तो उसने कुछ हंस कर-कुछ लजा कर निरीह बालक की भांति कहा था—'जैसा तुम ठीक समझो वही करो मां।' अब वह सोच रही थी—यह ठीक नहीं हुआ। इतनी उतावली की क्या जरूरत थी। अब वे जब टाल कर चले गये-अब 'ना' कहदें तो क्या होगा? और यह भी 'ना' ही है। परन्तु, वह अपनी ओर से अब इस सम्बन्ध में राय साहेब को कुछ लिखना नहीं चाहती थी। और राय साहेब ने घर जाकर एक दम चुप्पी साध ली थी। तैश

में आकर वह अब राय साहेब को नीचा दिखाने या बदला लेने के विचार से कहीं न कहीं सुशील का ब्याह तय कर डालना चाह रही थी। पर डाक्टर राय साहेब के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें बहुत कुछ आशा भी थी। अब क्या होगा—इसी सोच संकोच में अरुणा घुल रही थी—माया की—ममता—शील और सम्मान उसे सब ओरों से आहत कर रहे थे।

राय साहेब ने घर जाकर इस नए प्रस्ताव पर पत्नी के साथ विचार विमर्श किया। बिरादरी की बात पर वे भी चिढ़ गईं। परन्तु राय साहेब ने कहा—'ये वाक्य डाक्टर साहेब के तो है नहीं। वह तो हाथ पसार कर माया को मांग रहे हैं। ग्रहिणी ने कहा—'परन्तु माया हमारी बेटी है, कोई बिक्री का सौदा नहीं है कि एक ग्राहक से सौदा न पटा तो दूसरे से पटा दिया। बड़े भाई को जूता ओछा पड़ा तो छोटे ने पहन लिया। नहीं, अब इस सम्बन्ध में उस परिवार से बात करने की कोई जरूरत नहीं है।'

राय साहेब ने माया से भी बात की। माया ने दृढ़तापूर्वक इन्कार कर दिया। पन्तु माया की इन्कारी में माया के हृदय का जो प्रच्छिन्न निगूढ़ प्रेम भाव दिलीप के प्रति था, उस पर उनकी दृष्टि नहीं गई। उन्होंने यही सोचा कि दिलीप की प्रतिक्रिया स्वरूप ही माया विरोध कर रही है। उन्हें यह युक्ति संगत और आत्म सम्मान मूलक ही प्रतीत हुआ कि वह उस परिवार में अब ब्याह की बात ही न करें।

परन्तु शीघ्र ही माया के वैकल्य का सही कारण उन्होंने जान लिया। जान कर वे बहुत चिंतित हुये। उन्हें क्या करना चाहिए, यह निर्णय वे न कर सके। बहुत सोच विचार कर उन्होंने इस सम्बन्ध में मौन ही धारण करना ठीक समझा। उन्होंने सोचा—समय के साथ परिस्थितियां बदलेंगी। तब देखा जायगा। उन्होंने डाक्टर को भी कोई जवाब नहीं दिया। डाक्टर ने भी उन्हें नहीं लिखा। दो

साल बीत गए। सुशील और दिलीप के इस बीच अनेक रिश्ते आये पर उन्होंने नहीं लिए। उनके मन में जहां माया का प्रश्न शूल हो कर चुभ रहा था—वहां दिलीप का अस्तित्व एक बड़ी बाधा बना हुआ था, दिलीप के मन में जो एक गहरी वेदना थी—उस पर किसी ने ध्यान ही नहीं दिया।

राय साहेब ने भी माया के ब्याह की फिर चर्चा नहीं की।

२५

कालचक्र अपनी गति पर झूमता चला जा रहा। योरोप युद्ध की ज्वाला में जल भुन कर खाक हो रहा था। हिटलर जलथल और वायु में सर्वग्रासी महाकाल बना नर रक्त से स्नान कर रहा था। महाराज्यों और महाराष्ट्रों के गर्वीले राजमुकुट भूलुंठित हो रहे थे। ब्रिटिश साम्राज्य महा संकट से गुजर रहा था। योरोप का वह महानरमेध खसकता हुआ एशिया और प्रशांत क्षेत्र को छू रहा था। भारत में अशांत वातावरण भरा था। हर एक चीज़ मंहगी हो रही थी। आर्डिनेन्सों और ज़ोर जुल्मों की भरमार हो रही थी। कांग्रेस का नेतृत्व बूढ़े और ठण्डे दिल कर रहे थे—वे कह रहे थे कि ठहरो और प्रतीक्षा करो। पर सुभाष का गर्म रक्त प्रतीक्षा करने का धैर्य न रख चमत्कारिक ढग से भारत से गायब हो चुका था। और अब उनकी जर्मनी और सिंगापुर—या बर्मा से निरन्तर होने वाली रेडियो स्पीचों ने देश को हिला डाला था। अंग्रेजों ने गुलाम भारत को और भी कस कर भारत रक्षा के नाम पर आर्डिनेन्सों की जंजीरों में जकड़ कर जबर्दस्ती युद्ध साधन बना लिया था। उत्तेजना और असन्तोष से भारत की धमनियों का रक्त खौल रहा था। विद्रोह के प्रचण्ड बवंडर की सूचना भारत के प्रत्येक युवक की

की गर्म निःश्वासों में मिल रही थी। जर्मन नाजी सेनाएं एक के बाद दूसरे देश को आक्रांत करती अबाध गति से बढ़ती जा रहीं थीं। फ्रान्स कब्र में कराह रहा था। और ब्रिटेन की आंखें पथरा रही और नाड़ी छूट रही थी। पूर्व में जापान ने भी युद्ध का शंख फूंक दिया था। अंग्रेजों के सुदृढ़ पूर्व सिंहद्वार सिंगापुर पर जापानी ध्वजा फहरा चुकी थी। विद्रोही आन्दोलन भारत में अंग्रेजों का रहना हराम कर रहे थे। सर स्टेफोर्ड क्रिप्स जो भानमती का पिटारा लाये थे—उसे ठुकरा दिया गया था। चर्चिल सरकार की सिरदर्दी का अंत न था। लोग कहने लगे थे—'ब्रिटेन भारत के हाथ पांव बांध कर जापान के आगे डाल देगा।'

उन दिनों भारत में धड़ाधड़ विदेशी सेनाएं आ रही थीं—अमेरिकन, आस्ट्रेलियन, अफ्रीकन, सभी सेनाएं थी। इस सेना का आगमन भारत की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए नहीं, बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा के लिए था। देश का सारा उत्तम खाद्य पदार्थ इन गोरे सैनिकों को मिल रहा था। देश भूखा मर रहा था देश भर में दुधार गाएं और भैंसें तराजू पर तुलकर बिक रही थी। उनका ताजा मांस खा कर और आकण्ठ मद्य पान करके ये सैनिक भारत में अनैतिकता का नंगा नाच नाच रहे थे। भारत के बच्चों को एक बूंद दूध के लाले पड़े थे।

अन्त में सातवीं अगस्त का चिरस्मरणीय दिन भी आया। बम्बई में अखिल भारत वर्षीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन में गान्धी जी की वाणी फूटी।

यदि मैं भारत, ब्रिटेन, अमेरिका तथा धुरी राष्ट्रों समेत शेष संसार को अहिंसा की ओर ले जा सकता तो मैं ऐसा कर डालता। पर यह चमत्कार तो केवल परमात्मा के हाथ में है। अब मेरे हाथ तो केवल यही है—कि करूं या मरूं। आपको पत्नी परिजनों का मोह त्याग देना होगा। संसार में सब कुछ छोड़ देना होगा।

मैं चाहता हूँ कि सब विरोधी अंग मिलकर भारत को विदेशी शासन से मुक्त कर लें। चाहे इसके लिए उन्हें कितना भी मूल्य क्यों न चुकाना पड़े। उनका एक ही उद्देश्य होगा—ब्रिटिश सत्ता को पदभ्रष्ट करना। मैं एक अस्वाभाविक प्रभुत्व का रक्तहीन अंत करके एक नवीन युग का आरम्भ करना चाहता हूँ। यह हमारा अन्तिम संग्राम है, और इस में दो महीने से अधिक समय न लगेगा। परन्तु लाखों मनुष्यों को एक साथ आगे बढ़ना होगा—और भारत दासता की जिन जंजीरों से बंधा है उसे तोड़ना होगा। हमारे संघर्ष में वे सभी कार्य सम्मिलित होंगे जिनसे वह शीघ्र एक दुर्दमनीय शक्ति का रूप धारण करले। संक्षेप में मैं कहूँगा—'करो या मरो।'

हम ब्रिटिश शासन का पूर्ण अन्त चाहते हैं-यह वह जहर है-जिसे छूते ही सब चीजें दूषित हो जाती है। यह भावना २२ वर्षों से मेरे मस्तिष्क में काम कर रही है। मैं अब ठहर नहीं सकता। हमारे खतरे स्पष्ट हैं—परन्तु हमें उनसे डर नहीं है। भले ही देश में अराजकता व्याप जाय। मैं कहूँगा राष्ट्र के पास में जो कुछ है वह उसकी बाजी लगाने से भी न चुके। यह मेरे जीवन का अन्तिम संघर्ष है। मैं अंग्रेजों से कहूँगा—कि वे समय रहते भारत छोड़ दें। और आप से कहूंगा-कि आज से अपने को स्वतन्त्र व्यक्ति समझें। और उसके लिये मर मिटने को तैयार हो जांय।'

उसी दिन गांधी जी सहित सब चोटी के नेता क़ैद कर लिए गऐ। ९ अगस्त के प्रभात ही से देश में विद्रोह फैलने लगा। आकार, विस्तार, त्याग-बलिदान, संगठन शक्ति-जनोत्साह-ध्येय-नीति-निपुणता सभी दृष्टियों से वह महान था। इसमें लगभग छै सात हज़ार आदमी मरे। एक लाख से अधि कजेल गऐ। एक करोड़ से भी अधिक रुपया जुर्माना हुआ। गांव के गांव वीरान हो गऐ। लगभग ४ करोड़ आदमियों ने खुले रूप में इस विद्रोह में भाग

लिया। यह खुला विद्रोह गोलियों की बौछारों के साए में खड़ा हुआ। एक हजार से ऊपर जगहों पर गोली चली। विद्यार्थियों ने लाखों की संख्या में इस आन्दोलन में योग दिया। देशी राज्यों तक इस विद्रोह की आग फैली। इस का सारी दुनिया में दबे पिसे व लुटे लोगों पर गहरा असर पड़ा। नई स्फूर्ति और आशा का सचार हुआ। भारत के इस अभूतपूर्व संग्राम का परिणाम—गर्वोन्नत जापान और जर्मनी के आत्मसमर्पण के परिणाम से कुछ भिन्न और विचित्र ही हुआ।

२६

डाक्टर परिवार के सभी बच्चे जाग्रत ज्वलंत स्वभाव के थे। हमने बताया है कि शिशिर कुमार कांग्रेसी था। यद्यपि उसका विद्यार्थी जीवन था। परन्तु इस आन्दोलन के नेता—बड़े नेताओं के जेल जाने पर विद्यार्थी ही रह गये थे। अब तक उसने कांग्रेस में कभी सक्रिय भाग नहीं लिया था। परन्तु अब वह दिल्ली के जाग्रत जनों का नेता था। नेहरू जब बम्बई गये थे तो दिल्ली में—उन्होंने एक भाषण दिया था—उसमें का एक वाक्य शिशिर के कलेजे को बेध गया था। नेहरू ने कहा था—'हम समुद्र में डुबकी लगाने जा रहे हैं इस पार या उस पार।' बस, इस पार या उस पार, इस वाक्य को शिशिर नहीं भूला। उसने हजारों लाखों बार इस वाक्य को दुहराया।

और जब उसने सुना कि गांधी और जवाहर दोनों ही, और उनके सैंकड़ों साथी जेल में बन्द हो गये तो उसने मन ही मन कहा—डुबकी तो लग गई। अब इस पार या उस पार।

इस पार या उस पार—उसने होठों में गुनगुनाया। कालेज की

पुस्तकें उठा कर नाक पर रख दीं। उसने दिलीप के पास जाकर कहा—'भैया, जा रहा हूं मैं. भारत माता की पुकार हुई है। अब इस पार या उस पार।' दिलीप शिशिर को प्यार करता था। और इस समय उसका हृदय प्यार की पीर से ओत प्रोत होकर अधिक कोमल हो रहा था। वह यद्यपि कांग्रेस से घृणा करता तथा गांधी जी को 'हिन्दु मुल्ला' कहता था। पर शिशिर के सामने कुछ नहीं कहता था। उसने कहा—'शिशिर, आग में न कूद। अभी डिग्री ले ले। कालिज का सब कैरियर तेरा बिगड़ जायगा।'

पर शिशिर ने सुना नहीं। नौ अगस्त को दिल्ली में मुकम्मिल हड़ताल थी। दोपहर के बाद पचास हजार का भारी जुलूस निकला। घण्टाघर से कोतवाली तक नर मुण्ड ही नरमुण्ड नजर आते थे। भीड़ में शिशिर ने भाषण दिया। यह उसका पहिला ही भाषण था पर वह भाषण न था अग्नि बाण थे जो किसी दैवी प्रेरणा से उस बालक के मुंह से निकल रहे थे। उसने कहा—

'भाइयो, जनता ने स्वतन्त्रता की ओर अपना विराट यात्रा के लिये क़दम उठा दिया है। अब तो हम में से प्रत्येक को कुछ करना है, बस करना या मरना। शासन सत्ता दमन पर उतारू है कठिन परीक्षा की घड़ी है, वह हमें दमन के द्वारा दबाने का यत्न कर रहे हैं। कायर हृदय कांप रहे हैं। लेकिन यह क्रान्ति युग का तक़ाज़ा है। वह टाली नहीं जा सकती। सत्याग्रह और असहयोग से क़ानूनों की अवस्था करके अब हम सर्वाङ्गीण क्रान्ति के द्वार पर पहुँच गये हैं। अब हम विदेशी सत्ता के किसी क़ानून के नहीं—सम्पूर्ण सत्ता का विरोध कर रहे हैं। हमारी मांग अब किसी विशेष विधान के लिये नहीं है, बल्कि यह है कि अंग्रेज़ यहां से चले जांय। इसलिये आज हमें शपथ लेनी होगी। इस बात की कि यह वर्ष हमारी दासता का अंतिम वर्ष है। परन्तु हमारा शत्रु अभी तक हमारे बीच में बसा हुआ है, और हमारे हृ

संकल्प को नानाशाही तरीक़े पर कुचलना चाहता है—उसने हमारे पूज्य नेताओं को क़ैद कर लिया है—पर अब हमें नेता की क्या जरूरत है—अपना काम हम जानते हैं—अब हम सब स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिक हैं। बस, हमें दिल्ली के सरकारी भवनों पर से तथा लाल किले से भ्रष्ट यूनियन जैक को उतार कर तिरंगा राष्ट्र ध्वज फहराना है। आओ आज हम सब अपने २ काम बांट लें···

तुम में जो किसान हैं—वे उन जमींदारों को लगान न दें जो अंग्रेजों को मालगुजारी देते हैं। गांवों में अपनी पंचायतें खड़ी करो, अदालतों का बहिष्कार करो। फसल या पशु मत बेचो। नोट काम में मत लो। अदल बदल से व्यापार करो। लुक छिप कर लड़ाई के लिए तैयार रहो।

तुम में जो मजदूर हैं—वे कारखानों—रेलों, खानों-और जहां वे काम कर रहे हों काम की गति धीमी कर दें। गुप्त रीति से कारखानों को हानि पहुँचाएं। मजदूरी—खाद्य और कपड़े के लिए, लड़ें-हड़ताल करें। लुक छिप कर लड़ाई के लिये तैयार रहें, तुम में जो विद्यार्थी हैं, वे स्कूल कालेज छोड़ दें लुक छिप कर लड़ाई के दल तैयार करें। जो व्यापारी है, बैंकों से रुपया निकाल लें। अंग्रेजों से व्यापार बन्द कर लें। जो सैनिक हैं। वे भारतीय राज्यतन्त्र की भक्ति की शपथ लें। देश के विरुद्ध हथियार न उठावें।

पुलिस वाले क्रांति के विरुद्ध कारवाई करने से इन्कार करदें।

प्रत्येक व्यक्ति अनधिकारी सत्ता को पुष्ट करने पर तुल जाय।

इन्किलाब जिन्दाबाद! करेंगे या मरेंगे!! अंग्रेजों, निकल जाओ!!!

सहस्त्रों कण्ठों ने गर्जना करके इन नारों का साथ दिया। परन्तु इस वज्र गर्जना में मिल गई बन्दूकों की गड़गड़ाहट। डिप्टी कमिश्नर ने पुलिस और सवारों का दल लेकर सभा को घेर लिया।

और गोली वर्षाना शुरु कर दिया। कुछ मर कर गिर गए। कुछ भाग चले, कुछ तड़पने लगे। कुछ हार कर बैठे, और कुछ ने फिर गर्जना की—इन्किलाब जिन्दाबाद! करेंगे या मरेंगे!! अंग्रेजों निकल जाओ !!!

और इसी समय धुएं की काली सी रेखा म्युनिसिपैलिटी की संगीन इमारत से उठती नजर आई। साथ ही दीप शिखा सी ला उठी—जो देखते ही देखते विकराल ज्वाला की लपटों में बदल गई। दिल्ली का म्युनिसिपल भवन धांय धांय जल रहा था। उधर भीड़ ने पुलिस लारी में आग लगादी थी। गोलियां बरस रही थी–पर तार के खम्बे पटापट गिरते जा रहे थे। दमकल आग बुझाने आई, मगर उसे भी जला कर सबने खाक कर दिया।

फतहपुरी पर गोरी फौज दनादन गोलियां चला रही थी। भीड़ गली कूंचों में घुस कर पीली कोठी पहुंची–जो हैदराबादी क्लीयरिंग हाउस था–वहीं एक थानेदार कुछ सिपाहियों के साथ भीड़ पर पिस्तौल से गोली वर्षा कर रहा था। भीड़ उस पर टूट पड़ी–पीली कोठी में आग लगादी गई और थानेदार को उसमें झोंक दिया गया। उधर पहाड़ गंज में गोरों के बैरक सुलगने लगे। एक ही दिन में अनेकों इमारतें जला कर छार कर डाली गईं।

२७

शिशिर गिरफ्तार हो गया।

डाक्टर अमृतराय के घर में विषाद का यह दूसरा चरण खुला। दिलीप का निषेध प्रथम चरण था। उस चरण ने इस सुखी परिवार के जीवन में चिन्ता और उदासीनता की छाया उत्पन्न कर दी थी। डाक्टर अमृतराय और अरुणा दोनों ही के

लिए यह चिन्ता थी। एक पोषित मुस्लिम बालक को अपना पुत्र घोषित करने पर किन सामाजिक बाधाओं का सामना करना पड़ता है—इस पर अभी तक विचार करने का उन्हें अवसर ही न मिला था। अब एकाएक जैसे पहाड़ के समान कोई बाधा उनके सरल जीवन में आ गई। दिलीप का ब्याह मैं किस धर्म निष्ठ हिन्दु लड़की से करूं? कहां उसके आदर्शों पर पली लड़की को पाऊं। पाऊं भी तो कैसे उसे और उसके परिवार को इस प्रवंचना में रक्खूं कि यह जन्मजात मुसलमान का बालक नहीं है—हमारा औरस पुत्र है। और यह बात प्रकट करने पर कौन निष्ठावान हिन्दु उससे अपनी कन्या का विवाह करना पसन्द करेगा। और यदि दिलीप का ब्याह न हुआ तो छोटे लड़कों की ब्याह शादी फिर कैसे होगी। क्या कहकर इस अपवाद का निराकरण किया जा सकता है कि बड़ा बेटा कुआरा रहते हुए छोटों का ब्याह हो सकता है। छोटों का ब्याह न होगा तो फिर क्या होगा। लड़की का क्या होगा। डाक्टर दम्पत्ति को गहरी चिन्ता और आकुलता ने व्याप्त कर लिया।

परन्तु अभी तक यही चिन्ता पुरानी न पड़ी थी कि शिशिर की गिरफ्तारी और जेल यात्रा ने उन्हें मर्मान्तक कष्ट दिया। शिशिर उनका सबसे छोटा बेटा था। सभी का प्यार उस पर था। उसका इस प्रकार जेल जाना इस परिवार पर वज्रपात सा हुआ। एक गहरे शोक की छाया घर भर में व्याप्त हो गई। अरुणा और करुणा ने रो रो कर घर भर दिया। डाक्टर समझाते बुझाते स्वयं भी रोने लगे।

सुशील कम्युनिस्ट था। उन दिनों अंग्रेजों से रूस मिल गया था। इसलिये कम्युनिस्ट अंग्रेजों के समर्थक बन गये थे। वे कांग्रेस के विरोध आवाजें उठा रहे थे। समानता और समाजवाद की बातें पीछे रह गई थीं। और कूटनीति ने उन्हें पथ भ्रष्ट कर

दिया था। देश में इस समय कम्युनिस्टों के प्रति गहरा रोष छाया हुआ था। हाल ही में यह अफ़वाह उड़ी थी कि सुभाषबोस के भारत से पलायन में कम्युनिस्टों ने सहायता की थी। परन्तु इसके बाद ही रूस युद्ध क्षेत्र में उतर आया था और एंग्लो अमेरिकन गुट में सम्मिलित हो गया था। इसलिये उन्होंने सुभाष के पलायन का सारा भेद ब्रिटिश सरकार को बता दिया था। इससे देश भर में कम्युनिस्टों के प्रति अवज्ञा और क्रोध की भावना फैल गई थी। यद्यपि कम्युनिस्ट चीख २ कर प्रचार कर रहे थे—और अपने को निर्दोष प्रमाणित करने की चेष्टा कर रहे थे। परन्तु इसी समय कम्युनिस्टों के पत्र 'पीपुल्सवार' में कम्युनिस्टों ने एक लेख छपा कर तत्कालीन यूनियानिस्ट सरकार की निन्दा की थी। जिससे जगह जगह कम्युनिस्टों का बहिष्कार हो रहा था। और उन्हें पीठ में छुरा भोंकने वाला दग़ाबाज़ कहा जा रहा है। इसी समय एक और बात का भी भण्डाफोड़ हुआ था कि कम्युनिस्टों ने जर्मन दूतावास से एक भारी रक़म चुपचाप वसूल कर ली है। ब्रिटिश सरकार भी इनका विश्वास नहीं कर रही थी। और इनकी दशा इस समय धोबी के कुत्ते की भांति हो रही थी। अंग्रेज़ जैसे बुद्धिमान जाति के लोग यह बात अनायास की समझ गए कि—जो अपने देश के साथ विश्वासघात करता है—वह हमारे साथ भी विश्वासघात करेगा। फिर भी कम्युनिस्ट इस समय—सैनिक सी० आई० डी० का काम कर रहे थे।

सुशील दिल्ली की कम्युनिस्ट पार्टी का जनरल सेक्रेटरी था। दिल्ली राजधानी थी अतः वह बहुत सी गहरी कार्यवाहियों में संलग्न था। वह बहुधा दो दो तीन तीन दिन तक घर से गैरहाज़िर रहता था। इसी समय एक और बात हो गई थी—दो अपरिचित और रहस्यमय पुरुष छिपकर समय समय पर उसके पास आने लगे थे। उनमें एक का नाम अच्छर सिंह था, दूसरे का हरनाम सिंह।

वास्तव में यही वे दोनों गूढ़ पुरुष थे—जिन्होंने सुभाष को भारत से पलायन में मदद दी थी। तथा काबुल में रूसी दूतावास में उन्हें ले गए थे। परन्तु अब इन्होंने दिल्ली केन्द्र की मार्फत सारे भेद खोल दिए थे। और अब वे सी० आई० डी० की भांति काम कर रहे थे।

सुशील यद्यपि बहुत सावधान आदमी था। यों वह देश का शत्रु न था। पर पार्टी की नीति से वह विवश था। और अब तो चालें बहुत गहरी हो गई थीं। शिशिर की गिरफ्तारी से वह भी काफी चंचल हुआ उधर सभी का यह संदेह था कि इस गिरफ्तारी में सुशील का हाथ है। डाक्टर और अरुणा देवी ने उससे बोल चाल और बातचीत भी बन्द कर दी थी।

दिलीप शिशिर को खास तौर पर प्यार करता था और उसकी गिरफ्तारी से उसे बहुत गुस्सा चढ़ आया था। उसका स्वभाव ही तीखा था। माता पिता का दुःख देखकर वह और भी अस्थिर हो गया। अंग्रेजी हुकूमत का तो वह विरोधी था ही। उसने संघ के तत्वाधान में एक विराट सभा का आयोजन किया और उस सभा में उसने जो भाषण दिया वह भाषण न था ज्वालामुखी का विस्फोट था। उसने कहा—

'भाइयो, गत चालीस साल से हम यह अनुभव कर रहे हैं कि अन्धकार में डूबी हुई जाति के भीतर एक नवीन जाति जन्म ले रही है। प्राचीन हिन्दू जाति धर्मग्लानि के कारण क्षुद्राशय हो गई थी। जिसे अनेक महात्माओं ने अपनी शक्ति और प्रतिभा को खर्च करके विपतकाल से उभारा। उन्हीं के अमोघ प्रभाव से आज नवीन जातीयता के बीज उगते दीख रहे हैं। कलियुग अन्धकार का जो युग था आज वह खत्म हो रहा है। देश का तरुण मण्डल अग्नि स्फुलिंग के समान पुराने झोंपड़े को ढहा कर नए महल का निर्माण कर रहा है। इस नवीन संतति ने जिस

काम का बीड़ा उठाया है–उसे वह बिना पूरा किए शान्त न होगी। हमारा राष्ट्र संघ वही अजेय संगठन है। हमारी इस नवीनता में भी प्राचीनता का प्रभाव है। मैं डंके की चोट कहता हूँ–कि भारत जब स्वतन्त्र होगा। उसकी यही विशेषता उसे संसार के राष्ट्रों का शिरोमणि बनायेगी।'

सभा में मर्मर ध्वनि उठी। दिलीप ने कुछ रुक कर कहा—

'हां यह सब तुमने किया है। पर किस उद्देश्य से? कि तुम उसके बदले में गहरा हाथ मारो। तुम हमें धर्म स्वातन्त्र्य देने की बात कहते हो पर अपने धर्म पर तुम्हें खुद कुछ आस्था नहीं है न तुम्हारे भाव धर्म को छू गये हैं। तुम धर्म को एक व्यर्थ ढोंग समझकर तुच्छ जानते हो। भारत के विशाल मैदान में धर्म के झगड़ों में पड़ने से तुम डरते भी थे। इन झगड़ों के कठिन परिणामों से तुम सावधान थे। इसी से धर्म में आड़ न लगाई। मगर तुमने ब्रह्म धर्म को उत्तेजन दिया। किस लिए तुमने मिशनरियों को अपना सगा समझा था? तुम्हारे राज्य में हिन्दु लड़कों को और लड़कियों को क्यों बाईबिल ज़बरदस्ती पढ़ाई जाती है? इन सब चालों को हम समझते हैं? फिर दार्शनिक हिन्दुओं और कट्टर मुसलमानों को धर्म सिखाना टेढी खीर थी। तुम्हें बैर भड़क उठने का भय था। तुमने, छार, मैसूर और ग्वालियर स्वतंत्र किये इस लिए कि इन टुकड़ों को डालकर दूसरों का भूसना बन्द करें।'

सारी सभा उन्मत्त हो उठी। लोग हाथ उठा २ कर कहने लगे। चले जाओ अंग्रेजों हिन्दुस्तान को छोड़ दो। तुम खूनी हो–डाकू हो। दिलीप ने शान्त होकर कहा।

'और आज? समय का चक्र घूम गया है। योरोप की लाश सिसक रही है। ढह गया तुम्हारा साम्राज्य। अंग्रेजों, अपनी खैर मनाओ और यहां से चले जाओ।' अभी दिलीप के मुंह से ये

शब्द निकले ही थे कि धड़ाम-धड़ाम चारों ओर त्राहिमाम मच गया। सैंकड़ों आदमी घायल होकर तड़पने लगे। खून के फव्वारे चलने लगे। सभा भवन में भगदड़, हाहाकार मच गया। सारा ही सभा स्थल पुलिस और सेना ने घेर लिया था। जो मर गए थे-वे औंधे मुंह पड़े थे। जो जिन्दा थे वे सिसक रहे थे। जो घायल होने से बचे थे उन्हें पुलिस के यमदूत पकड़ रहे थे-पकड़े हुए लोगों का अग्रदूत बन कर दिलीप पुलिस की लारी में जा बैठा।

२८

जेल में शिशिर को पाकर दिलीप को प्रसन्नता हुई। उन दिनों जेलें अन्धाधुन्ध भरी हुई थीं। छोटे बड़े चारों ओर से नेता जेल में ठूंसे चले जा रहे थे। दमन और अत्याचारों के दौर से जेलें भी मुक्त न थी। परन्तु ऐसा प्रतीत होता था की जैसे देश का तारुण्य जाग उठा है। उन वेदनाओं और कष्टों की किसी को चिन्ता ही न थी।

दिलीप ने आते ही जेल में रार ठान ली। उसने कहा—'मैं निष्ठावान हिन्दु हूँ। मुझे नित्य कर्म, पूजा करने की सुविधा दी जानी चाहिये। मेरा भोजन भी स्वतन्त्र होना चाहिऐ। मैं जिस तिस के हाथ का छुआ भोजन न करूंगा। जिन बातों से मेरी धार्मिक भावना को ठेस पहुँचेगी। उनके विरुद्ध मैं आमरण अनशन करूंगा।

परन्तु दिलीप की ये सभी मागें अव्यवहार्य थीं। जेल के प्रबन्धक उन्हें कैसे मान सकते थे? फिर दिलीप एक सी० श्रेणी का कैदी था। कोई गण्यमान्य लीडर भी न था। यद्यपि उसका वह पहिला तीखा भाषण इतना जबर्दस्त हुआ था कि उसी से उसकी

धाक बंध गई थी। परिणाम यह हुआ कि जेल में आने के दूसरे ही दिन उसने भूख हड़ताल शुरु करदी उसकी सहानुभूति में शिशिर ने भी हड़ताल की। साथ ही और कुछ कांग्रेसी कुछ संघी कैदियों ने भी। शीघ्र ही जेल के वातावरण में इस हड़ताल ने एक नई उत्तेजना की लहर उत्पन्न कर दी। कैदी झूम झूम कर भूख हड़ताली जिन्दाबाद के नारे लगाने लगे। एकाध छोटा मोटा दंगा भी हो गया जेल के नियमों में कड़ाई बरती गई—पर भूख-हड़तालियों की संख्या बढ़ती ही गई और बढ़ते २ अब कुल १०० तरुण प्राणदान देने अड़कर बैठ गये।

ज्यों २ दिन बीतने लगे—जेल अधिकारियों की चिन्ताएं बढ़ने लगीं। इसी समय आगाखां महल में बन्दी महादेव देसाई की की अकस्मात् मृत्यु की खबर हवा में तैरती आ गई। जेल की दीवारों को भी उसने लांघ लिया। इससे वातावरण बहुत क्षुब्ध हो गया। इन तरुणों की समझाने बुझाने के लिए नेताओं का प्रयोग भी किया गया—पर परिणाम कुछ न निकला। दिलीप ने कहा—मेरा धार्मिक विश्वास मैं प्राण रहते छोड़ूंगा नहीं। इससे मैं सन्ध्या वन्दन नित्य कर्म करके अपने हाथ से बना भोजन ही खाऊंगा। नहीं तो प्राण दूंगा।

विवश अधिकारियों को झुकना पड़ा। उसे कुछ सुविधाएं दे दी गई। परन्तु इसके बाद ही इन उपद्रवी तरुणों को भिन्न भिन्न जेलों में बखेर दिया गया। दिलीप को मुलतान भेज दिया गया, परन्तु शिशिर को दिल्ली ही में रक्खा। दोनों भाई आंसू बहाते अलग हुये।

शिशिर आदर्श कांग्रेसी थी। अतः उसने जेल में फिर कोई उपद्रव नहीं किया। यद्यपि उसे वहां कुछ कामधाम न करना पड़ता था परन्तु वह उदास और अनमना रहता था। जेल जीवन उसे पसंद न था—वह रह २ कर राजविद्रोही बातों को सोचता रहता।

पढ़ने लिखने को भी उसे यहां कुछ सुविधायें मिली थी—इससे उसके ज्ञान की वृद्धि तो यहां खूब हुई। पर उसका वज़न बहुत घट गया। उसका स्वास्थ्य भी गिर गया।

जब करुणा के साथ डाक्टर और अरुणादेवी उससे मिल आए तो बात चीत की अपेक्षा चारों आदमियो ने मौन रुदन ही अधिक किया।

परन्तु दिलीप एक जलता हुआ आग का अंगारा था। जहां जाता था आग लगा देता था। हल्की कार्रवाही उसे पसंद न थी। मुल्तान जेल में जाने पर रात के गम्भीर वातावरण में उसने सुना जैसे सुदूर अन्तरिक्ष में कोई देव गन्धर्व किन्नर सस्वर वीणा मृदंग मुरज बजा कर गान कर रहे हैं। इस कुत्सित जेल के वातावरण में उसे यह संगीत ध्वनि विचित्र सी लगी। कौन यहां गाता है। क्या अंतरिक्ष के देवता हम पीड़ितों को आनन्द संदेश देते हैं? वह श्रृद्धालु तो था ही—ऐसे ही विचार उसके उत्पन्न हुऐ। पर अधिक देर न लगी। उसे शीघ्र ही एकान्त यातना भोगने की आज्ञा मिल गई और वह हथकड़ियों और डंडा बेड़ियो से जकड़ कर एक अंधकूप में ला डाला गया।

यह एक विशाल तहखाना था। इसमें सूर्य का प्रकाश भी न जा पाता था। रात दिन घोर अंधकार रहता था। प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त होने को आधे घण्टे के लिये जब क़ैदी निकाले जाते—तब उन्हें—सूर्य के प्रकाश और खुली वायु की प्राप्ति होती थी। इसके बाद डंडा बेड़ी और हथकड़ियों से लदे फदे उन्हें उसी अंधकूप में पड़ा रहना पड़ता था। भोजन भी उन्हें वहीं मिल जाता था। इस अंधकूप में जाकर उसने देखा कुल बाईस कैदी हैं, जिनमें दो को छोड़ कर सभी तरुण थे। उन दोनों में एक किसी यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर थे। दूसरे पंजाब के प्रसिद्ध डाक्टर थे। रात को यक्ष-गन्धर्व, किन्नर जो अन्तरिक्ष गान करते थे—उसका भी भेद खुल

गया—वह नाद ध्वनि यहीं—इसी तहखाने से उठती थी। वीणा मुरज मृदङ्ग के स्थान पर अपनी हथकड़ी बेड़ियां बजाते थे।

वे सबके सब एक प्राण थे। सभी राजनैतिक बन्दी थे। तोड़-फोड़ के, लूट और हत्या के, अग्निदाह के गम्भीर आरोप उनपर थे। परन्तु जैसे वे दुनिया भर के बेफिकरे थे। चिन्ता और शौक उनसे कोसों दूर थे। वे हंसते—मजाक करते—कह कहे उड़ाते—कविता करते—तान अलाप उड़ाते और किसी भी बाधा को न मान-शाही तरीके से रहते थे। दोनों बुजुर्गों को वे अपना मुरब्बी मान रहे थे। हंसना तो उनके साथ उन्हें भी पड़ता था, परन्तु वे ज़रा गम्भीर थे। पर इन तरुणों के प्रति उनके प्रेम की थाह न थी। दिलीप के पहुँचते ही—प्रत्येक ने उसे छाती से लगाया, पेशानी चूमी और कहा—आज हमारा और एक भाई पैदा हुआ इसकी खुशी में अभी एक जल्सा होना चाहिए। और जल्से का जब रंग जमा तो उस मस्ती बेफ़िकरी और आनन्द की लहर में दिलीप विभोर हो गया। उसकी आंखो से आंसू निकल आए, और जब उनका भोजन आया। तब जिस भोजन के प्रश्न को उसने अपनी धर्म निष्ठा समझा था, डण्डा बेड़ी, सहीं—यातनाएं भोगी, भूख हड़ताल की। उसे यहां स्थिर न रख सका। उसने स्नेह गद्‌गद् कण्ठ से कहा - भाइयों, मैं एक निष्ठावान् हिन्दु हूं। और अपने विश्वास के अनुसार छुआछूत का ध्यान रखता हूँ—ये मेरे जन्मजात संस्कार हैं-इनके लिए दिल्ली जेल में मैंने प्राणों की बाजी लगा दी थी। यहां भी आते ही इसी बात पर अड़ गया था—परन्तु अब मैं आपसे अलग नहीं हो सकता हूँ—मेरी अब अलग बिरादरी-जात-पात नहीं कायम रह सकती। अब तो मैं आपके साथ हूँ। आप का छोटा भाई हू।

सब लोग हुर्रा हुर्रा कह कर चिल्ला उठे। और एक बार बेड़ियों के डंडों पर हथकड़ियों की नपी तुली चोटें पड़ने लगीं।

क़ैदियों में एक तरुण का नाम था—प्रकाशचन्द्र। लम्बा–दुबला पतला–निरीह सा आदमी–स्त्रियों जैसी भीरू आंखें—सुन्दर लाल ओठ–और मृदु कोमल ठोढ़ी–कण्ठस्वर में वह माधुरी और लोच था कि वाह। उसने अलाप लिया 'आज मेरे अंगना में खेलत लाल। रुन झुन, रुन झुन.....' दिलीप की आंखों मे आंसू बरस उठे झर झर, झर झर। बेड़ियों पर सचोट ताल बैठ रही थी। प्यार और मस्ती झूम रही थी। दिलीप विभोर हो बैठा रहा देर तक अपने हीं आंसुओं के मेह में भीगा–सराबोर।

और इस प्रकार यह दारुण यातना की घड़ियां उन तरुणों के साथ कोमलतम रूप धारण करके बीतती चली जा रही थीं। परन्तु दिलीप का एक वैशिष्ठ्य तो था ही वह छिपा न रहा। दो ही दिन में वह उस मस्त तरुण मण्डली का नेता बन गया। धीरे २ उसने उनके मन में हिन्दु–हिन्दी–हिन्दुस्तान की आग सुलगा दी। सभी तरुण देश भक्त थे। कुछ कांग्रेसी अवश्य थे। पर अधिक संघी ही थे। वे सभी एक स्वर से दिलीप को अपना नेता बना बैठे। अब नित्य प्रति उनकी मीटिंग होती। उसमें भिन्न २ राजनीतिक और धार्मिक मसलों का विवेचन होता। दिलीप की प्रतिभा ने इस समय मानवता का सम्पुट लगा कर एक नवीनतम भव्य रूप धारण कर लिया था। वह उस मण्डली का एक मात्र प्रवक्ता था।

प्रोफेसर का नाम था सियाराम शरण। वे गुरुदासपुर मे दर्शनशास्त्र के प्राधानाध्यापक थे। इंगलैण्ड और जर्मनी का डाक्टरेट प्राप्त थे। विश्वदर्शी और बहु पण्डित थे। गम्भीर मनस्वी और शान्त थे। दंगई विद्यार्थियों को छिपाने और प्रश्रय देने का उनपर आरोप था। बच्चों के समान सरल आदमी थे। वे एक प्रकार से मौन ही रहते थे। तरुण मण्डली के सारे उपद्रव निरीहभाव से सहते। जब वे सब हंसते तो साथ देने को यह

भी मुस्कुरा उठते थे। बहुधा वे घन्टों चुपचाप समाधिस्थ से बैठे रहते। यों वे सभी के श्रद्धाभाजन थे। डाक्टर इसके विपरीत बड़े वाचाल थे। अमृतसर में हौम्योपैथी प्रेक्टिस करते थे। एफ० ए० फेल थे। पर बड़े भारी विद्वान और भारी डाक्टर का ढोंग रचते थे—तरुण मण्डली उन्हें बनाती भी खूब थी। पर वे बन कर भी न बनते थे। लतीफे सुनाने—तथा बामुहावरे गप्प लड़ाने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। इससे सभी लोग उनसे प्रसन्न रहते थे। 'बरखुरदार' उनका तकिया कलाम था। बात बात में वे कहा करते, 'बरखुदार, ये बाल मैंने धूप में सुखा कर सफेद नहीं किये। बहुत कुछ खोकर कुछ पाया है। मेरी नेक नसीहत सुनो।' आदि आदि। ये दोनों भद्र पुरुष हठी और आत्माभिमानी होने के कारण जेल नियमों की अवज्ञा करके इस अन्धकूप में इन तरुणों के साथी आ बने थे। जो हो, सब की मजे में गुजर रही थी, और जब उस दल का नेता दिलीप बना तो—इन दोनों निरीह भद्र पुरुषों ने भी चुपचाप उसे स्वीकार कर लिया। प्रोफेसर तो मुस्कुराकर ही चुप रह गये-पर डाक्टर ने कहा—'बरखुरदार, हो तो तुम बहुत होशियार, बात भी पते की कहते हो—पर तजुर्बा कम है। हमारी तरह जब तुम्हारी डाढ़ी सफेद होने लगेगी तब कुछ समझोगे।'

दिलीप जवाब न देता। पर यार लोग खिलखिला कर हंस देते। प्रकाश तभी एक तान छेड़ देता। और वह मनहूस वायु-मण्डल मुखरित हो उठता।

२६

शिशिर का जेल जीवन बिल्कुल एक दूसरे ही ढंग का था। दिल्ली जेल में कुछ विशेष बातें थीं। विशेषों में विशेष यह–कि वहां एक आजन्म क़ैदी थे–महन्त जी। पंजाब में वे किसी भारी गुरुद्वारे के महन्त थे। जिस गांव में गुरुद्वारा था–वहां हुआ एक भारी हिन्दु मुस्लिम विद्रोह–उसी में महन्त जी पर सात आदमियों के कत्ल का केस चला था। फांसी से वे बच गये थे–पर सारी जायदाद जो लाखों की थी–जब्त हो गई। और आजन्म कैद की सजा काट रहे थे। परन्तु कहने ही को वे कैदी थे। जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट से लेकर साधारण कैदी तक उनका आदर करते थे। जेल के बाहर भीतर आने का भी उन पर प्रतिबन्ध न था। एक प्रकार से जेल के वे सहायक प्रबन्धकर्ता थे। बाज़ार आना, सौदा सुलफ खरीदना, जेल की बनी वस्तुएं बाज़ार में बेचना सभी काम महन्त जी करते थे।

जेल के कैदियों के वे आधार भूत पुरुष थे। कहना चाहिये–वह कैदियों के कल्प वृक्ष थे। कैदियों को अधिक से अधिक आराम पहुंचाना उनका धन्धा था। उन्हें एक स्वतन्त्र कोठरी रहने को दी हुई थी। वह कोठरी सर्वसिद्धि की दाता थी। महन्त जी ने कोठरी में एक गुप्त गढ़ा खोद रखा था—उस गढ़े में एक बड़ा सा बक्स जमीदोज़ रखा था। यह बात नहीं कि उस बक्स का जेल अधिकारियों को पता ही न हो। जानते सब कोई सब कुछ थे– परन्तु न जानने का ही ढोंग रचते थे। उस बक्स में सब कुछ समाया था। जो कैदी जिस वस्तु की इच्छा करता, वही उसे उस खजाने से प्राप्त होती थी। अफीम और चण्डू से लेकर– तेल फुलेल बीड़ी सिगरेट तक सभी वस्तु महन्त जी प्रसन्न होने पर कैदियों को देते रहते थे। इसी से कैदी जेल में महन्त जी को

अपना परमहित कर्ता और सहायक मानते थे। गलती और अपराध करने पर भी कैदी महन्त जी की शरण जाकर दण्ड से बच रहते थे। त्यौहार पर्व पर मिठाइयां पकवान्न सभी तो कैदियों को उनकी बदौलत मिल जाते थे।

महन्त जी का व्यक्तित्व भी प्रभावशाली था। सफेद उज्ज्वल नाभि तक लटकती दाढ़ी, भरा हुआ शरीर, खूब लम्बा चौड़ा क़द, बड़ी २ जटाऐं, भगवा वस्त्र। आंखों में निर्भयता और प्रेम-होंठों पर हंसी। वाणी में व्यंग और कण्ठ में माधुर्य। संगीत के उस्ताद। मार्मिक कवि। सैंकड़ों कथाओं के जानकार। ऐसे ही महन्त गिरिराजपुरी थे। उनके मुंह से मीठी गालियां खा कर जेलर और कैदी दोनों ही हंस पड़ते थे। महन्त जी जिसे गालियां दे देते-उसका काम सिद्ध हुआ माना जाता था।

इस ४२ के भभ्भड़ में शिशिर जैसे न जाने कितने दुधमुहे बालक जेल में आ गए थे। उन सब पर महन्त जी की दृष्टि और संरक्षण था। ये सब कच्ची बुद्धि के लड़के ज़रा २ सी बात पर जेल के नियम भंग करके कड़ी सजाएं पाते थे-पर महन्त इनकी रक्षा करने वाली ढाल बन जाते थे।

शिशिर के जेल में पहुंचते ही महन्त जी की नज़र उस पर पड़ गई। शिशिर अनुभव हीन-बालक था। जाते ही उसने जोश में आकर कुछ ऐसी गड़बड़ की कि उसे बैंतों की सज़ा दे दी गई। पर ज्यों ही महन्त को मालूम हुआ वह उसे उठाकर अपनी कोठरी में ले गए। और बेतों की सज़ा से उसे बचा लिया।

दिल्ली जेल में इस समय बहुत भीड़भाड़ हो गई थी। यह सब भीड़ कुछ ऐसी बेकही, बेतुकी थी-कि जेल के अधिकारी भी उस पर ज्यादती करते घबराते थे। फिर बाहर चारों ओर से भयंकर समाचार आ रहे थे। तोड़ फोड़ और दमन दोनों ही धूमधाम से चलते जा रहे थे।

एक दिन डाक्टर और अरुणा जेल में शिशिर से मुलाकात के लिए आईं। शिशिर ने एक चिट्ठी माता अरुणा देवी को देने की चेष्टा की–परन्तु वह जेल अधिकारी ने छीन ली। दोनों में काफी हाथापाही और लिपटा लिपटी हुई। मुलाकात तुरन्त बन्द कर दी गई, और शिशिर को जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट के सामने पेश किया गया। सुपरिन्टेन्डेन्ट ने कहा—'क्या कारण है कि तुम्हारी सब सुविधाऐं न छीन ली जाय, और तुम्हें काल कोठरी की सज़ा न दी जाय।'

'मैंने तो आप से सुविधाओं के देने तथा काल कोठरी में न भेजने का अनुरोध नहीं किया।'

'लेकिन तुम जेल के नियमों को क्यों तोड़ते हो।'

'वह तो मेरा पेशा ही है। मैं जो चाहूँगा वह करूंगा–और आप जो चाहे वह कीजिए।'

परन्तु इसी समय महन्त जी वहां आ उपस्थित हुए। उन्होंने सुपरिन्टेन्डेन्ट को कुछ झिड़कते हुए कहा—'साहब, आप भी क्या दुधमुहे बच्चो के मुंह लगते हैं। चार दिन की हवा है–खत्म हो जायगी। नाहक आप जेल में झगड़े खड़े करने के कारण पैदा कर रहे हैं। जाइए मैं जिम्मा लेता हूं, यह लड़का अब कोई काम जेल के नियम विरुद्ध न करेगा।'

और वह शिशिर का हाथ पकड़ कर खींचते हुए ले गए। ऐसा ही प्रभाव महन्त जी का दिल्ली जेल में था।

३०

यद्यपि देश के चोटी के नेता इस समय जेलों में बन्द थे। फिर भी देश में जो इतनी बड़ी क्रांति हो गई इसका एक मूल कारण था।

इस समय दो व्यक्तियों का प्रभाव देश पर था। एक जवाहरलाल नेहरू–दूसरे सुभाष चन्द्र बोस। जवाहरलाल जेल में थे–और सुभाष देश से बाहर। परन्तु दोनों ही के कार्य कलाप हवा में तैरते हुए आते और लाखों करोड़ों तरुणों को एक मूक संदेश दे जाते थे। ये दोनों ही नेता जैसे देश की तरुण मण्डली की भावना में अशरीरी होकर व्याप्त हो गए थे।

सुभाष बाबू उग्रतम दल के एकनिष्ठ नेता थे। इस सम्बन्ध में दूसरी बात नहीं कही जा सकती थी। जवाहरलाल भी देश विदेश में उग्रवादी कहे जाते थे। स्पष्ट ही वह साम्राज्य विरोधी तो थे ही। समाजवादी विचारधारा भी उनके हृदय में प्रवाहित हो रही थी। कहना चाहिए कि जवाहरलाल गांधी जी के अहिंसा सिद्धान्त को नीति के रूप में मानते थे। सिद्धान्त के रूप में नहीं। उनमें उत्साह था, जोश था, तेज़ था, और क्रियाशीलता थी। देश के युवकों पर उनका प्रभाव था। जब वे बोलने खड़े होते थे, तो ऐसा प्रतीत होता था–मानो एक सेनापति अपने सैनिकों को उनके कर्तव्य पालन की शिक्षा दे रहा है।

पर सुभाष की बातें लच्छेदार नहीं होती थीं। वे तो सीधी चोट करते थे। आदर्श उनका भी समाजवादी था। क्रियाशील भी वे नेहरू से किसी हालत में कम न थे। परन्तु उनका अपना व्यक्तित्व था–और उनकी अपनी आकर्षण शक्ति बड़ी विचित्र थी।

फिर भी इन दोनों नेताओं में एक गहरा अन्तर था। देश के प्रति और अपनी सेवा के प्रति किसी सेनापति का कर्तव्य होना है कि वह व्यक्तियों के प्रभाव से परे रहे। परन्तु जवाहरलाल कांग्रेस के अनुशासन और गांधी जी के नेतृत्व के आगे सदैव सिर झुकाते रहे। यहां तक कि कभी २ उन्होंने अनुशासन के नाम पर अपने सिद्धान्तों तक की बलि देदी। सन ३६ में जब लखनऊ में कांग्रेस के वे अध्यक्ष थे–तब अध्यक्ष पद से कांग्रेस के द्वारा पद ग्रहण

करने का उन्होंने अध्यक्ष की कुर्सी से तीव्र विरोध किया। साथ ही किसानों के पृथक संघटनों पर ज़ोर ही नहीं दिया—बल्कि यहां तक कहा था कि श्रेणी संस्थाओं को कांग्रेस में सामूहिक प्रतिनिधित्व देना चाहिए। वे उन दिनों अपने भाषणों में समाजवादी सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। और मन्त्री मण्डल बनाने के विचारों का मज़ाक उड़ाया करते थे। परन्तु जब सन् ३७ में मन्त्री मण्डल बना तो वे मन्त्री मण्डलों के कट्टर समर्थक हो गए।

लाल झण्डे के सम्बन्ध में भी नेहरू के विचार महत्वपूर्ण थे। उन दिनों किसान सभाओं में लाल झण्डा फहराया जाता था। कुछ कांग्रेसी जो किसान सभाओं के विरोधी थे, लाल झण्डे के प्रयोग का विरोध करते थे। उन्होंने जब जवाहरलाल से यह बात कही—तो उन्होंने गरजते हुए कहा—लाल झण्डा किसानों का है—वह आयेगा—और ज़रूर आयेगा। परन्तु उसी साल जब अयोध्या में प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन हुआ—तो वे लाल झण्डे के बड़े विरोधी बन गये। किसान सभाओं का भी विरोध करने लग गये। जो जवाहरलाल कभी—कांग्रेस के भीतर उग्र विचार वालों की एकता के कट्टर समर्थक थे। उन्होंने अपनी आत्म कहानी में उग्र विचार वालों की निन्दा की।

इसी प्रकार सुभाषचन्द्रबोस ने सन् १९३९ में जब देश के वाम पक्षीय दलों के प्रतिनिधियों की उग्र एकता समिति बनाई तो उसे जवाहरलाल ने पसन्द नहीं किया।

सुभाष बाबू का दृष्टिकोण दूसरा था। वे इन प्रश्नों पर सिद्धान्त की दृष्टि से विचार करते थे। उनका कहना था कि व्यवहार के सम्बन्ध में किसी से समझौता किया जा सकता है, पर सिद्धान्तों की बलि नहीं दी जा सकती। उनका ख्याल था कि—अनुशासन और एकता की रक्षा तभी हो सकती है जब लोगों की सिद्धान्त—नीति और कार्य प्रणाली एक हो। विभिन्न विचारों के

मानने वालों में नीति और सिद्धांतों सम्बन्धी संघर्ष होगा ही। और जिसके सिद्धांत और नीति समयानुकूल होगी—उसी की विजय होगी। वे अपने सिद्धांतों पर दृढ़ थे। परन्तु वे कांग्रेस में अनेक्य और अनुशासनहीनता उत्पन्न करना नहीं चाहते थे। वे यह भी समझते थे कि कांग्रेस के सभी जन साम्राज्य विरोधी हैं—इसलिये उनमें कार्य और नीति सम्बन्धी एकता की बड़ी आवश्यकता है। पर वे समझते थे कि कांग्रेस की नीति और कार्यपद्धति समयानुकूल नहीं है —उसमें परिवर्तन होना चाहिये। वे देश की स्वतन्त्रता के प्रश्न पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद से कोई भी समझौता करने के कट्टर विरोधी थे। जवाहरलाल भी यह जानते तथा मानते थे, पर वह अनुशासन के नाम पर पुराने दृष्टिकोण के स्थान पर नये दृष्टिकोण को स्थापित करके संघर्ष पैदा करना नहीं चाहते थे। वह अनुकूल समय की ताक में थे।

भारत के नरुणों के इन दोनों प्रतिनिधियों में और कुछ विचार भिन्नतायें थीं। परन्तु युद्ध की समाप्ति पर तो वह अंतर और साफ़ हो गया। जवाहरलाल युद्ध को लोक-तंत्रवादियों और फासिस्टों के बीच का युद्ध समझते थे। इसी से तथा कथित लोक-तंत्र समर्थक ब्रिटेन और अमेरिका को किसी प्रकार का आन्दोलन करके परेशान करना नहीं चाहते थे। इसी से, जब प्रयाग में हुई कांग्रेस कार्य समिति में गांधी जी ने 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव रखा तो जवाहरलाल ने उसका विरोध करते हुए कहा—इससे अमेरिका और अंग्रेज़ हमारे विषय मे क्या सोचेंगे। और बम्बई में 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पास होने के कुछ प्रथम ही उन्होंने पत्र सम्वाद-दाताओं से सुभाष की चर्चा चलने पर कहा—कि हम अपने देश की स्वतंत्रता के लिए ऐसे किसी भी देश की सहायता का स्वागत करेंगे—जो हमारी स्वतंत्रता के अधिकार को स्वीकार करे। परन्तु हम अपने शत्रु की दुर्बलता से लाभ नहीं उठाना चाहते। और न

उसे संकट काल में परेशान ही करना चाहते हैं। जहां तक सुभाष बाबू का सम्बन्ध है—उनसे हमारा मतभेद रहा है—और अब तो हमने एक दूसरे के विपरीत मार्ग ग्रहण कर लिया है। मेरा विश्वास है कि सुभाष धुरी राष्ट्रों से मिल गये हैं, और यदि उन्होंने भारत पर जापानी सोना लेकर आक्रमण किया तो मैं तलवार लेकर उनका मुक़ाबिला करूंगा।

सुभाष बाबू का ख्याल था कि ब्रिटेन युद्ध संकट में फंसा है। यही अवसर है जब उस पर जबर्दस्त हमला करके उसे धूल में मिलाया जा सकता है। साम्राज्यवाद के हृदय परिवर्तन में उन्हें तनिक भी विश्वास न था। वे तो इस नीति पर चल रहे थे कि शत्रु का शत्रु मित्र और शत्रु का मित्र शत्रु।

यही विचार थे, कि जिनके कारण उन्होंने युद्ध शुरु होते ही इस बात पर जोर दिया था कि अब देश अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा करदे। वे गांधी जी की—ठहरो और प्रतीक्षा करो, की नीति पसंद नहीं करते थे। वे समझते थे कि यदि हम इस अवसर को हाथ से निकल जाने देंगे, तो युद्ध के बाद साम्राज्यवाद हमारी गुलामी की जंजीरों की और भी जोर से जकड़ देगा।

इसी से उन्होंने गांधी जी को एक पत्र भी लिखा था—

'हम लोग यहां हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिये—हिन्दुस्तान की जमीन पर लड़ रहें हैं। हम मौत को पीछे धकेल कर आगे बढ़ रहे हैं। हमारा यह संग्राम तब तक चलता रहेगा—जब तक कि आख़िरी अंग्रेज़ स्वेज के पार नहीं धकेल दिया जाता।

और वह दिन भी आया जब गांधी जी ने भारत छोड़ो का अग्निबाण छोड़ा। और जैसे किसी जादूगर के जादू से विमोहित हो अंग्रेज—भारत को छोड़ चले।

दिलीप और शिशिर जब छूट कर घर आए, तो दोनों में गंभीर परिवर्तन हो गए थे। शिशिर अधिक गंभीर और दिलीप अधिक

उग्र हो गया था। उसके भीतर और बाहर जैसे आग जल रही थी—वह बहुत कम घर में रहता—बहुत कम किसी से बोलता था। केवल करुणा उसका यत्न रखती थी।

दिलीप और शिशिर घर आए तो—पर घर में से विषाद का वातावरण दूर नहीं हुआ। ऐसा प्रतीत होता था जैसे घर का प्रत्येक पुरुष चिन्ता के भार से दबा हुआ है, दिलीप जितना ही संयत होना चाहता—उतना ही वह असंयत होता जाता। जितना ही वह अपने को माया से विमुख करना चाहता, उतना ही माया के प्रति उसका खिंचाव बढ़ता जाता। वह प्रत्येक क्षण—अब केवल माया को भूलने के लिए राजनैतिक और साम्प्रदायिक दलबन्दियों के ताने बाने बुनता—पर प्रत्येक क्षण जैसे उसकी विचार धारा कुण्ठित होकर उसके सम्पूर्ण चैतन्य को माया की ओर ले दौड़ती। जेल जीवन में वह कुछ उदार हुआ था और माया के प्रति निर्मम व्यवहार अब उसे और भी खल रहा था—फिर भी वह मन ही मन घुटा जा रहा था—वह किसी से मन की व्यथा कह न पाता था। मां से वह कभी २ कहना चाहता था—परन्तु कह नहीं सकता था। सुशील सबका संदेह और अश्रद्धा का भाजन बना—अपने आत्म सम्मान की रक्षा के लिए अब खीजा रहता। घर के सभी लोगों से वह कटु भाव रखता। घर के लोग भी कुछ उससे डरते, कुछ विरक्ति प्रकट करते। शिशिर अधिक गम्भीर हो गया। जेल जीवन ने उसके मन में आत्मश्लाघा के भाव भर दिए—और वह देश और राष्ट्र के लिये बड़े बड़े काम करने की योजना बनाने लगा। स्थानीय कांग्रेस कमेटी में भी उसका प्रवेश हो गया। पढ़ना लिखना छोड़ दिया। करुणा एम० ए० फाइनल कर चुकी थी। घर में अब उसे कोई साथी ढूंढे न मिलता था। वह सूनी २ सी रहती। माता को उदास देख कर वह चाहती, मां को खुश रक्खे—पर कोई उपाय सूझ न पड़ता था। उसने संगीत में मन लगाना चाहा।

शिशिर को उसने अपना साथी बनाना चाहा—पर यह भी न हुआ। जब तब वह सितार को छेड़ती। या कभी कोई सखी-सहेली कालेज की आ जाती तो उसका मन बहल जाता। करुणा-देवी को अब अपने बच्चों की ब्याह शादी की चिंता सता रही थी। दिलीप की बाधा अब पहाड़ हो कर उसके सामने अड़ गई थी। कैसे वह इस बाधा को पार करे, यह नहीं तय कर पाती थी। पति से भी अब उसकी बातचीत का यही मुख्य विषय था। जीवन-दाम्पत्य-गृहस्थी-सब से ऊपर यह बोझ उन्हें मारे डाल रहा था। डाक्टर पर भी यह चिंता भार था—उसके अतिरिक्त वह यह भी सोचते थे—कि लड़के पढ़ लिख कर कुछ काम धन्धा नहीं करते। उनका जीवन अव्यवस्थित हो रहा है। केवल इसी लिए नहीं, कि इसमें जीविका का प्रश्न था। डाक्टर को रुपए पैसे की कभी न थी—मुख्य प्रश्न उसके सामने यह था कि कहीं लोग इन लड़कों को आवारागर्द न समझ लें। उनकी पारिवारिक साख न डूब जाय। डाक्टर की इस चिन्ता पर जब दिलीप के जन्म रहस्य—और उसके विचारों की चिन्ता का प्रभाव होता था, तब डाक्टर इस उम्र में भी विचलित हो जाते थे।

करुणा ने एक दिन एकान्त रात में बैठ कर माया को एक खत लिखा। खत बहुत लम्बा था। खत का प्रारम्भ हुआ था 'भाभी' से। और अन्त हुआ था—'जल्दी आओ भाभी' से। बीच में बहुत सी बातें थीं, अधिकांश में भैया की। बड़े भैया जेल गये। जेल से आ गये—अब वे गुमसुम अकेले बैठे रहते हैं। न उन्हें खाने की सुध है—न कपड़ों की। वे कभी नहीं हंसते, पहिले जब वह हंसते थे, तो मालूम होता था पहाड़ फट पड़ा। पर अब वह हंसी गायब हो गई थी। वह रात २ भर छत पर चटाई पर पड़े तारों में कुछ देखते रहते हैं। किसे देखते हैं भला भाभी? बताओ तो। अच्छा मैं ही बताती हूँ—तुम्हें देखते हैं। तुम आओ

तो वे तुरन्त हंस पड़े। 'और मैं भी इतनी हंसूं—भाभी, की बस समेटे से न सिमटूं। और मैं तो बैठी २ चौंक पड़ती हूँ—ऐसा मालूम होता है तुम आ रही हो। जरा आहट पाई—समझ लिया—तुम आई हो। अम्मा—जब तुम्हारी याद करती है—आंख भर लाती हैं। मेरी अच्छी भाभी, तुम अम्मा को रुलाती हो। तुम आओ तो हम सब हंसेंगे। बोलो कब आओगी।

पत्र में इसी तरह की बहुत बातें थी। कुछ इधर उधर की कह कर फिर—कब आओगी, कहो। यही रट थी। खत भेज दिया गया। उसकी चर्चा करुणा ने किसी से न की। खत का जवाब आया। माया ने केवल एक पंक्ति जवाब में लिखी थी—'अपने भैया से कहो—आकर ले जांय।'

करुणा के मन की कली खिल गई। उमंग में दौड़ी २ दिलीप के पास पहुँची। अबोध बालिका की तरह खत को कपड़ों में छिपा कर कहा—'बताओ तो बड़े भैया, मेरे हाथ में क्या है?'

'मैं क्या जानूं?'

'वाह, जानना पड़ेगा।'

'जबर्दस्ती है कुछ।'

'है ही, बताओ क्या है?'

'बिल्ली का बच्चा है।'

'वाह।'

'बागड़बिल्ला है।'

'ठीक बताओ, नहीं तो हार मानो।'

'मानली हार, अब जा तू।'

'देखोगे नहीं।'

'क्या?'

'वह चीज़।'

'लेजा, तू देख भाल ले।'

'पीछे मांगोगे तो नहीं दूंगी।'

'पर है क्या ?'

'मैं नहीं बताती ।'

'मार खायगी तू ।'

'कौन मारेगा ।'

'मैं मारूंगा ।'

'नहीं. तुम नहीं ।'

'तब कौन ?'

'भाभी, करुणा ने आंखों में हंसते कहा ।'

दिलीप ने मारने को उठते हुए कहा—'जा भाग शैतान ।' लेकिन करुणा ने हाथ पसार कर खत दिखा दिया ।

'किसका खत है ?'

'तुम बताओ ।'

'मुझे क्या मालूम।'

'तो जाने दो ।' वह चलदी । दिलीप ने कौतूहलाक्रान्त होकर कहा—'बता, किसको चिट्ठी है ।'

'बताऊं ?'

'बता ।'

'भाभी की ।'

'दुत' दिलीप ने जैसे झिड़कना चाहा । पर उसकी आंखें फैल गई । उसने कहा–

'देखूं ?'

'नहीं दिखाती, जाओ ।'

'अच्छा, चल सुलह करले । ला दिखा किसकी चिट्ठी है ।'

'भाभी की है ।'

'झूठ ।'

'तो देख लो ।'

'करुणा ने चिट्ठी दिलीप के हाथों में दे दी। दिलीप ने एक दृष्टि उस एक पंक्ति की चिट्ठी पर डाल कर कहा—'तू ने क्या उसे ख़त लिखा था ?'

करुणा ने स्वीकार किया। दिलीप ने कहा—

'क्या लिखा था ?'

'सब बातें लिखी थीं। तुम रात को तारों में भाभी को देखते रहते हो यह भी लिख दिया था—कभी हंसते नहीं हो यह भी लिखा था—मैंने भाभी को जल्द आने को लिखा था।'

'क्यों लिखा था तू ने ?'

'ठीक लिखा था। अब तुम जाओ भैया, झट भाभी को ले आओ, मेरा मन उनसे मिलने को बहुत करता है।'

'दिलीप ने क्रोध करना चाहा, झिड़कना चाहा—'तू ने ठीक नहीं किया' कहना चाहा—पर यह सब उससे कुछ न हुआ। कुछ देर बाद उसने कहा—'अच्छा अब तू जा।'

'तो तुम कल जाओगे भैया ?'

'बस अब जा ही रहा हूँ।'

'तो मैं मां से जाकर कहती हूँ', यह कहती हुई करुणा भाग गई। उस चिट्ठी की उस पंक्ति को मुट्ठी में ज़ोर से भींच कर दिलीप एक अनिर्वचनीय सुख समुद्र में डूब गया।

३१

बहुत दिन बाद हुस्नबानू दिल्ली आई। रंगमहल बंद पड़ा था। वह बेमरम्मत और वीरान हो गया था। हुस्नबानू ने बहुत से मज़दूर लगाकर उसे साफ़ कराया। नौकर चाकर कोई साथ न था—केवल एक बूढ़ी दासी थी। जो उसकी सर्वाधिक विश्वासपात्री

और उसके दुख दर्द की साथिन थी।

इस दुखिया स्त्री की दुर्भाग्य कहानी हमने कही ही नहीं। वह कही जाने के योग्य भी नहीं। बत्तीस वर्ष बाद हुस्न दिल्ली आई थी। जब वह नव विवाहित दुलहिन बन कर—अपनी सब आशा-उत्साह-उमंग और असामान्य हृदय धन गंवा कर-केवल चम्पक कुसुम सम-कमनीय रूप सुषमा लेकर, उस पागल-नपुंसक कोढ़ी नवाब की पत्नी बन-तीन तीन सौतों की विष दृष्टि की शिकार बन पतिगृह गई थी तो जैसे उसका कुसुम कोमल गात संताप की ज्वाला से धू धू जल रहा था। उसने अपने बड़े अब्बा के प्रति अतुल प्यार और सम्मान मन में रख-स्वेच्छा से-साहस से-धैर्य से और एक हद तक-दबंगता से भी-अपने को जीवित ही चिता में झोंक दिया था—जहां—वह जलती रही - बत्तीस वर्ष तक। और अब, यद्यपि वह जल रही थी—उसी चिता में जबकि जीवन ही उसकी चिता बन गई थी। पर इस अनोखी आग में जल भुन कर वह राख न बनी थी—कोयला बनी थी—सफेद कोयला। एक अपरिसीम शीतलता ने जैसे उसके अन्तर्दाह को चारों ओर से लपेट लिया था। अब उसकी उम्र पचास को पार कर रही थी। कोढ़ी और नामर्द पति का सुहाग उसे केवल आठ वर्ष उपलब्ध हुआ। पति से प्रथम ही उसकी सौत और सखी—जीनत स्वर्ग सिधार गई थी—जिसका उसे उस पति गृह में एक मात्र सहारा था। बड़ी बेगम तो उससे पहिले ही मर चुकी थी। रह गई थी—तीसरी महल, नवाब के मरते ही वह एक यार के साथ अपने जेवरात का डिब्बा लेकर भाग गई थी। उसकी किसी ने खोज खबर नहीं ली। बस नवाब के खानदान में अकेली रह गई थी—बेगम हुस्नबानू—अपनी और पति की सारी स्टेट की स्वामिनी। रंग अब भी उनका वैसा ही चम्पे की कली के समान गोरा था—पर वे मोटी बहुत हो गई थीं। माथे की सुन्दर

अलकावलियां जब चांद-सोने के तार बन चुके थे। बड़ी बड़ी कजरारी आंखों के चारों ओर स्याही का एक बड़ा सा घेरा बन गया था। नुकीली नाक और गोल ठोड़ी उनकी चरित्रता और धैर्य का परिचय देते थे। उनके होठों में दृढ़ता और कोमलता का सम्मिश्रण था। आवाज़ उनकी जैसे दर्द से भरी हुई थी। वे बहुत धीमा बोलती थीं। क्रोध करना—ज़ोर से बोलना—सख़्त बात कहना जैसे उन्होंने कभी सीखा ही नहीं था। उनकी दृष्टि में एक दार्शनिक भावना व्यक्त होती थी—उनके सम्मुख आकर बड़े से बड़े आदमी को अवनत होना पड़ता था।

बूढ़ी दासी ने बेगम के पास आकर बड़बड़ाते हुए कहा—'मैंने कहा था—बेगम, कि दो चार नौकर ले चलो। पर तुमने एक न सुना। अल्ला रखे, दर्जनों नौकर चाकर हराम के टुकड़े तोड़ रहे हैं, जब यहां इतनी बड़ी हवेली जंगल हो रही है—मैं मरी बुड्ढी ठुड्ढी कहां जाऊं क्या अरूं ?'

बेगम ने आहिस्ता से कहा—'बुआ, दिल्ली शहर है, देहात नहीं। झल्ली वालों को बुला लो या मंजूर लगा लो। वे सब काम सफाई कर डालेंगे—परेशान क्यों होती हो ?'

'पर किसे भेजूं ? अब मैं मजूरे लेने जाऊं ?'

'चली जाओ जरा, बुआ। काम तो करना ही पड़ेगा। लेकिन रहमत मियां क्या अभी नहीं आये ?'

'कहां, वे आ जाते तो रोना क्या था, कुछ तो सहारा मिलता।'

'हैं तो देहली ही में ?'

'हैं तो।'

'तो बुआ रिक्शा ले लो, कूचा चेलान में वह जो नुक्कड़ वाला मकान है, वहीं उनका घर है—एक बार चली जाओ—उनके आने से तुम्हें बहुत सहारा मिलेगा।'

'रिक्शे पर तो बेगम, मुझ पर चढ़ा न जायगा। दौड़ेगा मुआ

हुड़दंग घोड़े की तरह। डोली कहार दिल्ली से न जाने कहां गायब हो गये। कैसा जमाना आ गया--बेगम, इज्जत वालियां तो अब जहर ही खाकर मर जायेंगी।'

'रिक्शे पर भी परदा हो जायगा, बुआ। जाओ, अभी चली जाओ।'

बूढ़ी दासी बड़बड़ाती हुई चली गई। उस बड़े महल में रह गई अकेली हुस्नबानू। बालपने की स्मृतियां उसकी आंखों में एक एक करके नाचने लगीं। यह रंग महल जब बड़े अब्बा के जमाने में नौकरों चाकरों, मुगलानियों, उस्तादनियों, उर्दू बेगमों से भरा रहता था। एक आता था—एक जाता था। बाहर दीवानखाने में दर्बार लगता था-बड़े अब्बा का। दीवान जी सफेद डाढ़ी हिलाते बात २ पर झुक २ कर सलामें झुकाते थे—और मैं उन्हें देख २ कर हंसती थी। उनकी डाढ़ी के बाल गिननी थी, पूछती थी—दीवान जी—मेरी डाढ़ी कब निकलेगी। दीवान जी गोद में लेकर कहते—निकलेगी बेटी—जब तुम दुलहिन बनकर डोली में बैठोगी।

दुलहिन बनना, डोली में बैठना—सभी कुछ तो हो गया। जीवन में जितने अरमान होते हैं -सभी का तो अब हिसाब बेबाक हो गया। अब तो न कोई अरमान रहा—न उनके पूरे होने की उम्मीद रही। जैसे बड़े अब्बा का यह रंगमहल सूना—उजाड़ और वीरान है—वैसा ही-सूना-वीरान और उजाड़ उसका मन है-तन है और। हृदय है सूना-सूना-सूना। जैसे वह अकेली यात्री-अपने देह की गठरी सम्हाले-उस पार जाने के लिऐ-गाड़ी की प्रतीक्षा कर रही है-जहां किसी भी प्रिय के मिलन की आशा नहीं है -जो जैसे सबसे बड़ा परदेश है।

बानू कब से हंसी नहीं है—इसका हिसाब कौन दे सकता है। परन्तु फिर भी सब मिलाकर उसकी सुषमा उस शरदाभ्र से

दी जा सकती है, जो विशाल नील गगन में चांदी के महलों की भांति दूर तक फैले हों—और जिन में एक बूंद भी जल शेष न रह गया हो। जल रहित शरदाभ्र की यह रजत सुषमा—सूखे, उत्तप्त—पर्वतों को तृप्त नहीं कर सकती, झुलसे हुए तरु पल्लवों को हरे भरे नहीं कर सकती—पर नेत्रों को आनन्द तो दे ही सकती है। उसमें आनन्द निहित नहीं, पर आनन्द उसमें से प्रवाहित तो होता है।

रहमत मियां ने आकर बेगम को सलाम किया। सत्तर साल की उम्र, लम्बे, दुबले, छोटी सी सफेद डाढ़ी। आंखों पर मोटे शीशों का पुराना चश्मा। सिर पर पुरानी मखमली टोपी, बदन पर चपकन, पैरों में रबर का सस्ता जूता।

बेगम ने मुस्कुरा कर कहा—'रहमत मियां, घर में सब अच्छे तो हैं। मुद्दत में मिलना हुआ।'

'खैर सल्लाह ही है सब। बानू, जब से बड़े नवाब जन्नत नशीन हुए—मैं घर में जा बैठा। किसी की नौकरी नहीं की। हुजूर की ड्योढी पर मैंने खड़े होकर हुकूमत की है—अब किसके सामने हाथ फैलाता। हुसैन तो जवानी ही में दग़ा दे गया— और उसकी मां उसके गम में मर गई। अकेला ही हूँ हुजूर। खुदा का शुक्र है। इतने दिन बाद, हुजूर ने रहमत की। दिल्ली को याद फर्माया, और गुलाम को तलब किया। खुदा गवाह है, आंखें हरी हो गई। मगर यह क्या देखता हूँ। सुना अकेली ही तशरीफ लाई हैं। बुआ कह रही थी—नौकर चाकर कोई साथ नही लिया— अब तो हुजूर को दिल्ली कुछ दिन रहना ही होगा।'

'रहूँगी, मियां रहमत। नौकर चाकरों की फौज साथ रखने से क्या फ़ायदा? बुआ साथ है यहां उम्मीद थी—रहमत मियां हैं ही।'

'गुलाम को याद रखा बड़ी बात की बानू।'

'मगर हुसैन की सुनकर ग़मगीन हूँ—यह तो बुढ़ापे में दाग़

लग गया ?'

'खुदा की मर्ज़ी है हुजूर, अब आप ही को लो, मैं सुनता रहा हूँ।'

'खैर, तो रहमत मियां। अब तुम यहीं रहो। बुआ अकेली हैं, घर पर सफ़ाई करानी है—जरूरत समझो। एकाध नौकर और रखलो। हां, जब से बड़े अब्बा जन्नत नशीन हुए और तुम घर बैठे हो—तभी से तुम्हारा मुशाहरा इस सरकार से मिलेगा। इतमीनान रखो।'

'तो आखिर, हुजूर, पोती किस बाप की हैं—जिनकी सखावत का डंका—विलायत तक बजा। उन्हीं नवाबुद्दौला मुश्ताक अहमद बहादुर का लहू इन नसों में है। आप तो ऐसा कहेंगी ही। मगर हुजूर, अब और कै दिन जिऊंगा ? फिर मेरा दुनियां में कौन है। क्या करूंगा मुशाहरा लेकर सरकार—अब कदमों में रखिए—जूठन मिलेगा—तो पेट भर जायगा। बस।'

बूढ़ा ख़िदमतगार टपकती हुई आंखों पर दोनों हाथ रखकर दुजानू बैठ गया।

हुस्नबानू की भी आंखें भीग आईं। उनके मुंह से बोली न निकली।

३२

आख़िरी मरीज़ को भुगता कर डाक्टर कुर्सी से उठे, इसी समय एक मोटर उनकी डिस्पेन्सरी के सामने आकर रुकी। डाक्टर ने आंख उठाकर मोटर की ओर देखा—और फिर घड़ी की ओर। एक बज रहा था—और एक बूढ़ा मुसलमान धीरे २ डिस्पेन्सरी की सीढ़ियों पर चढ़ रहा था। डाक्टर को सहसा बत्तीस वर्ष पुरानी

घटना याद हो आई वही काला रेशमी बुरका–वही बूढ़ा नवाब, और चम्पे की कली के समान उज्ज्वल दो उंगलियां जीवन में वे कभी भूली तो थीं ही नहीं। स्मृतियों के घवंडर में दबी पड़ी रहती थीं–दिन रात में हज़ार बार उभर आती थी, आज इस क्षण जैसे वह मूर्त हो उठी।

वे खड़े हो कर बूढ़े की ओर देखने लगे। बूढ़ा रहमत था। रहमत ने आकर झुक कर सलाम किया। और कहा—'हुजूर रंग-महल से मोटर आई है–बेगम ने आपको याद फ़र्माया है।'

डाक्टर के हृदय की धड़कन जैसे एक क्षण के लिए बन्द हो गई। उसने कांपते कण्ठ से कहा–'रंगमहल ? बेगम ? कौन बेगम ?'

'हुजूर, हुस्नबानू बेगम।'

'क्या वे देहली में आई हैं।'

'जी हां हुजूर।'

'कब ?'

'एक हफ्ता हो गया ?'

'··· एक हफ्ता' डाक्टर सोच रहे थे–एक हफ्ते के बाद बुलाया है। नहीं नहीं। बत्तीस वर्ष बाद।'

डाक्टर के मानस में एक भूचाल सा आ गया। उन्होंने हकलाते हुए कहा—

'क्या–क्या—अभी चलना होगा ?'

'जी, हुक्म तो यही है।'

'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'रहमत है—हुजूर'

'तो रहमत मियां, बेगम के साथ और कौन है ?'

'वे अकेली हैं हुजूर ?'

'नवाब नहीं हैं ?'

'नवाब ? कौन नवाब ?'

'बेगम के शौहर।'

'उनका तो हुजूर, अब से पच्चीस साल पहिले ही इन्तक़ाल हो गया था।'

'पच्चीस साल पहले ?'

'जी हां।'

डाक्टर क्षण भर चुप रहे। विचारों की आंधी का एक झोंका—उन्हें हिला गया। उन्होंने सम्हल कर कहा—'चलता हूं रहमत।'

वे धम से गाड़ी में जा बैठे। इस समय डाक्टर को ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो हवा में उड़े जा रहे हैं।

संगमर्मर की दिव्य प्रतिमा के समान भव्यश्री धारिणी हुस्नबानू को देखकर डाक्टर जड़ स्तम्भित रह गये। बानू ने खड़े होकर डाक्टर को ताज़ीम दी। बैठने पर हंस कर कहा—'इतनी मुद्दत के बाद, आख़िर फिर मुलाक़ात हुई भाई जान, पहचानते तो हैं ?'

डाक्टर का कण्ठ सूख गया। उन्होंने भर्राए कण्ठ से कहा—

'मुझे तो ऐसा मालूम होता है—जैसे मैं सुपना देख रहा हूँ।'

'मगर मैं तो हुस्नबानू हूँ' बानू ने हंस कर कहा।

'शायद।'

इस बार बानू खिलखिला कर हंस पड़ी। उसने कहा—'शुक्र है आप ने आज मुझे हंसाया तो ?'

'इसके क्या माने ?'

'अब इतने दिन बाद बीती बातों के माने पूछ कर क्या कीजिएगा ?'

'लेकिन नवाब साहेब की बाबत.....'

'क्या अभी सुना ?'

'कैसे सुनता, तुमने तो कभी लिखा नहीं।'

'लिख लिख कर दिल में रखती रही। भेजा नहीं।'

डाक्टर ने देखा—मुस्कान जो बानू के होठों पर फैल रही थी,

वह सूखती जा रही हैं। उसने कहा—'तुम्हारा इतना बड़ा दिल है, जो रखती गईं, समाता गया।'

'और आप भाई जान, लिख २ कर शायद फाड़ते फैंकते रहे। बेगम फिर मुस्कुरा उठी।

'लिख ही न सका।'

'यह क्यों? लिखने की चाह ही शायद न रही।'

'नहीं, ताव न रही।'

'खैर, और सब खैराफियत है।'

'दुनियां कदम २ ये चल रही है, लेकिन मुझे कुछ पूंछ लेने दो।'

'क्या?'

'नवाब की बाबत?'

'क्या कीजिएगा पूछ कर?'

'सुना, मुद्दत हुई वे न रहे, तुमने इतनी ख़बर भी न भेजी।'

'क्या करते ख़बर पाकर आप, शायद एक ख़त भेजकर मातम-पुर्सी करते?'

डाक्टर की आंखें बहने लगी। उन्होंने जवाब नहीं दिया। बानू ने कहा—

'अब यह क्या हिमाक़त है भाई जान, बूढ़े हो गए आप।'

'कौन कहता है? डाक्टर ने चमक कर कहा। साठ को जरूर पार कर गया हूँ—लेकिन हुस्न, मैं जब तुम्हें याद करता हूँ तो अपने को वैसा ही जवान पाता हूं जैसा तब था, जब मैंने पहिली नज़र सिर्फ तुम्हारी दो उंगलियां भर देखी थीं।'

'याद रहीं वे उंगलियां?'

'वे भूली जा सकती हैं? चल कर देखो—चम्पा लगाया है मैंने। उसमें हर साल कलियां आती हैं और उनमें वे उंगलियां झांक उठती हैं। फिर रात भर उनकी भीनी महक मेरी हर एक सांस

को खुशबू से तरबतर कर देती है।'

'पागल आप नहीं हो गए भाई जान।'

'हो जाता, मेरी याद मर जाती, मैं सब कुछ भूल जाता तो अच्छा था।'

'बहिन को ये सब बातें बताई या नहीं।'

'ये बातें बताई नहीं जातीं। जानने वाले जान जाते हैं।'

कुछ देर बानू चुपचाप शून्य आकाश की ओर ताकती रही। फिर धीरे से बोली–'आपने दुनिया का इलाज किया–लेकिन अपना न कर सके?'

'कुछ बीमारियां आराम होती ही नहीं।'

'खैर पूछिए—जो पूछना चाहते हैं?'

'मुझे तुम सिर्फ एक शब्द कह दो बानू, कम से कम जब तक नवाब ज़िन्दा रहे–तुम खुश रहीं।'

'मुझे देखकर आप कैसा समझते हैं।'

'बिल्कुल पत्थर, ठोस, जिसमें कहीं जान नहीं–सांस भी नहीं।'

'तो बस, इसी में सब समझ लीजिए।'

'समझ लिया है–तभी तो पूछता हूँ।'

'पूछने से फ़ायदा?'

'हिसाब किताब लगा कर देखूंगा बानू।'

'काहे का हिसाब किताब भाई जान।'

'एक औरत की ताकत का। जानना चाहता हूं कि आखिर एक औरत में कितनी ताकत होती है।'

'डाक्टरी–किताबों में यह सब नहीं लिखा?'

'लिखा होता तो अपना इलाज न कर लेता, मर्ज़ को कलेजे में छिपाए क्यों फिरता?'

'तो समझ लीजिए–जैसी बत्तीस साल पहिले गई थी–वैसी ही हूं।'

'मेरा भी यही ख्याल था बानू। लेकिन क्यों? तुम्हें पाकर कोई कैसे इस तरह रह सकता है, नवाब क्या एक दम जानवर थे?'

'नहीं भाई जान, मैं खुश होती यदि एक जानवर के पल्ले बंधती—वह काटता, नोचता, खाता घसेरता—झिंझोड़ता-दुखदर्द कुछ तो देता-अहसास का आखिर कुछ तो इस्तेमाल हो जाता।'

'जानवर नहीं थे नवाब, तब?'

'वहां जाने पर दो दिन में ही पता चल गया कि मेरी शादी एक मुर्दे से हुई है।'

डाक्टर के कलेजे में जैसे किसी ने पत्थर दे मारा। वह—आह करके रह गए। फिर उन्होंने पागल की भांति चीख कर कहा—

'उस मुर्दे को मरने में आठ साल लग गए—आठ साल तुम्हें वह लाश ढोनी पड़ी बानू?'

'गुस्सा करने से क्या होगा भाई जान, अकेली मैं ही तो न थी। हम चार थीं।'

'छी, छी।'

'फिर भी, मैं कहूँगी, नवाब शरीफ आदमी था। आखिरी वक्त में तो मैं उनकी बदनसीबी पर कराह उठी—मुझसे जो बना उनकी खिदमत की, उन पर रहम किया।'

'और प्यार।'

'प्यार किया होता तो तुम क्या आज मुझे पत्थर-ठोस पत्थर समझते?'

'माफ किया तुमने उन्हें मरने से पेश्तर?'

'ओह, यह मत पूछो। माफ़ तो मैंने उन्हें उसी दिन कर दिया था—जिस दिन उन्हें पहिली बार देखा था। उसके बाद तो मैं समझती ही गई कि यह आदमी तरस के काबिल है—फिर मैं औरत की जात—अपनी आंख से एक आदमी को इस कदर लाचार, सूना-बेआसरे कैसे देख सकती थी। राह चलते भिखारी को भी तो

मैं नहीं देख सकती—फिर वह तो मेरे शौहर थे।'

'एक बार भी तुमने कभी उन पर गुस्सा नहीं किया बानू।'

'गुस्सा? उन भूखी—अछताती—पछताती, चोर की तरह नज़र छिपाती, गुनाह को तस्लीम करती हुई आंखों को देख कर भी भला कोई गुस्सा कर सकता है। पत्थर ज़रूर हूँ भाई जान मगर औरत हूँ, यह भी तो सोचो।'

'लेकिन उसके बाद।'

'मेरा एक सहारा था, जीनत।'

'तुम्हारी सौत?'

'लेकिन बड़ी बहिन और मां की तरह उन्होंने मुझे अपनी गोद में ढांप लिया। इसीसे वह आग—जिसमें मेरी जैसी बदनसीब औरतें जला करती हैं, मुझे ज्यादा तकलीफ न दे सकी—फिर, मैं तो जलने की आदि हो गई थी। अफसोस यही—रहा कि—वह गोद भी क़ायम न रही, छिन गई। और जीनत बहिन भी चली गई।'

'कितने दिन जली वह?'

'अड़तीस बरस, मैं तो सिर्फ आठ ही बरस। वह भी जीनत बहिन की गोद में।

'आठ बरस क्यों?'

'उसके बाद तो आग बुझ ही गई। राख में बैठे रहने में क्या दिक्कत थी।'

'तो बानू आठ बरस मुर्दे के साथ और चौबीस बरस चिता की ठण्डी राख में बैठी रह कर यहां आई हो। लेकिन दूध की धोई सी, उजली पाक साफ, फरिश्ता सी, अछूती—निराली—देवी—' डाक्टर दोनों हाथ फैला कर दौड़ पड़े—और हुस्नबानू के पैरों में लोट गए।

हुस्नबानू घबरा कर पीछे हट गई। डाक्टर ने खड़े होकर कहा—'हम हिन्दु देवी के पुजारी होते हैं। हमारी देवी भी पत्थर की होती

है। हम उसके सामने हंसते रोते हैं। भेंट देते हैं, मानता मानते हैं-पर वह वैसी ही अचल रहती है। सुनते हैं, देखा नहीं—कि किसी भक्त पर प्रसन्न होकर-वह प्रकट होकर वर देती है—सो आज मेरा जीवन सफल हो गया-देवी का प्रत्यक्ष प्रकट दर्शन हो गया। इजाजत दो इन चरणों पर अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाऊं। अपने गुनाहों की माफी मागूं।'

'गुनाह क्या।'

'मैं अभी तक ईमानदार नहीं हूँ-बानू।'

'जाने दीजिये भाई जान। अच्छा—मुझे घर की खैराफियत सुनाईये—सुनने को बेचैन हूँ। अरुणा बहिन कैसी है?'

'चल कर देख लेा, और दिलीप को भी।'

बानू को ऐसा प्रतीत हुआ—मानो उसके हृदय की धड़कन रुक गई हो। उसने हाथ से सीने को दबा लिया—दिलीप—उसने कहना चाहा—पर कण्ठ स्वर नहीं फूटा—केवल होठों में जरा सी फड़कन होकर रह गई। वह पलक मारना भी भूल गई—एक टक डाक्टर को देखने लगी। जिन्दगी में पहली बार आज वह अपने बेटे का नाम सुन रही थी। डाक्टर भी क्षण भर को विचलित हुऐ। फिर उन्होंने कहा—एम० ए० करके एल-एल० बी० भी कर लिया है-लेकिन अजब खब्ती लड़का है।'

'खब्ती?'

उसी भांति होठों में ही बानू ने कहा-लेकिन डाक्टर ने सुन लिया।

'तब क्या? आर्थोडाक्स हिन्दु। आधा दिन पूजा पाठ और, धर्म ग्रन्थ पढ़ने में और बाकी संघ के झगड़े झंझटों में बिताता है।

'तन्दुरुस्त है।'

'खूब है।' डाक्टर जरा हंसे। 'देखोगी नहीं।'

'नहीं, बानू चुप हो गई। डाक्टर अवाक होकर बानू का मुंह

देखने लगे, जो इस समय वर्षोन्मुख, भरे हुए बादलों के समान हो रहा था। डाक्टर भी कुछ कह न सके। बहुत देर सन्नाटा रहा। डाक्टर को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे बानू के होंठ उसके हृदयगत ज्वर को भीतर ही दबा सकने में असमर्थ हो, फड़क कर रह गए। बहुत देर बाद बानू ने कहा—'क्या उसे कुछ मालूम है ?'

'नहीं, कुछ भी नहीं। और हम लोग उलझन में हैं।'

'उलझन ?'

'हां, शादी की। बहुत गहरी दिक्कतें हैं। लोगों की नजर में वह हमारा ही लड़का है, लेकिन हम अगर सही बात जाहिर न करके किसी घराने में उसकी शादी कर देते हैं, तो यह एक भारी धोखा धड़ी होगा। तुम तो जानती ही हो, कि हम लोगों में जात बिरादरी की कितनी बंदिशें हैं।'

'क्या ऐसा कोई घर नहीं मिल सकता, जो इन बातों की परवाह न करे।'

'ऐसा ही कुछ हुआ था। मेरे एक दोस्त थे, बड़े भारी बैरिस्टर, लड़की उनकी एम० ए०, सुन्दरी, हम लोगों को बिल्कुल पसन्द। पर उसने नहीं माना। इन्कार कर दिया। वे लोग अपना सा मुंह लेकर चले गए। अब दूसरे लड़कों के रिश्ते भी रुके हुए हैं, समझ ही नहीं रहा हूँ क्या करूं।'

'बहतर है आप उससे सब कुछ साफ २ कह दें। सिर्फ उसकी मां कौन है यह न बताएं। या कुछ किस्सा घड़ दें, और उसे उसके हाल पर छोड़ दे। उसकी कुछ जायदाद बची होगी। इधर मैं भी दे सकती हूं, लेकिन यह बात उसे मालूम न होने पाए।'

'जायदाद, रुपया तो सब हमने छुआ नहीं है। बढ़ा ही है। हमने तो अपने ही लड़के की तरह उसे पाला है। न उसे न और मेरे बच्चों को यह शानो गुमान है कि वे, सब आपस में सगे भाई बहिन नहीं हैं। सब के विचार अलग हैं, पर आपस में प्रेम

बहुत है। दिलीप तेज़ मिज़ाज है ज़रूर, पर अपनी मां को बहुत प्यार करता है। और करुणा तो उसे बहुत मानती है। फिर, वह बड़ा ही आर्थोडाक्स है, यह सब सुनेगा तो उसकी छाती न फट जायगी। न, मैं तो उससे यह सब न कह सकूंगा। वह कैसे बर्दाश्त करेगा। और उसके भाई, करुणा, दूसरे लोग? उसकी सारी दुनिया अंधेरी हो जायगी। वह संसार में अकेला रह जायगा।'

'ऐसा तो मैं उसे न होने दूंगी। अकेला रह जाना दुनिया में कैसा होता है, यह मैं जानती हूं लेकिन भाई जान, यह क्या बिल्कुल ही नामुमकिन है कि आप ही अब इस बात को कतई भूल जायं, कि वह आपका बेटा नहीं है।'

'मैंने तो कभी यह सोचा ही नहीं, पर दूसरों को धोखा देने में जी कांपता है।'

'धोखा···· ····' बानू के होठ कांप कर रह गये। वह बहुत कुछ कहना चाह रही थी—पर कह न सकी।

डाक्टर ने साहस करके कहा—'इसी से तो कहता था—तुम उसे एक बार मिल लेतीं तो।'

'यह तो हो नहीं सकता, भाईजान, आप भी तो सोचिये। वह क्या बर्दाश्त कर सकेगा।'

'न, नहीं कर सकेगा।'

'तो वह जैसा है रहने दीजिये। अपने बच्चों की शादी कर लीजिये।'

'यह भी नहीं हो सकता है बानू, ऐसा ही होगा तो मैं वही करूंगा जो तुमने कहा। जो हो—वह हो, लेकिन तुम उसकी माँ से तो मिल लो।'

'उन्हें यहीं भेज दीजिये भाईजान, और एक बात का ध्यान रखिए, आपकी यह बहिन, बहुत दुखिया है, और अब उसे दुनिया में खुदा के बाद सिर्फ आपका ही आसरा है। उसी आसरे से मैं

यहां आई हूं—आपने मेरी इज्जत बचाई है, अब, आप मेरे दर्द को जितनी राहत पहुँचा सकेंगे—आपको सबाब होगा। खुदा के लिये —आप अब यही समझ लीजिये—वह आप ही का बेटा है।'

इतना कह कर बानू ने जिन करुणा भरे नयनों से उन्हें देखा—उस दृष्टि से विचलित होकर डाक्टर ने कहा—

'मेरी कमजोरी को माफ़ करना बानू, तुम्हारी बात ही ठीक है। दिलीप आज से मेरा ही बेटा है। मेरे मन की द्विविधा दूर हो गई। अब कहो—तुम्हारे लिये और क्या करूं ?'

'बस, कभी कभी मिलते रहे।'

'अब रहोगी तो दिल्ली ही में।'

'हां, यहीं रहूंगी।'

'अरुणा से क्या कहूं।'

'कहना—दिलीप की मां को बानू याद कर रही है। दर्शन दे जायें, आंखें तरस रही हैं।'

'कह दूंगा, लेकिन हिसाब नहीं समझेंगी आप ?'

'कैसा हिसाब।'

'अपनी जायदाद का।'

'मेरी कौन जायदाद है।'

'जो दिलीप को दी गई थी।'

'उसमें मेरा क्या ? और दिलीप का भी क्या ? वह तो सभी भाई बहिनों की है, भाईजान, अब यह चर्चा मेरे सामने कभी न करना। साथ ही उससे भी मत कहना।'

'लेकिन बड़े नवाब ने दी तो थी—उसी को।'

'तो अब मैं सब भाई बहिनों को देती हूं। इसके अलावा मेरी और भी तो जायदाद है, वहां और यहां। यह सब भी तो इन्हीं बच्चों की है। दुनिया में अब मेरा और कौन है ?' हुस्नबानू की आंखों में छल छल आंसू बह चले। डाक्टर के मुंह से भी

बात नहीं निकली। सिर्फ आंखें बहती रहीं। बहुत देर तक—सन्नाटा रहा। कुछ देर बाद डाक्टर ने कहा—'किसी चीज़ की तकलीफ़ न पाना। ज़रूरत हो तो फ़ौरन खबर देना।'

'ज़रूर दूंगी। लेकिन रहमत मियां आ गये हैं। फिर मेरी ऐसी ज़रूरत ही क्या है?'

रहमत ने चाय लाकर रख दी। बानू ने खुद उठ कर एक प्याला बनाया और डाक्टर की ओर बढ़ाया। डाक्टर प्याला लेकर खड़े हो गये। अदब और प्यार से हुस्न को वह प्याला देते हुये उन्होंने कहा—'यह एक प्याला मेरे हाथ का तुम पिओ हुस्न, मेरे ऊपर इतना अहसान तो करदो जैसे डाक्टर भीतर से बाहर तक विचलित हो उठे।'

हुस्न ने हंस कर कहा—'लाइये, लाइये—मेरे लिये तो यह पाक तबर्रुक है। जिसके लिये इतनी लम्बी जिन्दगी—तरसते ही बीत गई। उसने दोनों हाथ फैला दिये। डाक्टर ने प्याला बानू के कांपते हाथों में दे दिया। फिर दूसरा प्याला स्वयं बनाकर चुपचाप पीकर उठ खड़े हुये। दोनों ही इस समय भाव समुद्र में डूब उतरा रहे थे—इसीसे किसी ने भी बात न की। जैसे उन क्षणों में दोनों एक दूसरे में खोगये हों।

डाक्टर के खड़े होते ही—बानू ने उठकर कहा—'कल सवारी भेज दूंगी। अरुणा बहिन को भेज दीजिये।'

'अच्छा' कहकर डाक्टर आंखें पोंछते हुये चल खड़े हुये।

३३

अरुणा और बानू का मिलन गाय और बाछी का मिलन था। बहुत देर तक दोनों एक दूसरे की गोद में सिर दिये मूक रुदन रोती

रहीं। बानू, जो अपना पुत्र—हृदयधन, प्रेम आशा और उल्लास का प्रथम और एक मात्र चिन्ह अरुणा को सौंप कर निर्मोही की भांति मुंह मोड़ कर चली गई। और निराशा, दुःख दर्द के झाड़ झकड़—बन-पर्वत पार करती हुई यौवन की देहरी पार करने से लेकर वार्धक्य के प्रांगण में जा खड़ी हुई—सो क्या उसने दुःख दर्द निराशा और क्षोभ से भरे अपने लम्बे उबा देने वाले जीवन में एक क्षण को भी उस गोद की स्मृति को भूला— जिसमें वह अपने कलेजे के टुकड़े को डाल गई थी। फिर बात केवल इतनी ही नहीं थी—अरुणा भी बानू से एक रस हो चुकी थी—एक ही थाल में उसके साथ खाना खाकर जो उसने अपनी गहरी एकता का परिचय दिया था—उसे भी बानू भूल न सकी थी।

सो आज, जब यह पहिली मुलाकात हुई तो बहुत देर तक वे दोनों यह भूल ही गईं कि हम दो हैं। अरुणा देवी इस नारी की विवशता पर पहिले ही द्रवित थी। वह भी उसके मुंह को एक क्षण को भी न भूली थी! कहा—वह जब अपने पुत्र को अरुणा की गोद में डाल कर जब गई थी—उनका नवल, अमल, धवल, गात, चम्पक के समान सुवर्ण और सुशोभित कोमल, कमलीय, कलेवर—किशोर वय—उठता यौवन—जीवन का जैसे सरल प्रभात? परन्तु अब? जल रहित शारदीय बादलों के समान विस्तार में फैला हुआ—थकित—पराजित, नमित—जीर्ण देह। रसभरे उन उत्फुल्ल होठों के स्थान पर सूखे—फीके खाली २ से होठ, सफेद रूई के गाले के समान लटके हुए कपोल, जल रहित गढ़े में छटपटाती मछली सी आंखें। और वर्षाऋतु की उपल बखेरनी सी दृष्टि—यह सब क्या साधारण परिवर्तन था। परिवर्तन तो अरुणा में भी हुऐ थे—वह तो आयु में बानू से भी बड़ी थी—पचास को पार कर गई थी। पर वह मां भी तो रही, पत्नी भी तो रही—गृहिणी भी तो रही। बानू न मां—न पत्नी न गृहिणी। तब उसने नारी जन्म क्या

पाया। नारी जन्म पाकर भी--इतना रूप श्री विद्या–धन सम्पत्ति सब कुछ पाकर केवल जीवन ही नहीं पाया–पर जीवित रही अब तक। बिना जीवन का यह जीवन भी भला कैसी विडम्बना की वस्तु थी। यह सब देख समझकर ही अरुणा चौधारे आंसू बहाती रही। और बानू ने तो इन आंसुओं की धार ही में अपनी चार दशाब्दियों की सारी दिन चर्या अरुणा को बता दी।

जब दोनों खूब रो चुकी। तो अन्त में बानू के आंसू सूखे। उसने हंसने की चेष्टा की। उसके होठों पर हंसी देखकर भी अरुणाके आंसू न सूखे।

बानू ने कहा -'रोती कब तक रहोगी बहिन, बैठो–कुछ अपनी कहो–कुछ मेरी सुनों।'

'सुन नहीं सकती हूँ बहिन, मेरी छाती फट जायगी। तुम्हारे इस रूप और इन आंसुओं ने ही सब कुछ कह दिया। लेकिन ऐसी पत्थर कलेजे वाली हो गई—कि इस अपनी बहिन को बिलकुल ही भूल गई।'

'भूल जाती तो यहां आती क्यों ?'

'क्या मेरे ही लिऐ आई हो।'

'खुदा गवाह है, सिर्फ तुम्हारे लिऐ। अब और कहीं मेरा ठौर ठिकाना भी कहां है—मेरी सांस सांस में तुम्हीं तो रम रही थीं—एक पल को भी मैं तुम्हें भूली नहीं भाभी।'

'फिर खत क्यों नहीं भेजा, आई क्यों नहीं। युग बीत गऐ। दुनिया बदल गई।'

'बदल जाय–तुम्हारी यह बानू तो वही है, और मैंने तुम्हें देखते ही जान लिया–तुम भी वही हो। जमाने ने हमें नहीं बदला। खुदा का शुक्र है। लेकिन खत तो कभी तुमने भी न लिखा।'

'इसी डर से, कि कहीं तुम नाराज न हो जाओ। तुम्हें यह पसन्द हो या नहीं, बात ही कुछ ऐसी थी। हमने समझा कि तुम

इर तरह हम से दूर ही रहना चाहती हो।'

'चाहा तो यही बहिन, क्यों कि ऐसा न करती तो यह पहाड़ सी ज़िन्दगी शायद कटती भी नहीं।'

'इसी से, लेकिन तुम्हारे प्यार से तो मेरा रोम रोम भरा है।'

'सो क्या मैं जानती नहीं भाभी, तो अब यह मिट्टी तुम्हारे क़दमों में है।'

'ऐसी बात क्यों कहती हो बहिन, अब तुम खुश हो। बहुत होगा। मैं सब सुन चुकी हूँ। अब तुम्हारी एक न मानूंगी—चाहे भी जो कुछ हो जाय—तुम्हारी गोद में तुम्हारी दौलत डाल दूंगी। तुम्हारी ज़िन्दगी को अब मैं यों सूनी न रहने दूंगी।'

'यह क्या कहती हो बहिन, यह तो कभी होने का नहीं।'

'क्यों नहीं होने का ?'

'बस बहिन, मुझे परदे में ही रहने दो—मेरे ही लड़के के सामने मुझे नंगा मत करो, मैं हरगिज़ यह नहीं बर्दाश्त कर सकती।'

'लेकिन बानू.....'

'बहिन ज़ख्म को मत नोचो। तुम्हारे पांव पड़ती हूं। तुमने उसे पढ़ा लिखा कर लायक़ कर दिया—अब उसे ज़िन्दगी से भरपूर भी करदो। मैं इतने ही से खुश हूं।'

'सब कुछ तो तुमने सुन लिया।'

'सुन लिया बहिन, पर मुझे तुम पर भरोसा है। तुम्हारी जैसी जिसकी मां हो उस बेटे के क्या कहने।'

'तो तुम उससे मिलोगी भी नहीं।'

'नहीं मैं कौन हूं—यह वह न जान पायेगा।'

'मैं तुम्हें दुखी नहीं कर सकती, पर बहिन, तुम सहारा पाकर भी बेसहारे रहोगी।'

'अब तो आदी ही हो गई हूँ। जब आदी न थी—तब भी तो आखिर रही ही। अब तो यह बे सहारे रहना ही मेरा सहारा है।

बानू हंस दी। पर अरुणा ने फिर मोती बखेरे। बानू ने अरुणा के गले में बाहें डाल दीं और उसकी छाती में मुंह छिपा लिया।

बूढ़ी दासी ने चाय और नाश्ता सामने ला धरा। बानू ने हंसकर कहा—'तुम कहो तो भाभी-मैं इसे छू लूं-जी करता है-एक टुकड़ा तुम्हारे मुंह में ठूंस दूं।'

'ऐसा ग़ज़ब न कर बैठना कहीं। तुमने इसे छुआ और यह ज़हर हुआ। मैं खाते ही जैसे मर ही जाऊंगी।' अरुणा ने त्योरियों में बल डालकर मिठाई का एक टुकड़ा उठाकर बानू के मुंह में ठूंस दिया। और इसके बाद तो जैसे बानू भूल गई कि वह अरुणा को ज़िद करके अपने हाथ से खिलाने लगी। अरुणा ने उसी तरह उसे खिलाया।

बहुत देर तक दोनों अभिन्न हृदय एक दूसरे को समझते रहे-समझाते रहे। सांझ होने पर अरुणा ने कहा-'अब जाऊंगी बहिन, तो तुम्हें मैं अब अपने यहां आने को कहूं नहीं।'

'बहिन, इस बदनसीब से नाराज़ न हो जाना। तुम्हें मुझ से मिलने हर बार यहीं आना पड़ेगा, मैं न जा सकूंगी। और तुम्हें अपने होंठ सीने भी पड़ेंगे।'

'होंठ तो सिले ही पड़े हैं बहिन।' अरुणा ने उदासी से कहा। कुछ ठहर कर फिर कहा—

'नहीं छिप कर उसे देख तो लो एक बार।'

'नहीं बहिन, नहीं।' बानू ने दोनों हाथों से छाती दबाली। वह आंखें बन्द करके बैठ गई। अरुणा को और कुछ न सूझा-वह उसे समझा बुझा कर चली गई।

३४

करुणा के खत ने माया को जैसे आत्मसात कर लिया। करुणा और माया दोनों ही शिक्षिता बालिकाएं थीं। परन्तु प्रेम के प्रभाव से दोनों ही अज्ञात थीं। माया अधिक समझदार थी—सही—पर करुणा का यह पत्र तो ऐसा था कि जिसका आदि अन्त ही न था। एक सरल तरल बालिका ने अपनी प्रिय भाभी का आवाहन किया है। उसका अपना मन उससे मिलने को व्यग्र है—पर वह इसे गौण करके भैया के वैकल्य का ही वर्णन करती है, वह इतना जानती है—भाभी पर तो भैया ही का अधिक अधिकार है। पर वह यह विचारने का अवकाश ही नहीं पा रही है कि वह भाभी है ही नहीं। भैया का उससे विवाह हुआ ही नहीं है। भैया ने उसे अस्वीकार कर दिया है। इन सब बातों के लिये उसके मन में स्थान है ही नहीं। और अब, जब भैया ने माया का आह्वान स्वीकार कर लिया—भाभी को लेने जाने को कह दिया—तो बस, अब अरुणा को सोचने विचारने की कौन सी बात रह गई।

करुणा के पत्र में कितनी गहरी आन्तरिक आत्मीयता थी। भाया से यह छिपा न रहा। माया ने भी एक दृष्टि ही में करुणा पर अपने को न्यौछावर कर दिया था। फिर दिलीप को तो वह अपना मन दे ही आई है। दिलीप ने ब्याह नहीं किया। वह उसी की मूर्ति का दर्शन एकान्त रात में तारों की टिमटिमाहट में करता है। यह सत्य है या असत्य माया को इस पर विचारना नहीं पड़ा। उसे वह सब सत्य ही प्रतीत हुआ। और माया ने जैसे अवश होकर, आवेशित होकर यह पंक्ति लिखकर भेज दी।

पंक्ति भेजकर भी माया स्थिर न रह सकी। पिता के प्रति वह साहसी थी। दूसरे ही दिन उसने पिता से बातचीत की। उसने चाय प्याले में उड़ेलते हुए कहा—'बाबू जी चलिए, एक बार दिल्ली

घूम आयें ?'

राय साहब चौंक उठे। उन्होंने कहा—'क्यों ? क्या बात, दिल्ली क्यों जाना चाहती है।'

माया ने बिना इधर उधर किए कहा—'करुणा का खत आया है। उसने बुलाया है–मेरा भी जी उससे मिलने को चाह रहा है। लिखा है, माता जी का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। चलिए देख आयें।'

राय साहब ने सिर खुजाते हुए करा—'लेकिन, यह क्या ठीक होगा बेटी, वह बात चल कर खत्म हो गई–अब उसके बाद ?'

'तो उससे क्या ? हम लोग तो पहिले भी गए हैं। कुछ उसी बात पर निर्भर थोड़े ही है। माया ने यह कहने को तो कह दिया। पर उसका मुंह लाल हो गया। बेटी का यह भाव राय साहब से छिपा नहीं रहा। उन्होंने कहा—नहीं, नहीं, यह ठीक नहीं होगा माया, नहीं तुम करुणा को एक खत लिख दो–यहीं आकर मिल जाय।'

लेकिन माया ने ज़िद करके कहा—'नहीं बाबू जी, चलिए हमीं चलें। मेरा मन दिल्ली देखने को बहुत करता है। उस बार तो देख ही न सकी। इस बार एक हफ्ते रहूँगी।'

पिता ने बेटी का मन रखने को कहा—'अच्छा देखा जायगा। तेरी मां से सलाह लेनी होगी। कचहरी के काम से भी छुट्टी का मौका देखना होगा। अभी तो दो भारी २ केस हैं। दम मारने की भी फुर्सत नहीं है।'

'आठ दिन बाद मुहर्रम की छुट्टियां हैं, तभी चलें तो कैसा ?'

'देखूंगा, तेरी मां से भी तो सलाह करना होगी।'

परन्तु माया की मां बेटी को दिल्ली भेजने के लिए किसी तरह राज़ी न हो सकी। माया का दिल्ली जाना न हुआ। अब वह धड़कते कलेजे से अपने उस छोटे से पत्र की क्या प्रतिक्रिया होती है, इसी की प्रतीक्षा करने लगी। उस छोटे से पत्र में उसने अपना

सम्पूर्ण व्यंग, साहस, प्रेम, वैकल्य, अवशता कूट २ कर भर दी थी। आंखों में उसके करुणा की मधुर मूर्ति थी, पर रक्त की प्रत्येक बूंद में वह निष्ठुर कठोर अभिमान भरा दिलीप व्याप्त हो गया था।

३५

दिलीप ने उस पत्र को मुट्ठी में कस लिया। और इतनी ज़ोर से मुट्ठी भींच ली कि उसके नाखून उसके मांस में घुस गए। उसके ओंठ संपुटित हो गए। मन से कहने लगा, चल, और जाकर कह, मैं आ गया, चलो। परन्तु उसका मन जितना चंचल हो रहा था उतना ही जड़ उसका शरीर हो रहा था, उसमें न इतना साहस था, न बल कि माता से, पिता से, करुणा से मन की बात कह सके। माया को पत्र लिखना तो बहुत दूर की बात थी।

दिलीप आहत पशु की भांति कराहता हुआ इधर उधर फिरने लगा। उसका मन किसी भी काम में न लगता था। बहुधा वह बहुत ही जल्द सुबह उठकर जंगल में निकल जाता, और दिन २ भर घूमता रहता।

यद्यपि डाक्टर और अरुणा उसमे उदासीन हो गए थे, परन्तु उनकी ममता ने उन्हें विवश कर दिया। डाक्टर ने पत्नी से कहा—

'दिलीप की हालत दिन २ बिगड़ती जा रही है, देखती हो।

'तुम्ही देखो—दिलीप ही क्या और बेटों की ओर भी देखो।'

'खैर, अभी तो दिलीप का प्रश्न हल करो। यह तो हम पर एक भारी पारिवारिक विपत्ति आई दीखती है।'

'मैं कहती हूँ। अब मन की दुर्बलता से क्या होगा। मैं स्वीकार करती हूँ, वह मेरे पेट का बेटा है। तुम भी यही स्वीकार कर लो।

सब झंझट और द्विविधाएं खत्म हैं, मनचाही जगह उसका व्याह कर दो। इसके बाद दूसरों के भी ब्याह करदो। उनकी उम्र है। समय पर लड़कों की ब्याह शादी न होगी तो वे आवारा होंगे ही। तुम सब बातें समझकर भी नहीं समझ रहे हो।

'ऐसा ही करो फिर, तुम आज दिलीप से बात करो।'

परन्तु दिलीप से अरुणा देवी बातें करे—इससे प्रथम ही करुणा ने हंसते हंसते मां के गले में बांह डाल कर कहा—'मां, भाभी आ रही हैं।'

'कौन भाभी ?'

'वही कानपुर वाली।'

'पागल हो गई है, कैसे आ रही हैं ?'

'वाह, भैया जा रहे हैं—लेने को।'

'कौन भैया ?'

'बड़े भैया, और कौन ?'

'उसने तुझ से कुछ कहा है ?'

'कहा है, भाभी ने बुलाया है उन्हें।'

'बुलाया है, यह क्या कहती है।'

'भाभी का खत आया है, कि मुझे लेने को अपने भैया को भेज दो।'

'उसने क्या वहां कोई खत लिखा था।'

'मैंने लिखा था।'

'तू ने क्या लिखा था ?'

'लिखा था, भाभी, तुम आओ, भैया और अम्मा तुम्हें बहुत याद करते हैं।'

'पगली, मुझे क्यों नहीं बताया।'

'भूल गई अम्मां।'

'कहां है—खत देखूं।'

'भैया के पास है।'

कुछ देर अरुणा देवी चुप रही। फिर बोली—'जा तू अपना काम कर।'

रात को अरुणा देवी ने दिलीप से बात की। अरुणा ने कहा—'बेटा दिलीप, कहो, अब तुम्हारा क्या इरादा है। मुझसे दिल की बात कहो।'

'क्या बात मां ?'

'क्या मैं तुम्हारे ब्याह की बात कहीं दूसरी जगह पक्की करूं ?'

'इसकी क्या जरूरत है मां ?'

'तुम्हें जरूरत नहीं है—मुझे तो है। फिर तुम्हारे दूसरे भाई बहिन भी तो हैं, यह भी तो सोचो।'

'तो उनका ब्याह कर दो।'

'तुम बड़े भैया हो, हमारे बड़े बेटे हो, सो तुम से पहले उनका ब्याह कैसे हो सकता है ?'

'वाह, नहीं कैसे हो सकता। भीष्म ने अपना ब्याह नहीं किया—अपने छोटे भाइयों का किया या नहीं।' दिलीप ने हंस कर कहा।'

दिलीप की उस सूनी सी हंसी में एक विचित्र खोखलापन देखकर अरुणादेवी कुछ देर चुपचाप दिलीप का मुंह ताकती रही। फिर उसने दिलीप को पास खींच, उसके सिर पर हाथ फेरते हुये कहा—'दिलीप, तू मां से भी मन की बात नहीं कह सकता पगले ?'

'मन की बात कौन सी है मां ?'

'माया का खत आया है न ?'

'हां,' दिलीप ने सिर नीचा कर लिया।

'तो तू उसे लाने कानपुर जा रहा है।'

'यह तुम से किसने कहा ?'

'तूही कह, किसी के कहने से क्या ?'

'मैं क्या कहूँ ?'

'तूने करुणा से कहा था ?'

'वह हंसी की बात, उसने तुमसे जड़ दी, और तुमने सच मान ली। भौदूँ हो तुम मां.।'

'हां मैं भौदूँ। पर तेरा मन हो तो मैं उनसे कहूँ—राय साहेब को वे पत्र लिखें ?'

दिलीप बहुत चाह कर भी हां न कह सका। जैसे एक समूचा पहाड़ ही उसकी छाती पर आ गिरा हो। वह लड़खड़ाता हुवा बाहर को चला गया। बिना ही जवाब दिए।

३६

इसी समय भारत में महान् युगान्तरकारी परिवर्तन का युग आ पहुंचा। युद्ध ने ब्रिटिश साम्राज्य का ढांचा हिला डाला। और अब—अंग्रेज़ पिट कर भारत से भागने की अपेक्षा राजी खुशी भारत को छोड़ देने को तैयार हो गये। परन्तु इस काम में भी उनके मन में कुटिलता थी। जिस कूटनीति का आश्रय लेकर उन्होंने भारत की राष्ट्रीयता को खण्डित किया था। उसके अब भारत में तीन मुख्य दल थे। एक कांग्रेस का जिसके दल के नेता आजाद-नेहरू थे, दूसरे अछूतों का—जिसके नेता अम्बेडकर थे-तीसरे मुसलमान- जिनके नेता जिन्ना थे।

निस्संदेह कांग्रेस में मुसलमानों का अल्पमत था। जिन्ना ने कांग्रेस से प्रथक होकर मुस्लिम लीग अपना ली थी और वही उनके मत से मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था थी। सरकार ने यह बात अपने गूढ़ मन्तव्यों के आधार पर स्वीकार कर ली थी।

अछूतों के नेता अम्बेडकर अपना राग अलग अलाप रहे थे। हिन्दु सभा इस समय भी एक लुंज पुंज संस्था थी। उसमें जैसे कोई दम ही न था कांग्रेस को नेहरू और पटेल जैसों का ही नहीं–गांधी जी का भी बल मिला था। उसकी यातना कथाओं ने कांग्रेस के प्रति देश भर को कांग्रेस का भक्त बना दिया था। गांधी जी ही नहीं जवाहर लाल भी इस समय देवता की भांति पूजे जा रहे थे।

इसी समय अंग्रेजों ने भारत छोड़ना स्वीकार कर लिया और भारत के नेताओं के सामने यह प्रश्न रहा–कि अंग्रेज जब भारत को छोड़कर जांय तो भारत को किसे सौंप कर जांय। अछूतों की बात पीछे रहे–मुख्य तनाव कांग्रेस और मुस्लिम लीग में था। परन्तु मुस्लिम लीग जैसे मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था थी–वैसी कांग्रेस हिन्दुओं की संस्था न थी। हिन्दुओं का उसमें बहुमत तो था–परन्तु वह एक राष्ट्रीय संस्था थी। और उसमें मुसलमान भी थे। इस समय एक मुसलमान अब्बुलकलाम आज़ाद ही कांग्रेस के अध्यक्ष थे। कहने को कांग्रेस राष्ट्रीय सभा थी। और वह हिन्दु–मुसलमान–ईसाई–पारसी सभी को एक राष्ट्र समझती थी–परन्तु वास्तव में ये सब जातियों के प्रतिनिधि एक राष्ट्र के प्रतिनिधि न थे। खास कर मुसलमान जो अबसे कुछ साल पहिले अल्प संख्यक माने जाते थे। बराबर के हिस्सेदार बन रहे थे। वास्तव में इस्लाम केवल एक धर्म ही न था–वह धर्म की नींव पर खड़ा किया हुआ एक राजनीतिक और सामाजिक संगठन भी था। हिन्दु धर्म और हिन्दु भावनाओं से उसमें बड़ा भेद था। प्रारम्भ में गांधी जी के उद्योग से हिन्दु-मुस्लिम भाई भाई की आवाज़ कुछ दिन भारत में सुनाई दी। पर पीछे जिन्ना के कांग्रेस से प्रथक होने पर यह आवाज़ गायब हो गई। वे कहने लगे–न हम हिन्दुओं के भाई हैं और न उनके साथी। हमारा अपना एक प्रथक राष्ट्र है और उसके

प्रथक ही स्वार्थ भी हैं। इस प्रथक राष्ट्र का प्रथक स्वार्थ था, तो केवल हिन्दुओं के मुकाबिले–पर उसे ओट लिया कांग्रेस ने अपने सिर। इसलिऐ, जब एक तरफ कांग्रेस थी—जिसमें मुसलमानों का भी हिस्सा था–दूसरी तरफ मुस्लिम लीग जो केवल मुसलमानों ही की थी। इसका यह अर्थ था–कि हमारा माल तो हमारा है ही–तुम्हारे में भी हमारा हिस्सा है। कांग्रेस हिन्दुओं का समर्थन न कर सकती थी। वह तो अपने को असाम्प्रदायिक संस्था कहती थी–और गांधी जी अपनी साधुतावश सादा चैक मुसलमानों को देने को राजी थे। जब तक अंग्रेजों की अमलदारी थी–तब तक तो मामला थोड़ी सी नौकरियों तथा कुर्सियों ही का था। परन्तु अब उसने भारत के बंटवारे का रूप धारण का लिया था। अब मुसलमान जिन्ना के नेतृत्व में पाकिस्तान की मांग कर रहे थे। इन दलों के अलावा राजा महाराजा थे। जो चाहते थे कि अंग्रेजों के जाने पर वे स्वेच्छाचारी हो जाएं। जवाहरलाल ने उनके सम्बन्ध में यह व्यक्त किया था कि आज के भारत में राजा महाराजाओं की कोई गिनती नहीं है—संधि के अधिकार जो पत्थर की भांति निर्जीव पड़े हैं, या राज्यवंश के अधिकार-जिनका जनता की आंखों में कोई मूल्य नहीं है–निरर्थक है। तथ्य केवल मानवीय अधिकारों में है। उसी मापदण्ड को सामने रख कर हम समस्याओं पर विचार और निर्णय कर सकते हैं। समाजवादी लोग कह रहे थे कि–भारतवर्ष में एक समाजवादी ढंग की शासन व्यवस्था होनी चाहिए। जिसमें सभी व्यक्तियों को उन्नति का पूरा २ अवसर मिले, तथा सारा अधिकार जनता का हो। अम्बेडकर अपने को ६ करोड़ हरिजनों का नेता कहते थे। वे राष्ट्रीय हित से भी प्रधान अपने वर्ग को समझते थे। वे हरिजनों को हिन्दुओं से प्रथक मानना चाहते थे।

इंग्लैण्ड से मन्त्रियों का एक मन्त्रिमण्डल योजना लेकर आया।

योजना लेकर आया। योजना पर बहुत वाद-विवाद हुआ। अन्त में भारत का विभाजन हो गया। पाकिस्तान प्रथक कर दिया गया। पाकिस्तान के प्रथम गवर्नर जनरल जिन्ना बनाए गए। भारत के गवर्नर जनरल लार्ड माउन्टबैटन बने। संयुक्त रक्षा कौन्सिल के अध्यक्ष भी माउन्टबैटन बने। परन्तु भारत का गवर्नर जनरल तो लीग की सहमति से हुआ। पर पाकिस्तान के गवर्नर जनरल के लिए भारत की राय नहीं ली गई। शीघ्र ही कारण स्पष्ट हो गया। पाकिस्तान ने स्वच्छन्द आचरण प्रारम्भ कर दिया। जिन्ना ने जिस डाइरेक्ट एक्शन का संकेत किया था-वह तुरन्त अमल में लाया गया और देखते ही देखते पश्चिमी पंजाब और पूर्वी बंगाल में मार-काट-लूट-आग-बलात्कार-हत्या का बाजार गर्म हो गया। चारों तरफ से मार काट लूटमार के समाचार आने लगे। और देखते ही देखते-यह हत्याकांड ऐसा विराट रूप धारण कर गया जो मानव.जाति के इतिहास में अपना सानी नहीं रखता था। इस समय की पिशाच लीलाओं का वर्णन लेखनी नहीं कर सकती। लायलपुर, मण्टगुमरी, शेखू पुरा, लाहौर और गुजरानवाला सिक्खों के गढ़ थे। वहां से उन्हें बुरी तरह भागना और मरना पड़ा। लाहौर और कलकत्ते के बाज़ारों में भयंकर अग्नि की ज्वाला की गगन चुम्बी लपटें उठीं। निरीह औरत-बच्चे-बूढ़े-जवानों के आर्तनाद-घरों-कूंचों, बाज़ारों, अस्पतालों में दम तोड़ने वालों की हिचकियां सुनाई पड़ीं। कलकत्ते से आग की भयंकर लपटें नौआखाली-बिहार-इलाहाबाद-बम्बई और दिल्ली आ पहुंची।

३७

शराब में डूबे हुये और ऐयाशी की आग में झुलसे हुये मुगलतख़्त को फिर से वीरान लाल किले में आबाद करने के दिल्ली के मुसलमानों के मनसूबे जैसे पर लगा कर उड़ चले। विभाजन की बातें चल रही थीं, तभी जिन्ना का डाइरेक्ट एक्शन दिल्ली में बड़ी २ तैयारी कर रहा था। बन्दूक, गोले-गोली, तोपें, पिस्तौल, बम, ट्रान्समीटर सब कुछ दिल्ली की गुप्त हवेलियों में तैयार था। और दिल्ली को फ़तह करने की एक तारीख़ भी मुकर्रिर हो चुकी थी। इक्कीस अगस्त।

दरियागंज के एक मुस्लिम प्रेस में श्री खन्ना–एक युवक कई महीने से कम्पोज़िटर की नौकरी बजा रहा था। वह दिलीप का गोइन्दा था। सबके हुक्म से वह इस ड्यूटी पर तैनात हुआ था। नाम यहां उसने अपना बताया था 'शकूर' और रहने वाला शाहाबाद ज़िले के किसी देहात का। सभी उसे बूदम समझते थे। बनाते थे। वह घुन्ना बना अपना काम करता रहता था—हकीकत में रहने वाला था—वह कटरा नील का। यह मुहल्ला हिन्दू रईसों का मुहल्ला है। इसके द्वारा–प्रतिक्षण मुस्लिम षड्यन्त्रों की सूचनायें दिलीप को मिलती रहती थीं। एक दिन उसने देखा–उसके पड़ौसी कम्पोज़ीटर के सामने एक पर्चा पड़ा है–पर्चे में इक्कीस तारीख़ के डाइरेक्ट एक्शन का प्रोग्राम था। उस पर अर्जेन्ट लिखा था-और पास वाला युवक जल्दी २ इसे कम्पोज़ कर रहा था। खन्ना ने कहा–'यार, इस कदर बेतहाशा–किस काम में मशगूल हो।'

साथी ने कहा—'अरे शकूर, अर्जेन्ट परचा है, ज़रा मदद कर, कुछ लाईन कम्पोज़ करदे ज़रा।'

शकूर ने नख़रे से कहा—'वाह, मेरे पास अपना ही काम क्या कम है, फोरमैन दोपहर को ही कान ऐंठ लेगा।'

'नहीं यार, दस मिनिट ही का तो काम है। ले, ज़रा झपाके से हाथ चला।' परचा उसने उसके सामने सरका दिया शकूर अपने हाथ का काम छोड़ साथी की मदद करने लगा।

पर्चे को पढ़ते २ शकूर को पसीना आगया। तब क्या इक्कीस को दिल्ली उलट पलट हो जायेगी? उंगलियां उसकी केसों में बिखरे टाईप को ढूंढ रही थीं, और मन उसका मचल रहा था दूसरी ही जगह। उसे एक अवसर भी मिल गया। पिशाब करने के बहाने वह उठा। परचा उसने जेब में डाला। साथी का ध्यान दूसरी ओर था। पिशाब घर में घुस कर वह दूसरी ओर दीवार कूद गया, फिर वह भागा दिलीप के पास। कुछ दूर ट्राम ली—फिर पैदल।

थोड़ी ही देर में साथी का उधर ध्यान गया। कहां गया शकूर का बच्चा और पर्चा कहां है? सामने बिखरे काग़ज़ों में उसने बहुत टटोला। उसका चेहरा फक हो गया। क्षण भर बाद ही प्रेस में हलचल मच गई। शकूर की तलाश में गोइन्दे दौड़े।

परचा पढ़ कर दिलीप सक्ते की हालत में हो गया। वह सोचने लगा। इक्कीस को दिल्ली में भी—लाहौर की ज्वाला उठेगी। चांदनी चौक अनारकली की भांति धांय २ जलेगा। केबिनेट के सब हिन्दू वज़ीर मार डाले जायेंगे। यहां भी हिन्दू बालाओं पर बलात्कार होगा। नहीं—नहीं, मेरे रहते यह नहीं होगा। दिलीप ने कहा—'खन्ना, तुम्हीं को सब भुगतना पड़ेगा भाई। जो कुछ करना है—आज—अभी करदो। कल तो फिर इक्कीस है ही।' वह उठा। बक्स से काग़ज़ में लपेटा हुआ एक बण्डल निकाला। बण्डल उसे देते हुये कहा—'खूब होशियारी रखना। और अपने दांव का कोई मौका चूकना नहीं। बस फतहपुरी की मस्जिद पर, अन्धेरा होते ही।' खन्ना ने बण्डल लिया और चुपचाप एक ओर चल दिया। दिलीप ने भी साईकिल पकड़ी। ढाई बज रहा था। तीन बजे उसे

शरणार्थियों की विराट सभा में भाषण देना था। वह तीर की तरह सभा स्थल की ओर भागा।

बहुत आदमी जमा हो चुके थे। पर अभी मीटिंग का समय नहीं हुआ था। खबर थी-पुलिस मीटिंग को होने न देगी। दिलीप ने समय की प्रतीक्षा न की। मञ्च पर खड़े होकर वह गर्जा। वही पुर्जा उसके हाथ में था। भारतीय क्रान्ति के इतिहास में यह पहिला ही भाषण था-जब दिलीप ने हिन्दुओं को डाइरेक्ट एक्शन का मर्म समझा कर इस समय-तत्क्षण करने और मरने का संदेश दिया। दिलीप का प्रत्येक शब्द आग का शोला था। सभा के स्त्री पुरुष तरुण वृद्ध सभी का खून खौल उठा-संयम-धैर्य-व्यवस्था-कायदा-कुछ भी नहीं सोचा गया। दांत के बदले दांत और नाक के बदले नाक। बस यही नारा वहां बुलन्द हुआ। लोग पीड़ित थे, लुट चुके थे। किसी की आंखों के सामने उनकी बहुओं-बेटियों की लाज लटी गई थी-किन्हीं को अपनी बेटियों को अपने हाथ तलवार के घाट उतारना पड़ा। किन्हीं को अपनी पत्नी को आग में भस्म करना पड़ा था। पीढ़ियों की कमाई, बाप दादों का घर द्वार-देश-कारबार वे छोड़कर खानाबदोशों की भांति यहां आकर पड़े थे। उन्हें प्राणों का भला क्या मोह? जीवन की भला क्या चिन्ता, भले बुरे का भला क्या ज्ञान। प्रचण्ड प्रलय की ज्वाला उनके हृदयों में जल उठी। किसी प्रकार की बाधा व्यवस्था की आन मानने का वह वातावरण ही न था। शताब्दियों बाद खुले मञ्च पर मुंह खोल कर एक हिन्दू ने ललकारा था—'मारो।'

जब तक पुलिस सतर्क हो-तब तक तो लोग बिखर गए जनून में भरे हुए। दिलीप सीधा स्टेशन पहुँचा। इस सयम एक बलूची फौज की टुकड़ी एक शरणार्थियों की गाड़ी को लेकर जंकशन पर पहुँची थी। सभास्थल से भागे हुए कुछ तरुणों ने समझा

होते ही छुरेबाजी होने और गोलियां चलने लगी। देखते २ लाशें तड़पने लगीं। इस समय दिल्ली स्टेशन एक भटियारखाना बना हुआ था। विशाल स्टेशन के प्लेट फार्म पर तिल धरने को जगह न थी। अनेक शरणार्थी अपना चौका चूल्हा–चर्खा–खाट पीढ़ी लिए जहां तहां पड़े थे। दिलीप ने ज्यों ही गोली की आवाज़ सुनी–वह दो दो चार २ छलागें भरता हुआ उधर पहुंचा। इसी समय सामने एक रेल के डिब्बे में जोरों का भड़ाका हुआ। ऐसा मालूम हुआ जैसे अभी स्टेशन फट पड़ा। स्टेशन पर थोड़ी सी हथियार बन्द फौज तैनात थी। वह अभी बलूचियों की ओर जा ही रही थी कि–इस धड़ाके की ओर दौड़ पड़ी। डब्बे को उसने घेर लिया। डब्बे में अमरोहे–मुदाराबाद जाने वाले मुसलमानों का एक गुट था। गुट से समान के ढेर–छुरे–बम–पिस्तौल और विध्वंसक सामग्री मिली। सभी को गिरफ्तार कर लिया गया। परन्तु बहुतेरे आंख बचाकर भीड़ में मिल गए। इस समय तक स्टेशन पर छुरेबाजी और तलवार के खुले हाथ चल रहे थे। बीसों लाशें तड़प रहीं थी। लोग जिधर जिसका मुंह उठता था भाग रहे थे।

सदर बाजार–हौजकाजी–फतहपुरी–बल्लीमारान में कोई हिन्दू सही सलामत नहीं जा आ रहा था। खन्ना इस समय फतहपुरी में बंडल बगल में दबाए घूम रहा था–अब उसमें अंधकार होने का धैर्य न रहा। भीड़भाड़ की वजह से माल से लदी बहुत सी ट्रकें वहां अड़ी खड़ी थीं। उन्हीं में से एक पर चढ़ कर उसने खूब जोर से वह बंडल फतहपुरी मस्जिद के द्वार पर फेंक दिया। बण्डल का बम फटते ही बड़ा भारी धड़ाका हुआ। और भगदड़ मच गई। मुसलमानों को पहिली बार भय का सामना करना पड़ा। चारों ओर से शरणार्थियों और मुसलमानों ने अपनी २ घात पाकर छुरे चलाने आरम्भ कर दिए।

शुक्रवार का दिन था। और जामे मस्जिद में जुमे की नमाज अदा करने को कोई साठ हजार मुसलमान जमा हो गए थे। सम्भवतः यहां से डाइरेक्ट एक्शन होने वाला था। दिलीप ने जल्दी जल्दी इसकी सूचना डिप्टी कमिश्नर को दी। डिप्टी कमिश्नर—जितनी सेना और पुलिस ला सका, लाकर उसने जामा मस्जिद को घेर लिया। नमाज अदा होने के बाद उसने दस दस आदमियों को बाहर आने का आदेश दिया। तनी हुई संगीनें देख कर मुसलमान घबरा गए। दस दस की संख्या में वे आने लगे। तलाशी लेने पर—उनके पास छुरे—बम—पिस्तौलें बरामद होने लगीं। देखते ही देखते छुरों और पिस्तौलों के ढेर हो गये। बहुत आदमी लारियों में भर कर जेल भेज दिये गये।

दुर्भाग्य से इस समय दिल्ली में सेना बहुत कम थी। सेना तथा पुलिस में अधिकांश मुसलमान भरे थे। जिन पर भरोसा नहीं किया जा सकता था—डिप्टी कमिश्नर ने मेरठ से सहायता मांगी थी—जिसकी क्षण २ आशा की जा रही थी। जामा मस्जिद की तालाशी से निबट कर डिप्टी कमिश्नर ने एक टुकड़ी सेना के साथ दिल्ली के संदिग्ध मुहल्लों में गश्त लगाना आरंभ किया। चितली कबर के पास होकर वे एक गली में घुसे। इसी गली के एक मकान में विद्रोहियों का अड्डा था। उन्होंने समझा—कि हमारा भेद पाकर पुलिस ने हम पर रेड की है। असंयत होकर उन्होंने गोली दागना आरम्भ कर दिया। सेना ने भी मोर्चा गांठा। दोनों ओर से गोलियों की बौछार चलने लगी। सेना के सिपाही और गोली बारूद चूकने लगा। चिन्ता की सिकड़न डिप्टी-कमिश्नर के माथे पर पड़ी—इसी समय मेरठ से सहायता आगई। आठ घन्टे की अग्निवर्षा के बाद सब लोग पकड़ लिऐ गये। बहुत से बम—ट्रान्समीटर हाथ लगे। यहीं पर सब्जी मण्डी के एक जमींदोज खतरनाक अड्डे का पता चला। परन्तु मिलिटरी की

सहायता मिलने से प्रथम ही सब्जीमण्डी के मोर्चे से बम और गोलियां—रहा चलतों को भूनने लगी। दिलीप ने सुना, कुल इक्कीस तरुणों को लेकर वह उस मोर्चे पर पहुंचा, जिसके सामने लाशों का ढेर लगा हुआ था। इन इक्कीस तरुणों के पास सिर्फ तीन बन्दूकें थीं। उनसे कोई काम नहीं निकल सकता था। मिलिटरी की सहायता भी समय पर नहीं पहुंच रही थी। यदि वह रात उस अड्डे को नियन्त्रित नहीं किया जाता है—तो शहर की खैर नहीं है। अब तक पचासों मकान जला डाले गये थे—जिन में जलती हुई आग की लपटें उस रात में बड़ी भयानक लग रहीं थी। दिलीप को सूचना मिली—मुहल्ले के कुछ रईसों के पास बन्दूकें हैं। जिन्हें उन्होंने मखमली खोलों में सजाकर रख छोड़ा है—इस समय भी वे उनसे काम लेना नहीं चाहते। सब घरों में छिपे बैठे हैं। दिलीप ने तय किया पहिले उन बंदूकों को ही कब्जे में लेना चाहिये। तीन बन्दूकों को ताने हुये वे एक २ करके उन रईसों के बंगलों में घुस गऐ और जबर्दस्ती उनकी बन्दूकें छीन लाये। इनमें बहुतेरों ने पुलिस में फोन किये कि डाकू हमारी बन्दूकें छीन ले गये हैं। पर पुलिस किसकी सुनती थी। अब सत्रह बन्दूकों से लैस होकर दिलीप ने अपने तरुणों को हुक्म दिया कि प्रत्येक युवक पड़ौस के घरों से एक २ तवा उठा लाकर छाती से बांधलो। आनन फानन तवे छातियों पर बन्ध गये। छाती पर तवे बांध कर ये इक्कीस तरुण अपनी सत्रह बन्दूकों को ले-जितना जहां गोली बारूद मिला, कब्जा कर पेड़ों और मकानों की आड़ में मोर्चे बना कर फायर करने लगे। वह एक ऐसा जबर्दस्त प्रतिरोध था—जिसने आततायियों को बाहर निकलने से रोक दिया। रात भर दोनों ओर से गोलियां चलती रहीं। चार बजे सुबह मिलिटरी ने आकर अड्डे पर बम और मशीनगनों से आक्रमण किया। और पहर दिन चढ़ते २ अड्डे पर अधिकार कर लिया।

ये दो दिल्ली के विद्रोहियों के प्रबल अड्डे थे। यों तीन दिन तक दिल्ली की गली गली कूचा कूचा में मारकाट होती रही। पर मुसलमानों का बल टूट गया। और वे भयभीत होकर भागने लगे। हिन्दुस्तान की विजय सुपना हो गई। पाकिस्तान पहुंचना दूभर हो गया। गली-कूचों में लाश सड़ने लगीं। सारा शहर दुर्गन्ध से भर उठा। सब व्यवस्था छिन्न भिन्न हो गई। मुसलमान अपने बाल-बच्चों, परिजनों, को तांगों पर, ठेलों पर, मोटरों पर, घोड़ों पर लादकर पंक्ति पंक्ति उदास और भयभीत दृष्टि से दिल्ली और लालकिले पर हसरत की नज़र डालते हुए घर बार छोड़कर हुमांयु के मकबरे की ओर जा रहे थे। शहर में सिख शरणार्थी और संघ के तरुण बफरे बाघ की भांति सीना ऊंचा करके घूम रहे थे। दिल्ली ने सात सौ वर्षों के बाद ये दिन देखे थे। यह दिल्ली तो वास्तव में मुसलमानों ही की नगरी थी। यहां की भाषा, रंगत, अमीरी, नज़ाकत, शहरियत सभी कुछ मुसलमानों का था। सातसौ बरस तक हिन्दू अर्ध दासता भोगते रह कर दिल्ली की चौखट पर माथा टेकते रहे थे। उसी दिल्ली को, वैसा ही भरापुरा गुलज़ार छोड़, उस पर हसरत की नजर डालते हुए, उसकी सम्पन्न सड़कों पर सदा के गुलाम हिन्दुओं को शेर की तरह घूमते देखते हुए—चले जा रहे थे। यह काल चक्र का परिवर्तन था। जो अभूत पूर्व था।

३८

डाक्टर ने सूखे मुंह घबराये आकर अरुणा से कहा—'दिलीप रंगमहल में आग लगाने गया है, बहुत से संघी गुण्डे उसके साथ हैं।'

अरुणादेवी का मुंह भय से सफेद हो गया। उन्होंने कहा—'लो

अब बानू का क्या होगा।'

'मेरी समझ में नहीं आता, क्या किया जाये।'

'तुम्हें खुद जाकर उन्हें यहां ले आना चाहिये था।'

'मैंने बहुत कहा, पर उन्होंने किसी तरह आना स्वीकार नहीं किया।'

'दिलीप को तुम समझाओ।'

'बेकार है, उस पर खून सवार है। क्या मैंने उसे कम समझाया है, समझाने बुझाने का यह नतीजा हुआ कि आज आठ दिन से उसकी सूरत तक नहीं दिखाई दी।'

'लेकिन बानू की सुरक्षा तो करनी होगी, चाहे भी जो हो।'

'पर हम कर भी क्या सकते हैं?'

'मुझे जाना होगा, क्या कोई सवारी मिलेगी?'

'पागल तो नहीं हो गई हो – देखती हो शहर का क्या हाल है।'

'जो भी हो। अरुणादेवी ने अब एक क्षण भी खोना खतरनाक समझा, अंग पर दुपट्टा डाल जैसी खड़ी थी चल खड़ी हुई।'

'यह क्या कर रही हो। सुनो तो।'

'तुम समझते नहीं हो, बानू की जान पर आ बनी है।'

'तो सुशील को साथ लेकर मैं फिर जाता हूँ।'

'नहीं और किसी का काम नहीं है। बानू के बिना हुक्म-मैं किसी से उनके सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकती।'

'तब ठहरो, मैं भी चलता हूँ।' डाक्टर भी अरुणादेवी के साथ हो लिये। चलती बार सुशील को उन्होंने सावधान करके कहा—'हमें देर लग सकती है। संभव है रात को भी न आ सकें, पर तुम चिन्ता न करना।'

सुशील—शिशिर और करुणा—भय और उद्वेग से देखते रह

गये—और ये दोनों कर्मठ पति पत्नी पैर बढ़ाते हुये मुसलमानों के मुहल्ले में घुसे ।'

चलते २ डाक्टर ने कहा—'सुनती हो, हम लोग बड़े ही खतरे में जा रहे हैं। कोई भी मुसलमान अपने घर से हमें गोली मार सकता है।'

'कोई डोली या सवारी मिल जाती तो ठीक था।'

'संभव नहीं है' उन्होंने चारों ओर व्याकुल दृष्टि से देखा। परन्तु अरुणा देवी द्रुतगति से कदम बढ़ाती चली जा रही थी। फर्राशदाना आ गया—वे गली में घुसे—विचित्र शब्द—शोरगुल और भय का वातावरण—जैसे उन्हें निगले जा रहा था—परन्तु ये दोनों मूर्तियां तो आगे बढ़ती जा रही थीं। गली सूनी थी—एकाध कुत्ता कहीं भूंस रहा था—दोनों—रंगमहल के निकट सही सलामत जा पहुँचे। सामने कोई पचास कदम पर रंग महल था। रंग महल की ओर से बड़ा भारी शोर आ रहा था। दिलीप का दल वहां पहुँच चुका था। दल में बहस हो रही थी। दल के लोग कह रहे थे—पहिले रंगमहल को लूट लो—उसके रहने वालों की मार डालो—पीछे उसमें आग लगादो। दिलीप कह रहा था—नहीं, आग लगादो। सब कुछ भस्म हो जाने दो।

इसी समय डाक्टर और अरुणा देवी वहां पहुँच गये। भीड़ से उन्होंने एक शब्द भी न कहा—न उन्होंने दिलीप की ओर आंख उठा कर देखा—वे दोनों भीड़ को धकेलते हुए भीतर घुस गये। भीड़ में कुछ लोग डाक्टर को पहचानते थे कुछ नहीं। जो पहचानते थे—वे जरा द्विविधा में पड़े। इस समय—दिलीप के माता पिता को यहां आने का क्या काम था?

वे दिलीप का मुंह ताकने लगे। उनकी बहस बन्द हो गई। जो नहीं जानते थे—वे भी जान गये—दिलीप के पिता और माता आये हैं। उन लोगों का वहां आने का उद्देश्य क्या है। यही

जिज्ञासा सब की आंखों में फैल गई। उनका विवाद भी जहां का तहां रुक गया।

डाक्टर और अरुणा देवी वहां रुकी नहीं, भीतर की पौर पर चढ़ती चली गई। दिलीप ने आगे बढ़कर कहा–'बाबूजी, आप वहां कहां जा रहे हैं, जरा ठहरिये।' डाक्टर ने रुक कर पीछे को देखा।

दिलीप ने पास पहुँच कर कहा–'इस समय आप यहां क्यों आये हैं। कृपाकर घर चले जाइये।' डाक्टर ने कहा–'दिलीप, मैं बाप होकर बेटे से यह नहीं पूछता कि वह इतनी भीड़ को लेकर यहां क्यों आया है–फिर बेटा बाप से क्यों जवाब तलब करता है। हरएक आदमी का जुदा २ मतलब होता है। जुदा जुदा उद्देश्य होता है। तुम्हारा उद्देश्य कुछ और है और मेरा कुछ और। हम दोनों के दो भिन्न मार्ग हैं। यह मैंने जान लिया है। तुमसे कुछ कहना बेकार है–और अब तुम यह जानलो –मुझ से भी कुछ कहना बेकार है।'

'आप समझते नहीं हैं बाबू जी, हम इस रंगमहल में आग लगाने जा रहे हैं। आप यहां से चले जाइए।'

'मैं खूब समझता हूँ। शैतान तुम पर सवार है। परन्तु बेटे के पाप में मां बाप का भी हिस्सा है। यहां, रंग महल में एक बानू रहती है, वे अकेली महिला हैं। उनकी प्राण रक्षा करने–या उन्हीं के साथ जल मरने के लिऐ हम लोग आए हैं। तुम भी यह समझ लो।'

'आप गलती कर रहे हैं बाबू जी।'

'गलती तो हमने तभी की–जब तुम्हें हम लोगों ने छाती से लगाकर दूध–पिला कर पाला। अब तो उस गलती का परिमार्जन कर रहे हैं दिलीप।'

अभी बाप बेटे में ये बातें हो रही थीं–अरुणादेवी भीतरी आंगन

लांघ चुकी थीं। दिलीप दौड़कर उनके पास पहुंचा। और मां के पैर पकड़ कर कहा–'मां, यहां से चली जाओ, चली जाओ मां।'

अरुणा का चेहरा पत्थर की भांति कठोर हो गया–उन्होंने कहा–'दिलीप, मुझे तू मत छू, अधर्मी, दूर हो मेरी आंखों से।'

दिलीप ने आज तक अरुणा की यह मूर्ति न देखी थी। वह सक्ते की हालत में खो गया। अरुणा आगे बढ़कर भीतरी दालान में चली गई। इसी समय उन्हें सामने बानू खड़ी दिखाई थी।

बानू का मुंह सफेद हो रहा था–रक्त की एक बूंद भी उसके मुंह पर न थी। वह दौड़कर अरुणा देवी के पास आकर बोली–'इस समय तुम यहां क्यों आई, तुमने यह क्या किया बहिन।'

किन्तु अरुणा ने लपक कर बानू को छाती से लगा लिया। इसी समय लपकते हुऐ डाक्टर अमृत राय पहुंच गऐ। उन्होंने कहा–'बन्दूक कहां है बानू।'

'भाई जान, आप बहिन को लेकर अभी चले जाइऐ। मुझ पर जो बीतेगी में देख लूंगी। हाथ जोड़ती हूं। भाईजान।'

लेकिन डाक्टर लपक कर भीतर घुस गऐ। बन्दूक उन्होंने उठा ली। और जल्दी २ कारतूस डालकर उसकी नाल दिलीप की ओर सीधी की।'

'यह क्या?' बानू ने बन्दूक की नाल कांपते हुऐ दोनों हाथ में पकड़ कर कहा–'वे सैंकड़ों हैं, एक बन्दूक मे किसे २ मारेंगे–आप।'

'औरों से मुझे सरोकार नहीं–मैं दिलीप को–इस शैतान बेटे को गोली मार दूं तो बस। उन्होंने बन्दूक सीधी की। दिलीप सामने सीधा तना खड़ा था। उसका नाम सुनते ही बानू की पलकें फैल गई। उन्होंने आंख उठाकर दिलीप की ओर देखा–होंठ फड़के-उनमें से एक अस्फुट ध्वनि निकली–'दि–ली–प।'

'दिलीप ही है बहिन, देख लो इसे आखिरी बार, और पहिली बार' अरुणा ने बानू की आंख में आंख डाल कर कहा। फिर पति

को संकेत किया—मार दो गोली। लेकिन बानू उनके अंकपाश से निकल कर तेजी से झपटते हुए बन्दूक की नाल के आगे आ खड़ी हुई। उसने कहा—'खुदा के लिऐ भाईजान बन्दूक, मुझे दे दीजिऐ। उसे जो जी चाहे करने दीजिऐ।' और उसने एक तौर से बन्दूक उसके हाथ से छीन ली। दिलीप ने कहा—'आप चाहें तो घर से बाहर जा सकती हैं, हम लोग आपको चले जाने देंगे—मगर हम रंगमहल में जरूर आग लगाऐंगे।' बानू ने एक बार दिलीप की ओर आंख उठाकर देखा। पर जवाब कुछ नहीं दिया। जवाब दिया डाक्टर ने। जैसे बानू की आत्मा में प्रविष्ट होकर उन्होंने बानू के मन की बात जान ली। उन्होंने कहा—'हम लोग बाहर नहीं जाऐंगे, जाओ, तुम अपना काम करो।' उन्होंने उसकी ओर से पीठ फेरली। और कहा—'अब हम तीनों के अतिरिक्त घर में दो आदमी केवल और हैं, एक बूढ़ी दासी—दूसरे रहमत मियां।'

बानू अब साहस करके कदम बढ़ा कर दिलीप के सामने जा खड़ी हुई। उन्होंने स्थिर शान्त—स्वर से कहा—'दिलीप. मियां रहमत और बुआ को तुम चला जाने दो। खुदा तुम्हारा भला करे।'

लेकिन रहमत मियां और बूढ़ी दासी ने जाने से इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा—'यह नहीं होगा। आपके कदमों में हम भी सदके।" रहमत ने एक करारी आवाज लगाकर दिलीप से कहा—'जाओ मियां, तुम अपना काम करो।'

परन्तु दिलीप के निर्णय तक अधीर भीड़ ने सब्र नहीं किया। उसने रंगमहल में आग लगा दी। देखते २ आग ने फाटक को पकड़ लिया। और घर का आंगन धुयें से भर गया। बानू—और डाक्टर दम्पति भीतर चले गए। दिलीप किंकर्तव्यविमूढ़ वहीं खड़ा रहा।

आग ने रंगमहल को ग्रस लिया। दरवाजे और खिड़कियां धांय २ जलने लगीं। आग की लाल २ लपटें हवा में लहराने

लगीं। सम्भवतः इसी समय पुलिस या मिलिटरी की एक टुकड़ी उधर जा निकली। यह देख आततायियों की भीड़ भाग गई, डाक्टर दम्पति—और बानू के साथ दिलीप भी आग में घिर गया।

किन्तु आग अभी तक यहां भीतरी कक्ष में नहीं पहुँची थी। दिलीप अब एक क्षण को भी देर न कर भीतर की ओर लपका। उसने इधर उधर देख एक बड़ी सी रस्सी [illegible] की खिड़की में बांधी। और करुणा के पास आकर कहा—'अम्मा ईश्वर के लिये इस खिड़की राह तुम बाहर निकलो।'

करुणा ने कहा—'तुम्हें जो कुछ कहना हो—बानू से कहो। हमारा जो कुछ होगा—उन्हीं के साथ।'

दिलीप ने बानू के पास जाकर कहा—'मां को आप समझाइये—जो होना था हो चुका कृपा कर आप इस खिड़की राह निकल जाइये—आग अभी यहां नहीं पहुँची है।'

किन्तु बानू ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। दिलीप ने कहा—'आप लोग यदि मेरी बात नहीं सुनते हैं तो मैं भी यहीं जल मरूंगा।'

दिलीप भी उनके साथ आग में घिर गया है, इस पर बानू का ध्यान ही नहीं गया था। जब उसकी यह बात सुनते ही उन्होंने घबड़ा कर कहा—'दिलीप तुम इस खिड़की की राह निकल जाओ, खुदा के लिए जल्दी करो।' मातृ हृदय जैसे आकुल व्याकुल होकर बानू की वाणी में व्याप गया। इसी समय पहिली बार दिलीप ने बानू के मुंह की ओर देखा। पहिली बार दोनों की चार आंखें हुईं। और किसी अज्ञात प्रेरणा ने उसे बानू के पैरों में झुका दिया। उसने कहा—'आपके हाथ सभी की जान है। आप न जायेंगी तो मां और बाबू जी भी नहीं जायेंगे। मैं भी न जाऊंगा। आप ही हम सबको बचा लीजिये। आपके खुदा के नाम पर।' न जाने अन्तरात्मा की किस गहराई से दिलीप की आंखों में आंसू

भर आये।

बानू का मन बदल गया। उन्होंने अरुणा से कहा - 'चलो बहिन, दिलीप की बात ही रहे,' उन्होंने डाक्टर की ओर देखकर पुकारा—'भाईजान, जल्दी कीजिये।'

'आप चलेंगी।'

'चलूंगी भाईजान।'

फुर्ती से डाक्टर खिड़की पर आ गये। रस्सी को जांचा। फिर कहा—'मैं आपकी कमर में रस्सी बाँधता हूँ। आप धीरे धीरे उतरिए।'

'नहीं—पहिले अरुणा बहिन।'

अरुणा ने कहा—'यह नहीं हो सकता।'

'आप समय बर्बाद कर रही हैं।' दिलीप ने अधीर होकर कहा—'बाबू जी आप नीचे जाकर रस्सी साधिये। मैं एक एक सबको उतारता हूँ।'

डाक्टर चुपचाप रस्सी के सहारे नीचे उतर गये। नीचे पहुँच रस्सी तानकर उन्होंने कहा—'पहिले बानू।'

बानू ने कहा—'नहीं बुआ।'

दिलीप ने गेंद की भांति बूढ़ी दासी को उठाकर रस्से पर लटका दिया। बुढ़िया सही सलामत रोती चीखती नीचे पहुँच गई।

'अब बहिन तुम' बानू ने अरुणा से कहा—किन्तु अरुणा ने कहा—'यह नहीं होगा-तुम जाओ पहिले।'

आग ने अब कमरे को छू लिया। दिलीप ने गुस्सा करके कहा—'आप सुनती नहीं हैं, क्या आपको भी उसी तरह उठाना होगा।' वह बानू की ओर बढ़ा, निरीह की भांति बानू आगे बढ़ी। दिलीप ने उन्हें सावधानी से नीचे उतार दिया—इसके बाद अरुणा-और रहमत मियां को भी। यह सब करते कराते आग खिड़की तक आ पहुँची और ज्यों ही दिलीप ने रस्सी पर हाथ डाला। रस्सी का वह

सिरा जल उठा। रस्सी दिलीप के भारी बोझ को लिये नीचे आ रही। दिलीप सिर के बल गिरा—सिर फट गया। दिलीप बेहोश हो गया। बानू दौड़कर उसके ऊपर गिर गई।

इस समय वहां बहुत आदमी एकत्रित हो गये थे—वास्तविक घटना का किसी को पता न था। आग बुझाने वाले—पुलिस वाले मेलिटरी भी आ पहुंची थी। सारा रंगमहल धायें २ जल रहा था। लोग इस समय इस तरुण—दिलीप की तारीफ़ कर रहे थे—जिसने वीरतापूर्वक इतने आदमियों की जान बचाई थी।

३६

होश आने पर दिलीप ने आंखें खोलीं। उसने इधर उधर नज़र घुमाई। एक चेहरे पर उसकी नज़र अटक गई। पलंग के पास एक स्त्री कुर्सी पर बैठी थी। वह झुक कर उस समय ध्यान से उसे देख रही थी। चेहरा उसने पहचाना नहीं। 'तुम कौन हो।' यही शायद वह कहना चाहता था—परन्तु—होंठों से बोली नहीं फूट रही थी। होंठ केवल हिल कर रह गये। उसने आंखें बन्द करलीं। जो स्त्री पास बैठी थी—उसने दो तीन चम्मच जल उसके मुंह में डाल दिया।

जल पीकर उसने फिर आंखें खोली। अब वह पूरे होश था। उसने धीरे से कहा—'आप कौन हैं ?'

स्त्री मुस्कुरा दी। उसने जवाब नहीं दिया। दिलीप एक टक उस मुख को देखता रहा। उसने अपनी स्मृति पर बहुत ज़ोर दिया सिर दर्द करने लगा। उसने फिर आंखें बन्द करलीं। पास बैठी स्त्री ने धीरे २ उसके माथे पर हाथ फेरा। उस कोमल—स्निग्ध हाथ का स्पर्श पाकर दिलीप में जैसे नए प्राणों का संचार हो गया।

उसने आंखें खोल कर उसे देखा और पूछा--'आप--आप--कौन हैं ?'

'क्या पहचानते नहीं ?'

'न' दिलीप ने सिर हिला दिया। स्त्री ने कहा—

'तब जाने दीजिए, पहचानने की क्या ज़रूरत है। जांऊ, बाबूजी को खबर कर देती हूँ। और स्त्री तेज़ी से उठ कर चली गई। उसे रोकने के लिए दिलीप का हाथ उठा का उठा रह गया। थोड़ी ही देर में उस कमरे में डाक्टर--अरुणा--शिशिर--सुशील--करुणा घर के सभी आदमी आ गए। सबके पीछे बानू।

अरुणा ने आंखों में आंसू भर कर पूछा—'कैसा है दिलीप ?'

दिलीप ने मां का हाथ पकड़ लिया। उसने कहा—'मैं क्या बहुत बीमार हो गया था मां।'

'आज चौथा दिन हैं तभी से बेहोश पड़े हो।'

'मैं कहां हूँ ?'

'क्यों, अपने घर ही में तो हो।'

'करुणा कहां है ?'

'मैं यह हूँ भैया।' करुणा आगे आई। उसे ध्यान से देखकर वह 'अच्छा' कह कर चुप हो गया। कुछ देर बाद उसने अपनी स्मृति पर ज़ोर देखकर कहा—'उस घटना में सब बच गए न, सब लोग कहां हैं ?'

'यहीं हैं सब।'

दिलीप ने अपनी आंख घुमाई। बानू सबसे पीछे खड़ी थी। उनकी ओर देखकर दिलीप ने आंखें नीची करली। अरुणा ने कहा—'यहां आओ बहिन, यहां बैठो।'

बानू आकर दिलीप के सिरहाने खड़ी हो गई। दिलीप ने फिर उसकी ओर देखकर कहा--'आप क्या मुझसे नाराज़ नहीं हैं ?'

उत्तर में बानू तकिए के सहारे बैठ दिलीप के सिर पर हाथ फेरने लगी।

दिलीप ने कहा—'समझ गया, आपने माफ कर दिया।' पर इसी समय उसे फिर उस मुख की याद आगई, जिसे उसने होश में आने पर पहिली बार देखा था। उसने आंख उठा कर चारों ओर देखा था अनेक चेहरे थे—पर वह नहीं था। उसने फिर आंखें बन्द करली। वह उसी मुख का ध्यान करने लगा। वह कौन थी। इसी समय दो गर्म बूंद उसके माथे पर गिरी। दिलीप ने आंख खोल कर देखा। बानू के आंसू ढरक रहे थे।

उन आंसूओं को देख दिलीप की अन्तरात्मा जैसे कराह उठी। अपने कुकृत्य पर जैसे वह लज्जा और ग्लानि से दब गया। पर उसके मुंह से शब्द न निकले। किन्तु न जाने कहां से आंसू उसकी आंखों से भी ढरकने लगे।

इतनी देर बाद डाक्टर ने कहा। अब इसके पास भीड़भाड़ न करो। फोन कर दिया है। डाक्टर भटनागर आ रहे हैं। चौपड़ा भी हैं। वे देखलें तो प्रिस्क्रिपशन लिखा जाय।

फिर उन्होंने दिलीप को लक्ष्य करके कहा—'कुछ तक़लीफ़ तो नहीं है दिलीप।'

'सिर में बहुत दर्द है।'

'ठीक है, अच्छा अब सब कोई यहां से जाओ, इसे आराम की बहुत ज़रुरत है। खतरे की कोई बात नहीं है अब।'

इसी समय डाक्टर लोग आगऐ। सब लोग कमरे से बाहर चले गऐ। सलाह मशवरा करके नुसख़ा लिखा। डाक्टरों के जाने पर अरुणा और डाक्टर ने उसका हाथ मुंह साफ किया—थोड़ी गर्म काफ़ी दी। जख्मों पर मरहमपट्टी की, और उसे आराम करने को कह कर चले गऐ। थोड़ी देर बाद दिलीप सो गया।

बहुत देर तक सोता रहा। आंख खुली तो देखा—वही मुख। उसी मुख ने कहा—

'अब तबीयत कैसी है?'

'अच्छी है।' दिलीप देर तक एकटक उस मुख को देखता रहा, फिर एकाएक बिजली सी उसकी आंखों में कौंध गई। उसने कांपते कण्ठ से कहा—

'तुम ?'

मुख ने हंस कर कहा–'पहिचान लिया।'

'हूँ।' दिलीप ने हाथ बढ़ा कर उसका हाथ पकड़ लिया। उस मुख की मलिका ने हाथ नहीं खींचा—किन्तु कोमल स्निग्ध स्वर से कहा–'कुछ चाहिये ?'

'नहीं।' दिलीप चुपचाप आंखें बन्द किये–बहुत देर तक उन कोमल—चम्पे की कली के समान उंगलियों को अपनी मुट्ठी में कसे चुपचाप पड़ा रहा। फिर उसने आहिस्ता से हाथ छोड़ दिया आंखें खोली। पूंछा–'कब आईं ?'

'आज पांचवां दिन है।'

'बाबू जी भी हैं ?'

'नहीं। आए थे—पर चले गये। एक दो जरूरी खून के मुक़दमें थे।'

'तुम नहीं गईं ?'

'करुणा ने नहीं जाने दिया।'

कुछ देर दिलीप चुपचाप नीचे ताकता रहा। फिर बोला– 'तुम्हें क्या मेरी बीमारी की खबर दी गई थी ?'

'हां।'

'करूणा ने खत लिखा था ?'

'नहीं, तार दिया था।'

'बाबू जी ने आपत्ति नहीं की, तुम्हें लेकर चले आये।'

'आपत्ति की थी, पर मैं हठ करके चली आई।'

'और अब ?'

'अब भी, वे तो छोड़ना नहीं चाहते थे, लेकिन मैं रह गई।'

'क्यों ?'

'करुणा ने जिद की, नहीं जाने दिया।'

'बस या और कुछ।'

'और कुछ क्या ?'

दिलीप ने फिर उसकी कोमल उंगलियां मुट्ठी में कस लीं। फिर उसकी आंखों में आंख मिलाकर कहा—'अपने मन से नहीं रहीं।'

'मेरा भी मन था।'

'अच्छा' दिलीप ने फिर उस का मुंह देखा। मुंह से हंसी फूटी पड़ रही थी। कुछ रुक कर दिलीप ने कहा—'तुम्हारा मन क्यों था भला।'

'मेरा एक काम था—सोचा, उसे निपटाती चलूं।'

'कौन काम था ?'

'जब मैं पिछली बार आई थी—मैंने एक आदमी को एक घड़ी दी थी, उसी घड़ी की बात पूछनी थी।'

'क्या बात पूछनी थी ?'

'कि घड़ी ठीक २ चल भी रही है या ठप्प पड़ी है।'

दिलीप ने जवाब नहीं दिया। आहिस्ते से वह हाथ खींच कर अपने वक्ष स्थल पर रख लिया। वक्ष पर उस हाथ को अपने हाथ से दबा कर कहा—'देखो ज़रा, घड़ी चल रही है या ठप्प पड़ी है।,

और उस मुखरा मुख की बोलती बन्द हो गई। उसकी फूटती हंसी भी गायब हो गई। उस पर प्रभात की अरुण आभा की भांति लाली फैल गई। उन चम्मक उंगलियों में भी कम्पन होने लगा। उसने आहिस्ता से हाथ खींच लिया। और वह चुपचाप उठकर वहां से चली गई। और दिलीप जैसे विश्व की सम्पदा को अपने वक्ष में भर कर आनन्द और ऐश्वर्य में मग्न हो गया।

४०

भरपूर नींद सो लेने पर दिलीप का मन बहुत हलका हो गया। जब उसकी आंख खुली तो वह बहुत खुश था। वही उत्फुल्ल मुख और कोमल उंगलियां उसके अन्तस्तल में स्पन्दन कर रहीं थीं। इसी समय दर्वाजे में खटका सुन कर उसने उधर आंख उठाई, आशा और उल्लास से उसके नेत्र स्फीत हो गये। द्वार खुला और करुणा चाय की ट्रे ले कर भीतर आई। दिलीप का मन बुझ गया। उसने मुंह फेर लिया। करुणा ने चाय की ट्रे स्टूल पर रख कर कन्धे पकड़ कर दिलीप को तकिये के सहारे उकसाया। फिर पलंग पर बैठ एक टोस्ट पर मक्खन लगाने लगी। दिलीप ने क्रुद्ध कर कहा—'मैं चाय नहीं पीऊंगा।'

'क्यों ?'

'मेरा मन।'

'लेकिन मेरा मन है, पीलो। फर्स्टक्लास चाय बनी है।'

'मुझे नहीं पीना, कह दिया।'

'तो मैं जाकर अम्मा से कहती हूँ।'

'तू लाट साहेब से कहदे।'

'अच्छा लाट साहेब को भेजती हूं।'

दिलीप ने घूंसा तानकर कहा—'मार खायगी तू।' करुणा हंसती हुई भाग गई।

थोड़ी देर में दर्वाजा फिर खुला। दिलीप मुंह फेर कर सो रहा। किन्तु उसके कानों ने सुना—कोई कह रहा है—'मुझे बुलाया था ?'

दिलीप ने मुंह फेर कर देखा। वही मुंह, वही उंगलियां। उसने कहा—

'क्या ?'

'मुझे बुलाया था ?'

'नहीं तो।'

'तब जाती हूँ।' वह मुड़ी, तो दिलीप ने हाथ बढ़ा कर उंगलियों की पोर का स्पर्श किया। जाने वाली रुक गई। रुक कर पूछा—'क्या चाय बना दूँ।'

'बना दो।'

वे ही उंगलियां चाय बनाने लगी—तब उस ने कहा—'करुणा चाय बना रही थी, उसे भगा क्यों दिया।'

'मैंने कहां भगाया।'

'मुझे क्यों बुलाया।'

'किसने कहा ?'

'करुणा ने।'

'क्या ?'

'कहा तुम्हें बुलाते हैं।'

दिलीप के होठों पर मुस्कान फैल गई। उसने कहा—

'समझा, लाट साहेब आप ही का नाम है ?'

'लाट साहेब ?'

'वह कह गई थी—लाट साहेब को भेजती हूँ।'

उस मुख पर भी मुस्कान फैल गई। और जब वे उंगलियां प्याला पीने लगीं, तो उंगलियों सहित प्याला दिलीप ने अपने हाथों में ले लिया। प्याले से वे उंगलियां प्रथक न हो सकीं। एक हलका सा झटका पाकर वह पलंग पर बैठ गई। लाज से वह मुखर मुख एक बार फिर लाल हो उठा।

दिलीप ने उसे खींचकर अंक में भर लिया। उसने कहा—'क्या सचमुच माया, तुमने मुझे क्षमा कर दिया ? मेरा अपराध तो छोटा न था। मैंने बाबू जी का अपमान किया था।'

'लेकिन·····'

'लेकिन क्या ?'

'अब जाने भी दीजिए।'

'कहो माया, दिल की घुण्डी खोल दो, जो मन में है कह दो, अब द्विविधा में न रखो, यह जीवन अब तुम्हारे हाथ है, कह दो तुमने मुझे अपना लिया।'

'अपने मन से ही क्यों नहीं पूछ लेते।'

'मन से भी पूंछ लूंगा। पहिले.....।'

'लेकिन.....'

'कहो, लेकिन क्या ?'

'आपकी आंखें आपकी बातों का उपहास कर रही थीं उस दिन, इसी से.....'

'ओह तो तुमने सिर्फ मेरी बेवकूफी को ही नही, दर्द को भी जान लिया था।'

'जान लिया था—तभी तो।'

'लेकिन बाबू जी।'

'वे समुद्र हैं, उनको बर्दाश्त करने की थाह नहीं है। फिर एक और बात भी तो है।'

'क्या ?'

'अब उसे मत कहलाइए।'

'कहना तो पड़ेगा।'

'तब सुनिए। वे बेटी के बाप हैं। हिन्दू बेटी के। मानापमान का विचार करेंगे, तो बेटी को घर से धकेलेंगे कैसे ? आप तो हिन्दू धर्मध्वजी हैं, इतना तो जरूर जानते होंगे—कि हिन्दू की बेटी बाप की छाती पर सिल होती है।'

दिलीप हताश भाव से तकिए पर गिर गया। माया ने कहा—'क्या गहुत बुरा लगा ?'

'ओह, समझ गया। तुम्हारा गुस्सा। लेकिन माया, तुम्हारे

गुस्से का तो मैं मूल्य चुका दूंगा किन्तु बाबू जी से मुझे माफी दिला दो।'

'मेरे मुस्से का क्या मूल्य चुकाओगे भला।'

'अच्छी तरह चुका सकूंगा, उतनी पूंजी मेरे पास है?'

'तो बाबू जी से भी आप ही हिसाब बेबाक कर लेना।'

'नहीं, नहीं। उन्हें तो मैं मुंह नहीं दिखा सकता।'

'मुंह तो वह अच्छी तरह देख गये हैं। तीन दिन तक रात २ भर बैठे रहे हैं तुम्हारे सिरहाने। किसी की न सुनी—न पिताजी की, न अम्मा की—न मेरी।'

दिलीप आंखें फाड़ कर माया को देखने लगा—उसने दोनों हाथों से अपने सिर के बाल नोच डाले। 'हाय हाय, और मैंने उनका अपमान किया था। मैं अपने को क्षमा नहीं करूंगा—किसी तरह नहीं करुंगा।'

'अब यह कैसा पागलपन है?'

'माया, मैं जान देदूंगा।'

'खैर, अब ज़रा सो रहो।' वह उठी—और कम्बल अच्छी तरह दिलीप की छाती पर सरका दिया। किन्तु दिलीप ने उसे खींच कर अपने ऊपर गिरा लिया। उसने कहा—

'माया, तुमने मेरी बेवकूफी और दर्द को देखा—और कुछ नहीं?'

'और भी कुछ है?'

'यह दम्भ '

'दम्भ।'

'मैंने अभी कहा न था—तुम्हारे गुस्से का मूल्य चुका दूंगा। उतनी पूंजी मेरे पास है।'

'तो फिर?'

'यह दम्भ ही तो है, कोरा दम्भ।'

'तो इससे क्या ? मैंने तो मूल्य चुकता करने की मांग की नहीं। अभी मुझे जल्दी भी नहीं है चुकाइए धीरे २, या टाट उलट दीजिए।'

'टाट उलटा ही समझो माया, मूल्य मैं न चुका सकूंगा।'

'जाने दीजिए। मैं बेबाक़ी की रसीद देती हूँ अब ज़रा सो जाइए।'

'तुम सब कुछ कर सकती हो। इतना बड़ा ऋण बिना ही चुकाए बेबाक़ी की रसीद दे सकती हो—अपमानित होकर भी मेरे दर्द पर अपना वरद हस्त रख सकती हो, रात २ भर इस अधम के पास बैठी रह सकती हो। निस्संदेह-माया, मैं मूल्य नहीं चुका सकता हूं, लेकिन मेरी एक अर्जदाश्त है।'

'वह भी कह डालिए।'

'मुझे मौका दो, कि अब जो भी क्षण जीवन के हैं—उन्हें सिर्फ तुम्हारे इन चरणों की पूजा करके बितादूं।'

दिलीप ने सचमुच माया के दोनों पैर उठा कर अपने वक्ष पर रख लिऐ।

'यह क्या, यह क्या ?' माया घबरा कर उठ खड़ी हुई। दिलीप ने फिर उसे वक्ष पर कस कर कहा—'सिर्फ एक बार कह दो—कि तुमने मुझे अपना लिया—बस एक बार।'

माया ने आहिस्ता से दिलीप के अंकपाश से छूट कर अपने वस्त्रों को ठीक किया। फिर उसने तनिक मुस्कुरा कर कहा-'सब कुछ तो करुणा कर चुकी।'

'क्या ?'

'कस कर मुझे बांध दिया, तुम्हारे पल्ले में। अब छुटकारे की तो कोई राह ही नहीं दीखती।'

'तुम छूटने को छटपटा तो नहीं रहीं न।'

'तुम क्या देख नहीं रहे ?'

'तुम्हारे इस 'तुम' ने सब कुछ दिखा दिया। माया, मैं जी गया। तुम कैसे जान सकोगी कि उसी दिन एक क्षण भर देखने के बाद मेरे रक्त की प्रत्येक बूंद में तुम बस गईं थीं। तब से अब तक एक क्षण को भी तो मैंने तुम्हें भुलाया नहीं—और उस दिन—जो होश में आकर अपने पास बैठे देखा तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि तुम जैसे मेरी आंखों में से ही बाहर निकल आ कर बैठ गई हो।'

माया की आंखों में एक नशा सा छा गया। उसने आहिस्ता से कहा—'उस दिन तुम्हारी आंखों में मैंने क्या देखा था जानते हो?'

'किस दिन?'

'जब हम लोग जा रहे थे और तुम बाल बखेरे पागल की तरह द्वार पकड़े सबसे पीछे खड़े थे।'

'तब क्या देखा था तुमने मेरी आंखों में?'

'तुम्हारी आंखों में मैंने अपने को ही बैठी देखा था।'

'सच कहती हो प्रिये, सच कहती हो। जब तुमने मां की वह सौगात—घड़ी मेरे हाथ पर रखी और उस समय जो तुम्हारी उंगली की पोर ने जरा सा मेरा स्पर्श किया—तभी, उसी क्षण तुम बरबस मेरी आंखों में बस गईं। और मैं उन आंखों के आंसुओं से तुम्हारा अर्घ देता हुआ आज तक भटकता रहा हूँ।' उसने फिर खींचकर माया को अपने वक्ष पर डाल लिया।

माया ने दिलीप के वक्ष को आंसुओं से भिगो दिया। उसने कांपते स्वर से कहा—'मैं भी तभी से यहीं—तुम्हारी आंखों में आबद्ध रह गई। केवल मेरी देह वहां जलती भुनती रही।'

'ओह, यह देह का पार्थक्य भी कितना दुखदाई था।' दिलीप ने माया को इस प्रकार अपने में समेट लिया—जैसे अब वह देह के पार्थक्य को स्वीकार ही नहीं करना चाहता। दोनों के नेत्रों से बहुत देर तक मूक-निर्वाक् अश्रु जल बहते रहे। बड़ी देर बाद दिलीप ने

व्याकुल होकर कहा—'अब बाबू जी, को मैं कैसे मुंह दिखाऊंगा, कहो तो माया।

'परसों वे आ रहे हैं।'

'सच ?'

'उन्हें जाने में बहुत कष्ट हुआ। बहुत जरूरी केस था—जाना पड़ा। पर चलते २ कह गए थे मुझे—कि मैं तुम्हें एक पल को भी अकेला न छोड़ूं। और जब वे जा रहे थे, उनकी आंखें आंसुओं से धुंधली हो रही थीं, मैंने तो बाबूजी की आंखों में अपने जब तक के जीवन में सिर्फ उसी दिन आंसू देखे थे।

'मुझ अधम को वे इतना प्यार करते हैं, मुझे तुम बताओ माया, मैं क्या करूं। मैं तो उन की तरफ आंख उठाकर भी न देख सकूंगा।'

कुछ देर माया निस्पन्द रही। फिर उसने कहा—'अब आराम करो। इन पागलपने की बातों को दिमाग़ से निकाल दो। जो अपने हैं, वे दो नहीं होते। उनके लिए उद्विग्न होने की जरूरत नहीं। बाबूजी ने तो उसी दिन तुम्हें माफ कर दिया था, जब तुम्हारी चर्चा चलने पर मेरी आंखें नीचे को झुक गईं थीं। वे सब कुछ समझ गऐ थे। सब कुछ।' माया देर तक दिलीप के बालों में उंगलियां घुमाती रही। और दिलीप आंखें बन्द कर तन मन से सुख सागर में डूब गया।

४१

अबोध शिशु की भांति, प्यार से अंक में भर कर, गीले पलकों से उसे निहारती हुई और अपना वरद हस्त उसके मस्तक पर फेरती हुई अरुणा देवी ने धीरे २ सब कुछ दिलीप को बता दिया।

उसके जीवन का इतिहास। कुछ भी छिपा कर न रखा। सब कुछ सुन कर दिलीप पत्थर की भांति भावहीन–निश्चल, निश्चेष्ट होकर मां की गोद में गिर गया। सब कुछ कह चुकने पर जब अरुणादेवी की वाणी मूक होगई–तो भी उसने कोई जवाब नहीं दिया–न वह रोया–न उत्तेजित हुआ। न हिला न डुला। अरुणा देवी चाहती थी वह रो पड़े। आंसू बहाकर मन–हल्का करले–पर ऐसा हुआ नहीं। फिर भी अरुणादेवी बहुत देर तक–स्वयं भी मूक–मौन–निस्पन्द उसे उसी भाँति अंक में भरे बैठी उसके मस्तक पर हाथ फेरती रही। बहुत देर तक। फिर आहिस्ता से उसका सिर तकिए पर रखकर चुपचाप उठकर कमरे से बाहर निकल गई।

दिलीप उसी भांति पड़ा रहा। निश्चल–निर्वाक्–निस्पन्द। एक शिला खण्ड के समान। अरुणा देवी फिर आई। डाक्टर आए–सुशील आया–शिशिर आया–करुणा आई–माया आई राय साहब आए और चले गये। किसी का कोई शब्द उसने ग्रहण नहीं किया। दिन बीता–रात बीती। फिर दिन–और रात–फिर दिन और रात। लेकिन दिलीप उसी तरह नीरव–निस्पन्द–मूक–मौन–पत्थर की शिला की भांति पड़ा रहा।

घर में–अब सब कोई सच्ची बातें जान गया था। सब के मन चिन्ता–और उद्वेग से भरे हुए, दर्द से कराहते से हो रहे थे। क्या किया जाय–दिलीप क्या प्राण दे देगा। वह तेजस्वी–मेधावी–उद्ग्रीव तरुण है, भावुक है, रक्त उसका गर्म है–यह चोट क्या प्राणान्त कर देगी? रोते २ माया की आंखें फूल कर गुड़हल का फूल हो गई थी–करुणा उसे अंक में भरे–भाभी–भाभी–बीच में इस प्रकार भरे स्वर में पुकार उठती जैसे उसका गला काटा जा रहा हो। परन्तु माया भी वैसी ही मूक मौन–निस्पन्द पड़ी थी।

डाक्टर और राय साहब परेशान कभी इधर और कभी उधर घर में चक्कर लगा रहे थे। बहुत बार वे दिलीप के कमरे में जा चुके

।–बहुत कुछ उससे कह चुके थे–मगर बेकार।

सिर्फ बानू दिलीप के पास नहीं गई। उनकी आंखों में आंसू भी नहीं आये। अरुणा ने बहुत बार उनकी मिन्नतें कीं–बहुत कहा–फेर एक बार वह दिलीप के पास जाय–परन्तु बानू ने हर बार नहीं'–कह दिया—वह नहीं गई। अपने कमरे में अवाक् बैठी रही।

तीन दिन बीत गये एक विचित्र विषादपूर्ण सन्नाटा घर में छाया था। प्रभात का समय। अरुणादेवी बानू के कमरे में जाकर चुपचाप उनके निकट खड़ी हो गईं। बहुत देर तक खड़ी रहीं। बानू ने उनकी ओर आंख उठाकर देखा भी नहीं–कुछ कहा भी नहीं। अरुणादेवी चुपचाप बानू का सफेद बर्फ के समान रक्त हीन चेहरा–जिस पर झुकी हुई पलकें–और सम्पुटित ओष्ठ वेदना और निराशा की चरमघोषणा कर रहे थे–ताकती खड़ी रहीं–एक शब्द भी उनके मुंह से नहीं निकला। एकाएक उन्होंने देखा—एक छाया मूर्ति ने कमरे में प्रवेश किया। दिलीप ही था। शराबी की तरह लड़खड़ाते डग भरता हुआ–वह–'मां' कह कर बानू के सामने आ धरती पर गिर गया। बानू के दोनों चरणों पर उसने अपने सूखे–शीतल होंठ रख दिये।

बानू ने अपने दुबले पतले कांपते हाथों से उसका सिर उठा कर छाती से लगा लिया। अब माता और पुत्र एक थे। नीरव–निस्पन्द–मूक–निश्चल–पत्थर की शिला की भांति।

अरुणादेवी चुपचाप कमरे से बाहर हो गईं।

बहुत देर तक दोनों इसी प्रकार बैठे रहे। बानू के शब्द जैसे होठों से निकलते २ होठों ही में समा गये। बड़ी कठिनाई से वह कह पाई—'दिलीप।' 'मां' कहकर दिलीप ने बानू को अपने अंक पाश में बांध लिया। जब उसकी आंखों का स्रोत फूटा और गंगा जमुना की धार वहां से बह चली। वह एक तरुण का रुदन

था। जीवन और तेज से भरपूर तरुण का। जिसकी दुनिया ही बदल चुकी थी—मनसूबे ढह चुके थे—आदर्श छिन्न भिन्न हो चुके थे। जो अब अपने ही लिये पराया था। परन्तु बानू की आंखें तो अभी भी सूखी थीं। एक परम वीतराग जितात्मा योगी की भांति—वे अपने ही में गूढ़ बनी—इस पार्थक्य में पुत्रवती होने का जैसे मंगल सूत्र पा रही थी। किन्तु हर्ष विषाद से दूर—बहुत दूर। इस बार उन्होंने स्थिर कण्ठ से कहा—'दिलीप'।

दिलीप ने कहा—'मां'।

'दिलीप' इस एक दिलीप के उच्चारण ही में बानू ने सारा मातृभाव उंडेल दिया।

दिलीप ने पहिली बार आंख उठाकर बानू का मुंह देखा। उन्मादिनी दृष्टि से। और उसकी वह दृष्टि उलझ गई बानू के पल्कों पर, जहां वेदना के सातों समुद्रों में ज्वार आ रहा था। उसके दोनों कांपते हुये हाथ ऊपर को उठे। बानू के मुंह को उसने जैसे अपनी अंजली में भर लिया—जैसे शतदल श्वेत कमल झरझर झरते हुये जल सहित वह अंजली में भर लाया हो।

उसने उसी भांति बानू की आंखों में आंखें उलझा कर, उसी भांति उस मुख को अंजलि में भरे हुये कहा—'मां'।

'बेटे' बानू के होठ फूट पड़े—'तू ने अपनी बदनसीब—गुनहगार मां की सूनी गोद भरदी, बड़ा सबाब का काम किया—बेटे, खुदा तेरी उम्रदराज करे।'

'लेकिन मां, क्या तुमने इस अधम को माफ कर दिया? इसे अपना लिया।'

'मैंने कभी यह उम्मीद न की थी—कि तू मुझे मां की इज्जत और जिंदगी देगा। मैं मरते दम तक तुझ से दूर—अनजान रहने की ठान चुकी थी।'

'क्यों इस अधम पर इतना अविश्वास किया मां, एक बार

मुझे बुलाया क्यों नहीं ।'

'क्या मैं तेरे साथ मां की तरह पेश आई, क्या मैंने तेरे साथ संगदिली में कोई कसर रखी। दुनिया की कौन मां इस तरह अपने कलेजे के टुकड़े को दूसरों के हाथ में देकर मुंह फेर सकती है ।'

'लेकिन मां, मैंने तुम्हारा तप भी देख लिया। तुम्हारी मां की आत्मा भी देखली, अब आओ चलें, दुनिया से दूर, जहां कोई हमारी जान पहिचान का नहीं ।'

'यह क्यों बेटे ?'

'तो तुम्ही कहो इस दुनिया में मेरे खड़े होने की जगह कहां है ।'

'यह बात तो अरुणा बहिन बता सकती हैं ।'

'अब मैं क्या उन्हें मुंह दिखा सकता हूँ ?'

'क्यों, क्या वह तेरी मां नहीं है—बेटे ।'

'मां हैं, लेकिन.....'

'मां हैं तो लेकिन क्या ?'

'कैसे कहूं, अब मैं बहुत सी बातें समझ गया हूँ मां। उन सबकी भलाई भी इसी में है कि हम लोग यहां से चुपचाप चले जांय। उन सब बातों को आप नहीं समझ सकतीं, मैं समझता हूँ, मां, हमें यहां से जाना होगा ।'

'लेकिन दिलीप, तुझे मैं एक मां की गोद से छीन कर ले जाने की ताव नहीं रखती, मुझ से यह न हो सकेगा ।'

'तब ।'

'अरुणा बहिन ही की हमें पनाह लेनी होगी, वही हमें राह दिखा सकती हैं ।'

'मां, वह तो जीते जी हमें छोड़ेंगी नहीं ।'

'तब फिर बेटे, हमारा भी अब और ठिकाना कहां है, मैं तो

सब कुछ छोड़ कर अब उन्हीं के आसरे पर हूँ।'

'परन्तु आप मां समझती नहीं है, उनके बच्चे हैं, उनकी व्याह शादी में बड़े झंझट उठ खड़े होंगे, उनका खानदान तबाह हो जायगा। हमें यह भी तो सोचना चाहिऐ। हिन्दुओं की रीति रस्म—जांत पांत के मामले बड़े टेढे हैं, हमें उनकी राह का रोड़ा नहीं होना चाहिये।'

'तो तू जो ठीक समझे वही कर, लेकिन सब कुछ उन्हीं के हुक्म से।'

'अच्छा, मैं उनसे बात करूंगा।'

४२

जब दिलीप ने अरुणा देवी का एक भी—अनुरोध निषेध नहीं स्वीकार किया, तो अरुणा देवी ने हिचकियां लेते हुए रोष भरे स्वर से कहा—'दिलीप, तू ऐसा ही निर्दयी होना चाहता है तो अपने मां बाप की भले ही मिट्टी ख्वार करके चला जा—लेकिन माया की बात कुछ सोच। उस पर तो रहम कर।'

'उसे तुम समझा देना मां, वह सब बातें अभी कहां समझती है। कुछ दिन में यह सब कुछ भूल जायगी।'

'तू क्या उस से एक बात भी न करेगा?'

'न।'

वह पागल की भांति उठकर तेजी से बाहर चला गया। गाड़ी आ गई। अरुणा पछाड़ खाकर गिर पड़ी। अरुणा देवी ने बानू को कस कर अंक में भर लिया—हौले २ कहा—'बहन गरीब का धन लूट ले चलीं तुम'—राय साहेब और डाक्टर सक्ते की हालत में खड़े थे—सुशील और शिशिर जार २ आसूं बहा

रहे थे। भैया २ कह कर दिलीप के पैरों में लिपटे पड़े थे।

दिलीप ने लम्बे २ डग भरते हुए कहा—'आओ देर हो रही है।' और वह गाड़ी में घुसा। परन्तु यह क्या? माया वहां चुपचाप स्थिर निश्चल बैठी थी। दिलीप को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने हकलाते हुए कहा—'यह क्या, तुम यहां क्यों?'

'मेरी मर्जी।'

'लेकिन हम दूर जा रहे हैं माया।'

'चलो फिर, रोकता कौन है तुम्हें।'

'लेकिन—लेकिन तुम्हारा जाना तो नहीं हो सकेगा।'

'खूब अच्छी तरह हो सकेगा, मेरी अपनी आंखें हैं, अपना मन है, अपने पैर हैं।'

'माया, क्या मैं इस क़ाबिल हूं कि तुम अब इस समय मुझ पर गुस्सा करो, मानता हूँ—कि क्षमा के योग्य नहीं। लेकिन रहम.....'

दिलीप की जबान लड़खड़ा गई।

माया ने कहा—'अब सब बातें क्या यहीं सड़क पर खड़े होकर होंगी। गाड़ी में बैठो।'

'नहीं।'

'तो घर में चलो—वहां चल कर जो कहना हो कहो।'

'चलो फिर, दिलीप ने मरे हुए स्वर में कहा। माया चुपचाप गाड़ी से उतर कर घर में चली गई—उसके पीछे—दिलीप भी। सब चुपचाप देख रहे थे।'

कमरे का दरवाजा भीतर से बन्द करके दिलीप ने कहा—'माया।'

'ठहरो, पहिले यह बताओ, कि सब बातें तय करने से पहिले तुम मुझ से क्यों नहीं मिले। मुझ से क्यों नहीं पूंछा।'

'मैं-मैं-माया-क्या इस योग्य रह गया, तुमने तो सब बातें

जान ही लीं।'

'तो ?'

'अब भला, मैं तुम से कैसे आशा कर सकता था—फिर इतना स्वार्थी भी नहीं हूँ कि तुम से किसी कुर्बानी की दरख्वास्त करूं।'

'तुम कितने स्वार्थी हो—इसका सबूत तो तुमने सदा ही से दिया है। और सबसे ताज़ा सबूत, तुम्हारा यों मुंह मोड़ कर भागना है।'

'मुंह मोड़ कर भागने को छोड़ दूसरा चारा नहीं है माया।'

'सब से मुंह मोड़ सकते हो, लेकिन मुझ से भी मुंह मोड़ चले। सो मैंने पत्थर के देवता को रोम २ में बसा कर उसकी पूजा की। सुनते तो हैं कि पत्थर के देवता भी सच्ची उपासना से प्रसन्न हो जाते हैं। अभीष्ट वर देते हैं, पर तुम पत्थर से भी निष्ठुर निकले। और क्यों न निकलते, हिन्दु तो तुम हो नहीं, फिर हिन्दु देवता का बड़प्पन तुम में कैसे आ सकता था।' माया की आंखों से झरना बह चला।

दिलीप ने कहा—'तुम्हारा इतना गुस्सा मैं बर्दाश्त न कर सकूंगा माया मेरी छाती फट जायगी मैंने कुछ और ही सोचा था, परन्तु तुम तो···· ···· ····'

'हां अपने ही जैसा निर्मम, निष्ठुर, मूढ़ तुम दूसरों को भी समझते हो।'

दिलीप ने दोनों हाथ फैला कर कहा—'माया, हुक्म दो कि क्या करूं।' किन्तु माया अर्द्ध मूर्छित सी होकर झूमने लगी। दिलीप ने लपक कर उसे अपने अंक में भर लिया। माया ने सिसकते २ कहा—'तुमने मुझे छोड़ कर चला जाना इतना आसान समझ लिया था।'

'वाह माया, मैं हिमालय को उल्लंघन कर रहा था। तुम्हारे मन की मैं समझ गया। सच पूछो तो मैं केवल तुम से ही भाग

रहा था। केवल तुम से, इसी से मैंने मां का, बाबू जी का, पिता जी का किसी का भी अनुरोध नहीं माना। मैं क्या जानता था, कि तुम मेरी हो, किन्तु एक बार अपने मुंह से कह दो तो।'

'मैं तो यह भी नहीं जानती कि तुम तुम हो और मैं मैं हूँ। परन्तु अंत में तुमने मुझे निर्लज्ज बना ही कर छोड़ा।'

दिलीप ने दोनों बलिष्ठ हाथों में माया को अधर आकाश में उठा लिया। उसने कहा—'माया, लो इन प्राणों को सम्भालो, ये तुम्हारे हैं। चलो मां को प्रणाम कर आऐं।'

और जब दोनों ने आकर दोनों माताओं के चरणों में, जो अभी परस्पर बद्ध खड़ी थीं, अपने को डाल दिया, तो बानू ने माया को उठा कर छाती से लगा लिया और दिलीप ने फिर राय साहब की चरण धूल ली, डाक्टर के चरणों में माथा टेका।

एक चमत्कारिक नाटक देखते २ हो गया। बानू और अरुणा देवी के अंकपाश में बंधी हुई माया घर में चली गई। और डाक्टर दिलीप को छाती से लगाऐ ड्राइंगरूम में घुस गऐ। गाड़ी में लदा सामान उतार लिया गया। राय साहेब कुछ क्षण स्तब्ध खड़े रहे। फिर उन्होंने आंखों की कोर से आंसू पोंछ कर पास खड़े सुशील से कहा—'देखो बेटा, एक अच्छा सा बैंड तो अभी लेकर आओ, और तुम शिशिर, जरा मेरे साथ चलो।' वे कन्धा पकड़ कर एक प्रकार से उसे घसीटते हुऐ, उसी गाड़ी में जा बैठे। कोचवान को हुक्म दिया—'चलो जरा चांदनी चौक।'

४३

और उस दिन की संध्या उस दिन के प्रभात से कुछ दूसरे ही

था। रंगीन बत्तियों के प्रकाश से कोठी जगमगा रही थी। बैंड बज रहा था, शहनाई तान अलाप रही थी। आगत मिहमान भड़कीली पोशाक पहिने हंसते २ जा रहे थे, मुख्य द्वार पर डाक्टर अमृतराय और अरुणादेवी आगत समागतों का स्वागत कर रहे थे। लोग बधाइयां दे रहे थे, मिठाइयों के, मेवाओं के थाल घर में आते जा रहे थे। रायसाहेब एक आराम कुर्सी पर पड़े सिगार का धुआं उड़ा रहे थे, और सामने यज्ञ वेदी पर वेदपाठ और मंगलगान के साथ दिलीपकुमार का मायादेवी के साथ शुभविवाह हो रहा था। बानू आगत मिहमानों के बीच बैठी, वरवधू की जोड़ी की बड़ाई की चर्चा में भाग ले रही थी।

चतुरसेन साहित्य
सर्वजन हिताय
सर्वजन सुखाय

साहित्य और साहित्यकार

"साहित्य कला का चरम विकास है और समाज का मेरु दण्ड। धर्म और राजनीति का यह प्राण है, इसलिए इसमें दो गुण होने अनिवार्य है—एक यह, कि वह आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करे, और दूसरे, वह मानवता के धरातल को ऊँचा करे।

सामर्थ्यवान् काल—जैसे जगत के सब तत्वों को दूषित करता है, उसी भांति उसने साहित्य को दूषित किया है। इसी से साहित्य ने मानव आत्मा का हनन किया। उसी भांति, जैसे विज्ञान ने मानव प्राणों को। और यही कारण है कि साहित्य और विज्ञान के इस उद्ग्रीव युग में मानव भौतिक और आधिभौतिक विभूतियों का सर्वाधिक रहस्यविद् होने पर भी अपने चिर जीवन में आज सर्वाधिक असहाय और भयभीत है।

साहित्य और विज्ञान ही उसे अभय दान कर आप्यायित कर सकता है, यदि वह अपना लक्ष्य मानवता के धरातल को ऊँचा करना बना लें।

मानव, विश्व की सबसे बड़ी इकाई है। परन्तु साहित्यकार मानव नहीं है—क्योंकि वह अति मानवों का निर्माण करता है। वास्तव में साहित्यकार महा मानव है।

इसलिए, उसका कोई अपना देश, धर्म, राष्ट्र, समाज और स्वार्थ नहीं है और इन सबके प्रति उसका कोई कर्तव्य भी नहीं है।

उसका काम है—निरन्तर अतिमानवों का निर्माण करना और मानव आदर्श के लक्ष्य विन्दु पर उनकी स्थापना करते जाना। यह करने ही से वह मानवता के धरातल को ऊँचा करने में समर्थ हो सकता है।"

—चतुरसेन

चतुरसेन-साहित्य

आचार्य चतुरसेन आज हिन्दी संसार में अपना जोड़ नहीं रखते। अपने गहन अध्ययन, प्रखर बुद्धि, तेजस्वी और निर्भय तीखी शैली, और सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के कारण वे, अब से बहुत प्रथम 'लोह-लेखनी के धनी' प्रसिद्ध हो चुके हैं। और आज लाखों नर-नारी उनकी कलम की करामात से उल्लसित हास हंसते और आत्मा को द्रवित करने वाला रुदन रोते हैं। कभी के तरुण, और आज के पिता—जो अध्यापक, वकील, जज और सम्मान्य सद्गृहस्थ हजारों की संख्या में देश विदेश में फैले हैं, आचार्य की जगमगाती ज्ञान ज्योति से गत चालीस वर्षों में बहुत कुछ पा चुके हैं।

अब आचार्य, असाधारण दृढ़ता से नए युग के नए तरुणों के लिए सत्साहित्य सर्जन मे अपने जीवन का प्रत्येक क्षण खर्च करने में कृत संकल्प हुए हैं। और हमने उस सम्पूर्ण अप्रतिम साहित्य को आप तक पहुंचाने का आयोजन किया है।

आप स्वयं लाभ उठाइए और हमारा बल बढ़ाइए

एक पुस्तक डाक से वी० पी० मंगाने से पांच तोले से कम वजन की पुस्तक पर भी कम से कम आठ आना पोस्टेज लगता है। ज्यादा वज़न पर अधिक। इसलिए आप वी० पी० द्वारा डाक से एक पुस्तक मत मंगाइए। प्रथम अपने यहां के पुस्तक विक्रेता से मांगिए। यदि वहां पुस्तक न मिले तो चार मित्र मिलकर तीन पुस्तकों का मूल्य मनीआर्डर से भेज दीजिए। आपको चार पुस्तकों का सैट तीन पुस्तकों के मूल्य में फ्री पोस्टेज हम भेजेंगे। अथवा आप दस रुपये से अधिक का आर्डर दीजिए—तो पुस्तकें आपको पौने मूल्य में मिलेंगी।

अनुवादक चाहिए

जो आचार्य कृत उपन्यासों और कहानियों का हिन्दी से अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, बंगला, उर्दू, तामिल, कनाडी और मलयालम तथा अन्य विदेशी भाषाओं में अनुवाद कर सकें। ऐसे ही सज्जन पत्र व्यवहार करें, जो हिन्दी तथा अनवाद की भाषा पर असाधारण अधिकार रखते हों। सेक्रेटरी

चतुरसेन कथा साहित्य के चौदह उपन्यास—

१—वैशाली की नगरवधू। इतिहास रस का उपन्यास, दो खण्ड, पृष्ठ संख्या एक हजार, सौ पृष्ठों की भूमिका। मूल्य १२)—

विश्व कथा साहित्य में अलौकिक। अब से ढाई हजार वर्ष पूर्व के भारतीय जीवन संग्राम का जागृत चल चित्र। इसमें तथ्यों और कल्पनाओं का जो सृजन हुआ है, विचारों और भावों का जो तूफान आया है, वादानुवाद ने जो जौहर दिखाए हैं। वह लेखक के गहन अध्ययन, प्रकाण्ड पाण्डित्य, दुर्लभ लेखन शक्ति और असाधारण प्रतिभा का द्योतक है। तत्कालीन विश्रुत व्यक्तियों के अन्तरंग जीवन—जिनमें कलाकार ने अपनी कल्पना-तूलिका से रुच रुचकर गहरा रंग भरा है—आप देखेंगे तो आपा खो देंगे।

२—वयं-रक्षामः। पृष्ठ संख्या ८०० के लगभग सौ पृष्ठों की टीका—मूल्य १० रुपये के लगभग। आचार्य की नवीनतम कथाकृति, प्राग्वेद कालीन, प्रागैतिहासिक—अतीत रस का उपन्यास।

वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, पुराण आदि से, मिस्र—मैसापोटामिया—वैबिलोनपर्शिया और यूनान के अति प्राचीन इतिहास का तुलनात्मक अध्ययन। समूचे नृवंश का अपरिज्ञात रेखाचित्र। देव-दैत्य-दानव-नाग-यक्ष-रक्ष, मानव-आनव आर्य-व्रात्य-मत्स्य-गरुड़-वानर-ऋक्ष-महिष आदि इतिहासातीत जातियों की अब तक अविश्रुत, सर्वथा नवीन-साधार असाधारण स्थापनाएं, जिनमें संसार की इन सब जातियों-देवताओं आदि की प्राचीन धर्म स्थापनाओं की गठरी बाँध कर लेखक ने अतीत रस के गहरे इतिहास रंग में एक डुबकी दी है। देखने, पढ़ने और मनन करने की वस्तु है।

यों तो आचार्य ने, जब नगर वधू आपको भेंट की—तभी हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक नया मोड़ उपस्थित किया था—कि उपन्यास अब केवल मनोरंजन या चरित्र चित्रण का विषय नहीं रहा, अध्ययन और मनन की वस्तु बन गया। अब इस उपन्यास ने तो इस दिशा में दृढ़ चरण रक्खा है। इस उपन्यास को रचकर आचार्य विश्व उपन्यास पद्धति को चुनौती देते हैं—कि उपन्यास

गहनतम मनन की वस्तु होकर भी उपन्यास तत्व की रक्षा कर सकते हैं। शायद ही संसार के किसी उपन्यासकार ने उपन्यास क्षेत्र में इतनी गहरी डुबकी लगाई हो, जैसी इस उपन्यास के लेखक ने लगाकर अपनी अपरिसीम रचना सामर्थ्य का प्रदर्शन किया है।

३-धर्म पुत्र ४-अपराजिता ५-नरमेध ६-नीलमणि और ७-हृदयकीपरख—पांच लघु उपन्यास। प्रत्येक का मूल्य २) धर्म पुत्र २॥)

धर्म पुत्र—दर्द की तस्वीर, एक अविवाहिता मुस्लिम किशोरी खानदानी प्रतिष्ठा के नाम पर अपने गुप्त प्रसूत पुत्र को एक हिन्दू डाक्टर को देकर एक अधेड़, नपुंसक और कोढी नवाब से बेउज़्र ब्याह कर पति गृह जाती है, जहां उसकी तीन सौत और हैं। आठ साल सधवा और चौबीस वर्ष विधवा रह कर वह ३२ साल बाद दिल्ली आती है, वैसी ही अछूती जैसी गई थी। और जबविभाजन की आग दिल्ली को भस्म करती है, तो उसी का पुत्र बानू के घर को आग की भेंट करता है। मनोविकारों-आत्मवेदनाओं आत्म-संघर्षों का अपरिसीम चित्रण उपन्यास में है।

अपराजिता—में आंसुओं का समुद्र है। जहां एक स्त्री हिमालय की भांति शांत-स्थिर-अचल-जीवन के आरम्भ से समाप्ति तक खड़ी रह जाती है, स्त्री तत्व की अपराजेय सामर्थ्य की प्रतीक।

नरमेध—एक नर हत्याकारिणी पवित्रात्मा के पाप पंक में आजीवन डूबने की कथा है। प्रेम और कर्तव्य का अद्भुत संघर्ष। रक्त में सिंदूरन उत्पन्न करने वाले मानसिक आघात प्रतिघात।

नीलमणि—नारी हृदय ने बीसवीं सदी के ज्ञान विज्ञान से चमत्कृत होकर, आधुनिकतम शिक्षा और संस्कृति को आत्मसात करके अपनी अन्तरात्मा में जो जागरण पाया, उसने उसे युग युगों के परम्परागत नारी पारतन्त्र्य का विद्रोही किया, और अन्ततः जीवन संगिनी की भांति उसने पति से सहयोग किया।

हृदय की परख—संसार में अनेक अपराध हृदय के सौन्दर्य के कारण होते हैं। और अनेक पुरुष अपने हृदय की कोमलता को दूषण समझते हैं। यदि

वे किसी तरह अपने हृदय को कठोर बना पाते तो वे महान् पुरुष होते। उपन्यास में यही संकेत है।

८-आत्मदाह ४।।) ९-हृदय की प्यास ३) और १०-बहते आंसू–३।।)

आत्मदाह–मानवता का बोझ सिर पर लाद कर जीवन की खोह में उतरना कैसा विपद ग्रस्त, कितना थकाने वाला–रुलाने वाला और करुणाकर है। इसका मार्मिक वर्णन इस उपन्यास में है। **हृदय की प्यास**–में वासना की आग में झुलसने की तड़प है। **बहते आंसू**–में वैधव्य की अश्रुधारा है। तीनों उपन्यास गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित समस्या उपन्यास हैं।

११–पूर्णाहुति–मूल्य ३।)

आज से हजार वर्ष पूर्व पृथ्वी की सम्पदाएं किस प्रकार वीर नर भोगा करते थे, और नर नाहर किस भांति जिया करते थे—यह बात हम आज भूल गए हैं। वे शांति के दिनो में रस भरे पके आम की भांति लोकोत्तर सम्पदा और भोगों को एक ही चुस्की में चूसते और फिर गुठली को अनायास ही फेंक कर लोहे की धार का तीखा रस पी जाते थे। इसकी एक बांकी झांकी इस पुस्तक में है। इस में दिल्ली के प्रबल प्रतापी नौ लाख अश्वारोही नरवरों के अधिपति संभरीनाथ चौहान पृथ्वीराज का अकथ पराक्रम—जिससे ८० लाख अश्वों का अधिपति कन्नौजपति जयचन्द थर-थर कांपता था। गजनी के शाह को जिसके सामन्त बारम्बार बांध लाते थे। और वह हंस कर आदरपूर्वक उसे छोड़ देता था—अन्त में संयोगिता के प्रेम में दीवाना होकर कैसा दुस्साहस कर बैठा। कैसे उसने उस अलौकिक पंगुबाला का हरण किया। फिर कैसे वह रस रंग में राजपाट भूल गया। और कैसे घात पाकर गौरी ने उसे बन्दी कर अन्धा किया। पढ़कर आप की नाड़ियों का रक्त थम जायगा।

१२–आलमगीर–मूल्य ५।।=)

पिता और बान्धवों को बन्दीघर में बन्दकर, भाइयों के गर्म रक्त से हाथ

रंग कर तथा—भारतीय राजनीति और धर्मनीति को अपने अकम्पित चरणों से कुचलते हुए—सात करोड़ के मूल्य के अप्रतिम तख्तेताऊस पर बैठकर किस प्रकार महामनस्वी पुरुष पुङ्गव आलमगीर ने पचास वर्ष मुगलों का महा-साम्राज्य भोग किया। वह कैसे जिया, कैसे मरा, और कैसे वह पृथ्वी का सब से बड़ा सम्राट् हो गया। उसका जागरूक वर्णन—मुगल दर्बार का रोमांचकारी रहस्य, रंग महल के देव दुर्लभ रास रंग और तत्कालीन जनबल की घोर दुरवस्था, तथा आलमगीर के मरने के बाद पच्चीस ही वर्षों में मुगल साम्राज्य का ध्वंस होना, जब इस करामाती उपन्यास में पढ़ेंगे—तो आप आश्चर्य-चकित रह जांएगे।

१३—रक्त की प्यास—अथवा—हरण निमन्त्रण—मूल्य २॥।)

इस उपन्यास में उस अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना का संकेत है—जब राजपूतों ने आपस ही में कट मर कर भारत में मुसलमानी राज्य शासन की नींव में अपना रक्त सींचा। परमार की बेटी को गुर्जर सोलंकी भीम ने प्यार किया, पर परमार की बेटी ने कहा—"तुम क्षत्रिय होकर मुझे पिता से मांगोगे ? हरण करने आबू आना।" और जब भीमदेव सोलंकी यह हरण निमन्त्रण पूरा करने आबू पहुंचा, तो वहां संभरीनाथ चौहान पृथ्वीराज फेरे ले रहा था। तेगा खड़का और राजपूतों की शक्ति छिन्न भिन्न हो गई। दिल्ली गया, कन्नौज गया, फिर गुजरात भी दलित हुआ। वीरता—प्रेम और बारहवीं—तेरहवीं शताब्दी के राजपूतों की जनूनी प्रकृति का—समूचा चित्र है। जिसमें रक्त का लाल ही लाल रंग भरा हुआ है।

१४—मन्दिर की नर्तकी—१५—दो किनारे—

मूल्य क्रमशः २॥) ३॥)

मन्दिर की नर्तकी—में उस काल की देवदासी प्रथा वर्णित है, जब बौद्धों और शैवों का अन्ध धर्मानुशासन चल रहा था। **दो किनारे**—में दो लघु कथा हैं। मजेदार और चुभनें वालीं। एक में एक विधुर दो सौ रुपये में एक घोड़ी खरीदने जाता है, और उतने रुपयों में औरत खरीद लाता है, पर समझता है

उसे घोड़ी ही। परन्तु अन्त में वह उस स्त्री तत्व से ओत प्रोत होता है। दूसरी कथा एक चरित्रवान् डाकू की है। जिसके वर्णन चमत्कारिक हैं।

पांच नई पुस्तकें

१–मौत के पञ्जे में जिन्दगी की कराह–मूल्य ३)

यह आचार्य जी की जबर्दस्त–निराली पुस्तक है, जिसका प्रत्येक अक्षर धधकता आग का अगारा है। ज्वालामुखी के प्रवाह की भांति इस पुस्तक की विचारधारा आस पास के जड जगम सभी को भस्म करती जाती है। पुस्तक का प्रत्येक अक्षर समर्थ लेखक की लोह लेखनी की सामर्थ्य से ओत प्रोत है। विद्वान् लेखक कहता है—अब, या तो मनुष्य मनुष्य को खाय, या वह भूखों मर जाय। 'देश' इस सभ्य युग का सबसे बड़ा खूनी देवता है। यह हत्यारा देवता शायद सारे नृवंश को खा जाएगा। 'राष्ट्रीयता' मनुष्य के खून के गारे में खड़ी की गई इमारत है। दो-दो महायुद्धों में इसने संसार को तबाह कर दिया—पर अब वह संसार के भूखे-नंगे-रोगी और असहाय-भयभीत मनुष्यों को तीसरे भीषण युद्ध के लिए उकसा रही है। लड़ाई झगड़ों की जड़, इस 'राष्ट्रीयता' ने दूसरों के पसीने की कमाई पर मौज–मजा करने वाले खूनी हत्यारे पूंजीवाद' से गठजोड़ा कर लिया है। 'स्वाधीनता' गुलामों की आवाज है। धर्म' धोबी का कुत्ता है। 'ईश्वर' घिसा पैसा है। और देवता उसके भाई-भतीजे। 'श्रद्धा' अन्धी बुढिया है। 'अन्धविश्वास' उसका धूर्त बेटा है, जिसने दुनिया की जातियों को तबाह कर दिया है। 'दार्शनिक' अक्ल के आशिक मजनू, और 'साहित्य' दिमागी दुराचार है। 'विज्ञान' जो मनुष्य का मुक्तिदाता था—इन राष्ट्रपन्थी और पूँजीवादियों के मक्खन टोस्ट के लालच में फंस कर अब मनुष्य का मृत्यु दूत बन गया है। 'नारी' को इस 'नरपशु' ने अपनी जिन्दा दौलत बना लिया है। गांधी का देवता 'मनुष्य' है, जिसके लिए उसने प्राण दिए—पर आज उसका यह देवता अपूजित, धूल और गन्दगी में लथपथ बीच चौराहे पर पड़ा सिसक रहा है। पुस्तक नवयुग का आह्वान है। हम इसकी लाखों प्रतियां वितरण करना चाहते हैं।

२- अनबन—मूल्य २)

(केवल विवाहित—बालिग पति-पत्नियों के लिए)

आचार्यजी जैसे उद्‌भट तेजस्वी लेखक है, वैसे ही यशस्वी चिकित्सक भी है। इस महत्वपूर्ण पुस्तक में उन्होंने अपने चालीस वर्ष के अनुभवों के आधार पर पति-पत्नी की अनबन के कारणों और उन्हें दूर करने के उपायों को वैज्ञानिक रीति पर सरल भाषा में बताया है। विवाह के तुरन्त बाद ही प्रायः पति-पत्नियों में अनबन हो जाती है, और उनका सारे जीवन का सुख और प्रेम जल-भुनकर खाक हो जाता है। इस घातक और गम्भीर 'अनबन' को आचार्यजी रोग कहते है। इसका कारण सामाजिक नहीं—शारीरिक बताते हैं। वे गत २२ वर्षो से 'अनबन' वाले जोड़ो की सफल चिकित्सा करते आ रहे हैं। इस पुस्तक में इसी अत्यावश्यक रोग का कारण और इसकी सुलभ एवं वैज्ञानिक चिकित्सा वर्णित है। पुस्तक प्रत्येक पति-पत्नी के लिए—चाहे वे किसी भी आयु के क्यों न हों—पढ़ने के योग्य है। पुस्तक बारह गुप्त पत्रों के रूप में लिखी गई है।

प्रत्येक पति-पत्नी को प्रत्येक पत्र में अपनी अनबन का हल मिल जायगा।

३—लम्बग्रीव—४—लालारुख—५—पीरनाबालिग़—

तीनों कहानी संग्रह हैं। प्रत्येक का मूल्य १।)

तीनों पुस्तकों में लेखक की चुनी हुई पृथक् २ कहानियां हैं। जिनमें लेखक की लेखनी रोती हंसती-मचलती और ऊधम मचाती, अपने पाठकों को गुदगुदाती, उकसाती, हंसाती-रुलाती चली जाती है। बार बार पढने पर भी पढ़ने की प्यास वैसी ही बनी रहती है।

कला का पूर्ण विकास, मुकम्मिल चरित्र चित्रण, उन्मत्त कर देने वाला वाद-विवाद, घाव करने वाले व्यंग और न भूलने वाला संघर्ष, आप इन कथानकों में पाएंगे। महान् लेखक कहां तक विश्व-दर्शन की सामर्थ्य रखता है, यह इन कहानियों में आप प्रत्यक्ष देखेंगे।

'लम्बग्रीव' में ज्वलन्त राजनीति के उत्तम रेखाचित्र हैं। 'लालारुख' में मुगल ऐश्वर्य और कोमल भावुकता मे लबालब कहानियां हैं। 'पीरनाबालिग' तो आप की छाती में घूंसा मारेगा और आपकी आंखों में आंसू और होठों पर हास्य चमक उठेगा।

पूरा सेट आज ही खरीदिए

प्रथम अपने यहां के पुस्तक विक्रेता से मांगिए—फिर हमें लिखिए। यदि आप चार मित्र एक ही पार्सल में चार सेट मंगाते हैं—तो तीन ही सेट का रुपया मनिआर्डर से भेजिए—हम उसी मूल्य में चार सेट फ्री पोस्ट भेज देंगे। अथवा आप दस रुपए से अधिक का आर्डर दीजिए तो पुस्तकें आप को पौने मूल्य में मिलेंगी।

—सेक्रेटरी